खास सूचना.

वाराणसीविबुधविजयावाप्त न्यायविशारदबिरुद न्यायसुधासुधादीधितिग्रथशतीग्रथेनावाप्त न्यायाचार्यपद श्रीमद्यशोविजय महामहोपाध्यायकृत आ ग्रंथमाळा संस्कृत प्राकृतना अभ्यासी दरेक साधु साध्वीने तेमज दरेक पुस्तकभंडार माटे भेट आपवानी छे, तेथी तेना जीज्ञासुए मगावी लेवा कृपा करवी जैनलाइब्रेरीमाळाउंए पोस्टेज मोकलीने मगाववी

श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा

भावनगर

प्रस्तावना.

आ ग्रंथमाळा एक एवा उत्तम अने महान् पुरुषनी करेली बहार पाडवामा आवी छे के जे पुरुषना वचननी प्रामा-ण्यता माटे दरेक विद्वानने घणोज उंचो मत छे ए महापुरुषना समकालीन श्रीमानविजय उपाध्यायजीए श्रीधर्मसंग्रह नामनो अत्युपयोगी ग्रंथ स्वोपज्ञवृत्ति समेत सुमारे पंदरहजार श्लोक प्रमाण संवत १७३० मा रच्यो छे ते ग्रंथनी प्रशस्तिमा आ ग्रंथमाळाना कर्त्ता विषे तेओ साहेब लखे छे के-

> सत्तर्ककर्कशधियाखिलदर्शनेषु, मूर्द्धन्यतामधिगतास्तपगच्छधुर्याः ।
> काश्यां विजित्य परयूथिकपर्षदोऽग्र्या, विस्तारितप्रवरजैनमतप्रभावाः ॥
> तर्कप्रमाणनयमुख्यविवेचनेन, प्रोद्बोधितादिममुनिश्रुतकेवलित्वाः ।
> चक्रुर्यशोविजयवाचकराजिमुख्या, ग्रंथेऽत्र मय्युपकृतिं परिशोधनाद्यैः ॥
> बाल इव मंदगतिरपि, सामाचारीविचारदुर्गम्ये । अत्राजूत्र गतिमांस्तेषां हस्तावलंबेन ॥

" जेओ सत्य तर्कथी उत्पन्न थएली तीक्ष्ण बुद्धिवडे समग्र दर्शनोमा अग्रेसरपणु पाम्या छे, जेओ तप गच्छमा मुख्य छे, जेमणे काशीमा अन्य दर्शनीओनी सभाओने जीतीने श्रेष्ठ जैनमतना प्रभावने विस्तार्यो छे अने जेओए

तर्क, व्याकरण अने अलंकारादि विषयमां प्राचीन मुनिओनुं पुस्तकंपटीपणुं (आ काळमां) प्रगट थतां आव्युं छे ते वाचक समुदायमां मुख्य श्रीयशोविजयजीए आ ग्रंथनुं परिशोधनादि करीने मारा उपर उपकार करेलो छे सामाचारी विषेना विचारथी दुर्गम एवा आ ग्रंथमां हुं पाठकनी जेवो मंदगतिवाळो छतां पण तेओ (श्रीयशोविजयजी) नाज वात्सल्यना आधारनथी गतिवाळो थयो छुं, अर्थात् तेमनाज प्रसादथी आ ग्रंथ रचवाने समर्थ थयो छु. ”

उपर प्रमाणे जे महापुरुषनी कीर्तिनो यशःपटह तेमना समकालीन धुरंधर ग्रंथकर्ता वगाडी गया छे, तेनो यशवाद करवा माटे हवे अमारे काइ पण विशेष कहेवानी जरूर नथी ए महापुरुषना करेला अनेक ग्रंथो पैकी हालमां घणाज थोडा हयात थाय छे आगळ आपेला उपोद्घातमां जणावेली हकीकत उपरथी जाणी शकाशे के तेओ साहेबे रहस्य शब्दांकित १०० ग्रंथो बनाव्या छे आ हकीकत भाषारहस्य ग्रंथना प्रारंभमां तेओ साहेबेज जणावी छे अने न्यायना सो ग्रंथो बनाव्यानी हकीकत तेओ साहेबना प्रतिमाशतक ग्रंथनी प्रस्तावनामां लख्या छे आ बे समूह शिवाय बीजा पण अनेक ग्रंथो न्यायनी तेमज संस्कृत भाषामां तेओ साहेबे रच्या हशे पणु अत्यारे उपलब्ध थता रहस्य शब्द विनाना अने न्यायना विषय विनाना अन्य ग्रंथोथी तेमज तेमणे माटी वरीके जणामण करेला घणा ग्रंथोथी पूरवार थाय छे आ महापुरुषनु बुद्धिकौशल्य कोइ एवा विचित्र प्रकारनुं हतुं के एओ न्यायस्वरूप जेवा दुर्घट ग्रंथ बनाववा शक्ति धरावता हता, ते साथे गुजराती भाषामां दशी सरल पद्यरचना पण करी शकता हता एमणे 'जगजीवन जगवालहो' एवा आद्य पदवाळी चोवीशी पचीश सरळ भाषानां बनावी छे गुजराती भाषामां पण द्रव्यगुणपर्यायना रास जेवी दुर्घट रचना

बनावनाने तेओ शक्तिमान थया छे एमनी शक्तिनो अनुभव करनारा आधुनिक विद्वानो एमने अपूर्व शक्ति धारण करनारा माने छे अने ते अक्षरशः सत्य छे

आवा उत्तम महापुरुषनु जन्मचरित्र आपवु ते खास आवश्यकतावाळु कार्य छे परतु ते श्रेणिक चरित्र पूर्ण न होवाथी जे प्रकारनु उपलब्ध थइ शक्यु छे ते प्रकारे आ प्रस्तावनाने अंते आपवामां आव्यु छे

आवा महापुरुषोना ग्रथो प्रकाशमा लाववाथी जैनशासननी अपूर्व प्रभावना अन्य मतवाळाओने पण जाण थइ शके छे आ मनाय ए कार्य बहु वर्षोथी हाथ धर्यु छे ते खाते महान् उपगार श्रीमन्मुनिराज महाराज श्रीवृद्धिचन्द्रजीनो छे तेओ साहेबनी खास प्रेरणाथी प्रथम कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजीनी कृति बहार पाडवानी धारणा थवाथी मुनीने ते महात्मानु करेलु श्रीत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र बहार पाडवानु शरु कर्यु हालमा ते महाग्रथ संपूर्ण थया आव्यो छे दरम्यानमा तेओ साहेबनो करेलो अभिधानचिंतामणि ग्रथ अवचूरि तमज शब्दोना अकारानुक्रम साथे बहार पाडेलो छे तेमज तेओ साहेबनीज प्रसादी तरीके श्रीविनयविजयजी उपाध्याय बनावेलु लघु हैमप्रक्रिया व्याकरण बहार पाड्यु छे हालमा श्रीहरिभद्र सूरि महाराज अने श्रीसिद्धसेन दीवाकरजीनी कृति तरीके तेमना करेला त्रण त्रण ग्रथोनी ग्रथमाळा बहार पाडी छे अने उमास्वाती वाचक महाराजने पण जूदी जणामा आव्या नथी एओ साहेबनी उत्तम कृतिवाळो प्रशमरति ग्रथ अवचूरि तथा टीका सहित छपाववा माटे तैयार करवामा आवे छे

---

१ श्रीसिद्धसेन दीवाकरजीकृत ग्रंथमाळा थोडा वखतमा बहार पडनार छे छपाय छे

[illegible] उपगार करी गया छे जेनो परिपूर्ण ज्ञान तेमना रचेला [illegible] ने बहुश पाक्षा सिवाय जैनवर्ग के अन्य ग्रह शके एम नथी तेथी [illegible] के जेनो आ कार्य उपाडी लेउ ते माटे श्रीमत गृहस्थो [illegible] ते कार्यमा पूरती मदाय आपवी ज्ञानदान ए सर्वोत्कृष्ट [illegible] मर्च थाय छे ते करता ज्ञानखाता [illegible] ने नाश जेनमा उगारे त्यारे तदुपरांत एक बीजो ज्ञान ए थाय [illegible] वृद्धि करी करे छे, जेथी तेनी युक्तेडी दरेक मत शुद्ध करवी पडे छे, त्यारे [illegible] करी होय छे तो पछी तेनासरथी जेटली नकलो काढवामा आवे तेमा फरीने [illegible] धीमनो जाता अति ज्ञानकारी कार्यमा पोताना द्रव्यनो उपयोग करता नथी तेमनु [illegible]

[illegible] करवाने आ सभा तरफथी वे वण वर्षथी ने प्रयत्न नाक करवामा आव्यो [illegible] तेनन तेनी प्रेमरीपी तमामी आपवा दिगेरेनी दरेक [illegible] महाराजे करी छे अने आवे छे तेमज आपवा कबुल कर्यु छे तेथी आ [illegible] सफुं [illegible] छे.

आ सभा तरफथी प्रगट थता ग्रंथमां जुदा जुदा गृहस्थो तरफथी द्रव्य मदथी मदागो आपवामां आवी छे जे पैकी आ ग्रंथमालानी ५०० नकलो प्रगट करवा माटे तमाम खर्च श्रीजामनगरनिवासी गृहस्थ शा आणंदजी पुरुषोत्तमदास तरफथी आपवामां आवेल छे ते संबंधमां पण उपदेशादिनो प्रयास सद्गुरु पन्यासजी महाराजे करेलो छे

आ ग्रंथमाळामां श्रीमद्यशोविजयजी उपाध्यायविरचित अनेक ग्रंथोमांथी दश ग्रंथो प्रगट करवामां आव्या छे तेमां प्रथम आपेला अध्यात्मसार नामना ग्रंथ उपर हालमां पन्यासजी श्रीगंभीरविजयजी महाराजे सुमार ७००० श्लोक प्रमाण टीका रची छे, ते सिवाय बीजी कोइ टीका नथी चोथो ग्रंथ आध्यात्मिकमतपरीक्षा नामनो स्वोपज्ञ टीका सहित आपेलो छे तेनुं बीजुं नाम आध्यात्मिकमतखंडन छे एमां केवळीने कवलाहार न होय एवी दिगंबरोनी मान्यतानुं खंडन छे आज नामनो आ ग्रंथ कर्त्तानो करेलो बीजो मोटो ग्रंथ छे तेनापर पण तमणे पोते टीका करेली छे तेनी अंदर दिगंबरोनी केवळी संबंधी बीजी पण मान्यता विगेरेनुं खंडन छे आठमो ग्रंथ नयोपदेश नामनो अवचूरि सहित आपेलो छे, ते अवचूरि श्रीजायविजयसूरिनी बनावेली छे आ ग्रंथ उपर एमणे पोते नयामृततरंगिणी नामनी विस्तारवाळी टीका रची छे, तेना उपरथी संक्षेपमां आ अवचूरि बनाववामां आवी छे आ त्रण ग्रंथो सिवाय बाकीना सात ग्रंथो उपर टीका के अवचूरि काइ पण बनेल जाणवामां नथी आ दश ग्रंथोमां पांचमो ग्रंथ यतिलक्षण समुच्चय नामनो आपेलो छे ते मागधी गाथाबंध छे बाकीना नव ग्रंथो संस्कृत छे तेमां पण अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद्, आध्यात्मिकमत

[illegible] (देवेन्द्रसूरीजी, नयरङ्ग, नयचंद्र, रोतकं परि [illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) स्वोपज्ञ टीका सहित रच्यो छे ते पण अमारा [illegible] करावी आपेलुं छे आ ग्रंथकर्त्ताने [illegible] थया छे तना नेमना प्रयोगो मोरो [illegible] करी शक्यु नथी [illegible] कारण कहेवामा आवी शकयुं छे ते आ [illegible] प्रयोगना कर्त्ता प्रयोगोंकी वर्तमानमां केटला प्रयो [illegible] तेनु डीम्ह तमना चरित्रने अने आवनामा आव्यु छे ते उपरांत [illegible] सुविनयविजयनी [illegible] होय तो तेउ मोहोके ते प्रथनु नाम लिगरे अमो [illegible] करी के प्रेरी एवी इच्छिन्नो सम्ह करीने जैनवर्गना [illegible] आवे तम प्रगट करसुं

[illegible] करीने प्रन्यासनु प्रकरणु न करता हवे पछी ते महापुरुषनु जन्मचरित्र तथा आ ग्रंथमा- [illegible] हवे [illegible] मनावेली छे ने मकनी पन्यासजी श्रीआणंदसागरजी महाराजे [illegible] छे ते तरफ [illegible] वाचकवर्गने विनति करीने प्रस्तावना समाप्त करवामा आवे छे

संवत् १९६५ [illegible] — श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा
भावनगर.

न्यायविशारद न्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयजीनुं टुंक जन्मचरित्र.

आ महात्मानो जन्म क्यारे अने क्या शहेरमां थयो? तेमना मातपिता कोण हता? अने कइ ज्ञातिना हता? ए कोइ पण साधनथकी चोक्कस थइ शकतुं नथी. श्रीमान् सुधर्मास्वामीथी चाल्या आवता मूळपाटे पट्ट थयेला न होवाथी तेमज जैनाचार्योमां पोताना चरित्र लखवानी रुढी आत्मप्रशंसादि कारणोथी प्रचलित नहीं होवाथी ए संबंधमां विशेष हकीकत चोक्कसपणे मळी शकती नथी. जो मूळपाटे पट्ट थया होत तो पट्टावली विगेरेमांथी कंइक हकीकत नीकळी शकत, तेमज जो तेमना शिष्य कोइ पराक्रमी नीवड्या होत तो ते पोताना गुरुनुं चरित्र अवश्य लखत, कारणके एवी रीते पोताना गुरुनुं चरित्र लखवानी प्रवृत्ति तो प्राचीनकाळथी आपणामां चाली आवती देखाय छे. श्रीहीरसौभाग्य काव्य अने विजयप्रशस्ति काव्य इत्यादि अनेक चरित्रात्मक काव्यो तेना साक्षीभूत छे. आ महात्माना चरित्र संबंधी काइ काइ हकीकत [illegible], प्रतिमालेख अने पत्तीमा वत्तीसीनी प्रशस्ति विगेरेमांथी मळी आवे छे परंतु ते एवी शृंखलाबद्ध नथी के जेथी एमनुं आखुं चरित्र जोडी शकाय. तेमज तेमना करेला ग्रन्थोनी प्रशस्तिओ जे जे छपाय छे ते सघळा एकत्र करी तेनी प्रशस्ति तेमज रचना विगेरे तपासी कोइए पण एवी हकीकत संपूर्ण प्रकट करी नथी के जेथी आ चरित्र लखवामां ए सहायभूत थइ पडे तेमज कृतिमां पण पहेली कइ अने पछीनी कइ ते जाणी शकाय

[illegible] पुंन्यासजी श्री [illegible] ... [illegible] हता पुंन्यासमां विद्यमान हता,
[illegible] ... [illegible] मंगळवारे थतां हांसी नर्ग गाढ्यानी तमाति
[illegible] ... [illegible] ते पू. आ. श्री. पासेनो समागम थतां विहार गुजरात
[illegible] ... [illegible] श्री [illegible] रचना थायकथी धर्मसंग्रह ग्रंथ
[illegible] ... [illegible] कराव्या छे. ते ग्रंथनी प्रशस्तिमां ए रचना
[illegible] ... [illegible] एक वखत श्रीपाटणमां श्रीमद्यशोविजयजी,
[illegible] ... [illegible] हता, तेम उपाध्यायजीनुं व्याख्यान तो
[illegible] ... [illegible] थती हती अने श्रीयशोविजयजीनी
[illegible] ... [illegible] हती. एक दिवस तेमनी व्याख्यानकळा जोवा
[illegible] ... [illegible] हता, [illegible] आवी [illegible] पछीनो विहार गुजरातमां
[illegible] ... छे.

[illegible] ... श्रीसुधर्मस्वामीने [illegible] आवी [illegible] गोठवी तेमनी
[illegible] ... [illegible] छे. तेमनी [illegible] मुनिओना संवेग पक्षनी शिथिलता दूर करवा माटे
[illegible] ... [illegible] तेमनी [illegible] महात्मा [illegible] उद्देश ' [illegible]

नीराथी मार्ग ए अनुमर्यो" इत्यादि वाक्योथी नीकळी शके छे तेथी अने श्रीविजयसिंहसूरि संवत् १७०८ मां स्वर्गस्थ थयेला होवाथी सत्तरमा सैकाना प्रांतभागमां आ महापुरुषनो जन्म अने अढारमा सैकाना पूर्वार्धमां स्वर्गे सिधाव्यानु पुरवार थइ शके छे

एमनी पट्टपरंपरा तपागच्छमांथे पधारे दूर जवानी जरूर रहेती नथी कारणके जे श्रीहीरविजयजीसूरिना समानकाल थयेला छे श्रीहीरविजयजीसूरिना शिष्य उपाध्याय श्रीकल्याणविजयगणि, तेमना मुख्यशिष्य पंडित श्रीलाभविजयगणि, तेमना मुख्यशिष्य पंडित श्रीजीतविजयगणि, तेमना गुरुभाइ पंडित श्रीनयविजयगणि अने तेमना चरणकिंकर महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी थया छे एओ साहेबे दीक्षा क्यारे लीधी अने एमने उपाध्यायपद क्यारे आपवामां आव्यु एनो सरत कोइ जगाए मळी शकतो नथी परतु एमणे बाल्यावस्थामां ब्रह्मचारीपणे चारित्र अंगीकार कर्यु हशे एवु एमनी पुष्कळ चमत्कारवाळी कृति सूचवे छे

एओ साहेब श्रीसत्यविजयगणि, श्रीविनयविजय उपाध्याय अने आनंदघनजी महाराजना समकालीन हता ए तो चोक्कस छे श्रीविनयविजय उपाध्याय एमना काकागुरु थता हता चारित्र लीधा बाद धर्मशास्त्रनु ज्ञान मेळवता संस्कृत भाषानो अने न्यायशास्त्रनो विशेष अभ्यास करवानी उत्कंठा थता तेओ साहेब काशीमां अभ्यास करवा गया हता ए हकीकत तो अनेक लेखो उपरथी नीकळी शके छे ते वखते तेमनी साथे श्रीविनयविजय उपाध्याय हता एम केटलाक कहे छे अने केटलाक तेमना गुरु साथे हता एम कहे छे आ बे हकीकतमां कइ हकीकत सत्य छे ते चोक्कस कही

[illegible] एम कहे तेने जैनमति ग्रंथे देशवृत्ति धरावता
[illegible] पोताना अभ्यासनी भारी
[illegible] दुर्गो अन्यास करी शक्या हता. काशीमां प्रथम तेमने
[illegible] अन्य मतना मत विचारो तरफथी
[illegible] तरफथी [illegible] जे
[illegible] उत्कृष्ट अन्यास कर्या हतो परन्तु तेमना अध्ययन करा-
[illegible] तेमज विनयादि गुणना
[illegible] तेमनी प्रकट [illegible] कारणथी उत्तरोत्तर पण तेमनु
[illegible] अन्यास करवा ने विद्यागुरु आर्थिक स्थितिनी मद-
[illegible] तेमने तेमनो बहु सत्कार करता उपरांत तेमने एक भारी रकम
(१००००) [illegible] कर्या हता.

[illegible] प्रकट [illegible] उपाध्यायजी महाराजे प्रतिमा
[illegible] प्रकट असर करी हती, जेथी तेओ तेमनाथी बहु गुणे यथा
[illegible] मेघजी दोसी सिवाय गुजराती

जापाना अभ्यासीओ माटे वीरस्तुतिरूप दर्शीनु स्तवन (१५० गाथानुं) बनाव्युं हतु तेना उपर श्रीपद्मविजयजी महाराजे पणा विस्तारथी बालावबोध करेलो छे अने ते श्रीप्रकरणरत्नाकर भाग त्रीजामां छपायेल पण छे

ढुंढकोनी प्रबळता साथे ए समयमां क्रियामार्गमा शिथिल थयेला यतिओनी संख्या अने प्रबळता पण विशेष जणाय छे एओ साहेबना दिलमां आथी बहुज खेद थयो जणाय छे अने तेथीज श्रीसीमंधर स्वामीनी स्तुतिरूप सवासो गाथानु स्तवन बनावीने तेमणे पोताना हृदयनो उभरो बहार काढ्यो छे साडात्रणसें गाथाना स्तवननो टबो श्रीज्ञानविमलसूरि ए तेमज श्रीपद्मविजयजी महाराजे बनेए पुरेलो छे ते पैकी श्रीपद्मविजयजीकृत टबा सहित ए स्तवन छपायेलु छे सवासो गाथानु स्तवन पण अर्थ सहित छपायेल छे शुद्ध मार्गना रसीने माटे ए स्तवन बहु वांचवा लायक छे

श्रीसत्यविजयजी पन्यासनी साथे एओ साहेबे पण क्रियोद्धार करेलो जणाय छे यतिओनो समुदाय अने ढुंढक मतवाळाओ एमनाथर एटला बधा अतरद्वेष धरावनारा हता के तेओ कोइ पण प्रकारे तेमना महत्वनी वृद्धि जोइ शकता नहोता एमने मात्र बसें वर्ष थया छता एओ साहेबना करेला सत्यावबोध ग्रंथोमांथी घणु जुज ग्रंथो हस्तगत थाय छे तेनु कारण पण एमनो द्वेषज जणाय छे

अध्यात्मरसना रसीया श्रीआनंदघनजी महाराज तेमना समकालीन हता एटलुज नहीं पण तेमनाथी उपाध्यायजीने अध्यात्म संबंधी केटलोक लाभ पण मळ्यो हतो एम जणाय छे, अने तेथीज तेमनी कृति तरीके गणाती श्रीआनंदघनजीनी स्तुतिरूप अष्टपदी तेओ साहेबे रची हशे एम जणाय छे आने माटे विशेष त्यांथी लायक हकीकत मळी शक्ती नथी

श्री विजयविजय ... हता तेनी पूरवणी तो श्रीविनयविजयजी महाराजे रचता ... श्री ... समस्त ... एकवारनी अपूर्ण रहेलो ते उपाध्यायजी महाराजे पूर्ण कर्या छे, तेथी लोकप्र ... छे, श्रीविनयविजयजी महाराज पण प्रखर विद्वान हता तेमना करेला श्री लोकप्रकाश, शान सुधारस, ... सुबोधिका टीका अने अपूर्व प्रक्रिया व्याकरण लोपज्ञ टीका (३५००० श्लोक प्रमाण) सहित ... हरिलेखर ... छे गुजराती ... पण तेमने पुण्यप्रकाशनु स्तवन अने उपर जणावेल श्रीपालराजानो रास रच्यो छे

... स्याद्वादरहस्य, न्यायालोक अने कम्मपयडीनी टीकानी प्रतो तेमना हाथनी ... छे, वैराग्य ... नी प्रत तेमने हाथे सुधारेली मळी आवे छे, धर्मसंग्रह ग्रंथ श्री मानविजय उपा ... रचेलो तेमणे सुधारी आप्यो छे ते अमुक प्रत नहीं हशे छे श्री लोकप्रकाश ग्रंथनी प्रत नीकोरना ... भंडारमा ... सुधारेली छे एम मनाय छे ज्ञानसारना टबानो लेख पण एक जग्याए छे ते तेमना हाथनो ... छे सुधी ... पण एमणे शासनमो उपकार तो पारावार करेलो अनुभवमां आवे छे

... महाराजनु नव्यन्याय अने मगधी भाषानु तेमज नय, निक्षेप, प्रमाण, सप्तभंगी विगेरेनुं धर्म संबंधी सूक्ष्म ज्ञान ... केवी मारी तेमना रचेला अपूर्व ग्रंथो आवे छे जैनन्यायमा तो तेओ अद्वितीय प्रवीण ... पुरुष ... अपूर्व विद्वान होवाथीज तेमने श्रुतकेवलीनी उपमा आपवामां आवी छे, अने ते उपमा

वास्तविक छे ऐवुं तेमना ग्रथना अभ्यासीओ अत्यारे पण कहे छे व्यवहार अने निश्चयनुं स्वरूप एछ गाहने पोताना ग्रथमां बहुज सारी रीते स्पष्ट करेलुं छे एमना रचेला ग्रथोनी अदर अपूर्व कवित्वशक्ति, वाक्पटुता, पदलालित्य, अर्थ गौरव, रसपोषण, अलंकारनिरूपण तेमज परपक्षखडन अने स्वपक्षमंडन स्थाने स्थाने दृष्टिगोचर थाय छे एमनी तर्क-शक्ति तेमज समाधान करवानी शक्ति अपूर्व जणाय छे पूर्वाचार्यप्रणीत अनेक ग्रथोमा तेमज सूत्र अने टीका विगेरेमा जुदी पडती अनेक बाबतोना समाधान एमणे बहु युक्ति पूर्वक करेला छे, तथा तेओए सिद्धातनी शकाओनुं समाधान करवा माटे 'सिद्धात तर्क परिष्कार' ग्रथ कर्या कहेवाय छे अने एमना वचन अत्यारे खास प्रमाणभूत मानवामा आवे छे

अमदावाद, पाटण, सिद्धपुर, खभात, रादेर, भरुच, ऊनोइ विगेरे स्थळोए एमणे विहार कर्यानी हकीकत मळी आवे छे ए प्रमाणे सुमारे बे लाख श्लोकप्रमाण अनेक ग्रथो रची, अनेक जीवोने प्रतिबोध पमाडी, अनेक परवादीओने जीती, जैनशासननो जयध्वज सर्वत्र फरकावी ए महात्मा सवत् १७४५ ना मागशुदि ५ वसतपचमीए श्रीऊनोऊमा स्वर्गवासी थया छे एनी निशानी तरीके त्या तेमनी चरणपादुका स्थापेली छे हालमा तेनो जीर्णोद्धार पण करावामा आव्यो छे आवा जैनशासनमां रत्न तुल्य महात्मानी पादुका पण वदन करवा लायक छे जैनबंधुओए अवसर पामीने तेनो लाभ लेवो योग्य छे

ए महात्माना रचेला ग्रथो पैकी अत्यारे लभ्य तेमज अलभ्य जे जे ग्रथोना नामो जाणवामा आव्या छे ते आ नीचे

[illegible] नाम [illegible] भाषा [illegible] लिंद रत्नाकरमां आव्याउ ने यथी गल्याउ ने, [illegible] रही ने ते पण ने ज्ञान ने तेम दुर्लभ ने

[illegible] ग्रंथो

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] सटीक ४ अध्यात्म मतपरीक्षा सटीक ५ [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] टीका सहित ८ [illegible] ९ जैनतर्क परिभाषा १० ज्ञानबिंदु ११ न्याय [illegible] ([illegible]) १२ [illegible] १३ उपदेशरहस्य सटीक १४ वैराग्यकल्पलता, १५ यतीश [illegible] १६ [illegible] ([illegible]) १७ देवधर्मपरीक्षा १८ यतिलक्षण समुच्चय १९ गुरुतत्त्वनिर्णय सटीक २० [illegible] २१ [illegible] सटीक २२ [illegible] आ सात ग्रंथो स्वोपज्ञ (पोतानी करेली) टीकायुक्त ने

अन्यकर्तृक ग्रंथोपर तेमनी करेली टीका

१ [illegible] टीका २ कर्मप्रकृति (कम्मपयडी) नी टीका ३ षोडशकवृत्ति ४ अष्टसहस्री विवरण

अलभ्य–दुर्लभ ग्रंथो

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ सिद्धांत तर्क परिष्कार ५ अनेकांत मतव्यवस्था ६ पातंजल योग- [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible] ९ विचारबिंदु १० विधूप्याद्योतविधि ११ मंगलवाद १२ [illegible]

गुजराती भाषामां करेली रचनाओ

१ श्रीपाळराजाना रासनो पाछलो भाग २ दिग्पट चोराशी बोल (पद्यमां) ३ जंबूस्वामीनो रास ४ द्रव्यगुणपर्यायनो रास ५ समाधिशतक ६ समताशतक ७ तत्त्वार्थनो टबो ८ ज्ञानसारनो टबो ९ नयविचार (पद ७७) १० आनंदघनजीनी स्तुतिरूप अष्टपदी ११ सम्यक्शास्त्र विचारसार (पत्र)

सज्झायो

१ अढारपापस्थानकनी सज्झाय २ आठदृष्टिनी सज्झाय ३ प्रतिक्रमण गर्भ हेतुनी सज्झाय ४ समकितना सडसठ बोलनी सज्झाय ५ पांच कुगुरुनी सज्झाय ६ अग्यार अंगनी सज्झाय ७ पांच महाव्रतनी भावनानी सज्झाय ८ अमृतवेलीनी सज्झाय ९ संयमश्रेणीनी सज्झाय १० चार आहारनी सज्झाय

स्तवनो

१ श्रीसीमंधरस्वामीनी स्तुतिरूप ३५० गाथानुं स्तवन २ श्रीवीरस्तुतिरूप हुंडीनुं स्तवन (१५० गाथानुं) ३ सवासो गाथानुं स्तवन ४ निश्चय व्यवहारनुं स्तवन (पांच ढाळनुं) ५ मौन एकादशीना दोढसो कल्याणकनुं स्तवन (१२ ढाळनुं) ६ ७ ८ वर्तमान चोवीश तीर्थंकरोना स्तवनोनी चोवीशी ३ ९ विहरमान जिनस्तवन (वीशी)

आ शिवाय कोइ पण ग्रंथ कोइ पण मुनिमहाराजना के श्रावकजाइना जाणवामां होय अथवा जाणवामां आवे तो तेमणे अमने लखी मोकलवानी कृपा करवी

उपोद्घात.

आ महापुरुषे कया कया विषयना केटला ग्रंथो लख्या छे ते संबंधमां हजुसुधी चोक्कस निर्णय थयो नथी तेमना पछीना सैकामां थयेली न्यायविद्याना अभ्यासनी हानिने लीधे फक्त कोइ कोइ जगोपर तेमना ग्रंथो उपलब्ध थाय छे, तेमां केटलाक ग्रंथो तेओश्रीना हस्ताक्षरना पण मळे छे अने केटलाक ग्रंथो लहीआओए जेम तेम उतारेला अने त्यार पछी अभ्यासमां नहि वपरायेला होवाथी कोइ पण प्रकारना संस्कार वगरना मळे छे आम होवाथी आ ग्रंथमाळा छपावतां घणा ग्रंथोनां एक एक प्रत उपर पण आधार राखी काम लेवु पड्यु छे उपर जणावेला कारणोथी बनती मेहनते सुधारो करतां छतां पण अशुद्ध लागता पाठोने स्थले कौंसमां शुद्ध तरीके लागता पद दाखल करवामां आव्या छे जे महाशयोने आ ग्रंथमाळा वांचता जे जे अशुद्धि लागे ते अमने लखी जणाववानो अमे आग्रह करीए छीए के जेथी बीजी आवृत्ति वखते अथवा तेनी पहेला पण पुस्तक लेनारनुं लीस्ट राखेल होवाथी तेना ग्राहकने शुद्धिपत्रक मोकलावी सुधारो करवानी गोठवण करवानो प्रसंग मळी शके

तेओश्रीना बनावेला उपलब्ध ग्रंथोमांथी नाना अने उपयोगी ग्रंथोनो एक समुदाय आ ग्रंथमाळामां प्रगट करवानो हेतु ते बधाने एक साथे जाळवी राखी तेनी उपयोगितामां वधारो करवानो छे आ ग्रंथमाळामां नीचेना ग्रंथो प्रकट करवामां आव्या छे

१ अध्यात्मसार	२ देवधर्मपरीक्षा	३ अध्यात्म उपनिषद्	
४ आध्यात्मिक मतपरीक्षा सटीक	५ प्रतिमाशतक सटीक	६ नयरहस्य	
७ नयप्रदीप	८ नयोपदेश (स्वोपज्ञवृत्ति)	९ जैनतर्कपरिभाषा	१० ज्ञानबिंदु

आ ग्रंथोमां क्या क्या विषयो केवी रीते चर्चवामां आव्या छे तेनो [illegible] प्रथम [illegible] जणाववो छे [illegible] प्रत्येक ग्रंथनो सार अनुक्रम टुंकमां अहीं आपवामां आव्यो छे

अध्यात्मसार–आ ग्रंथ व्युत्पत्ति करवानी इच्छावाळाने अध्यात्म ज्ञाननी मार्गे चालवानो [illegible] मार्गे दोरे छे तेयो छे, अने ते विज्ञान् थवानाने सहज मालुम पडे तेवुं छे जेथी अध्यात्मना विषयमां केटला प्रश्न उठ्या होय ते यात तेमना ग्रंथ उपरथी सारी रीते मालुम पडी शके तेम छे शास्त्रामां मार्गानुसार करीने अध्यात्मनी [illegible] अध्यात्म वगरनुं बीजुं ज्ञान, वगर मळवा [illegible] मति आत्मा [illegible] छे [illegible] छे [illegible] साध्य वगरना कार्य जेवुं छे, एम बतावी अध्यात्मथी उत्पन्न थता आनंदो जणावी, बीजा पुद्गलादि रसो करतां [illegible] त्मना रहेली उत्तमता बहु श्रेष्ठ शब्दोमां बतावी छे, अने तेम करीने रहेलो माहात्म्य अधिकार पूरा करीने बीजा अध्यात्मस्वरूप अधिकारमां शिष्यद्वारा प्रश्न उठावी अध्यात्मनो अर्थ, अध्यात्मनुं लक्षण, [illegible] क्रिया, अध्यात्मने योग्य तथा अयोग्य मार्गोनां लक्षणो अने तेना अनुक्रमे जणावी व्यवहार अने निश्चयथी [illegible] त्मनुं निरूपण करी, ज्ञान अने क्रियानुं परीक्षा ये मार्गनी मारक उपयोगीतानुं बताववुं ज [illegible] अध्यात्मथी थती

अशुद्ध क्रियाउंनु पण कार्यसाधकपणु जणावी विषयानुष्ठान, आत्मानुष्ठान अने अनुबंधानुष्ठाननु निरूपण घणी सरळ रीते करवामा आव्यु छे त्रीजा दंभत्याग अधिकारमा दंभत्यागना संबंधमा विस्तारथी विवेचन करवामा आव्यु छे, अने तेमा दंभरहितनेज अध्यात्म थइ शके एम स्पष्ट समजाववामा आव्यु छे चोथा भवस्वरूप अधिकारमा संसारने समुद्र, दावानळ, कसाइखानु, राक्षस, अटवी, फासो (पाश), केदखानु, स्मशान अने विषवृक्षनी उपमाथी वर्णवीने तेमा रहेता प्राणीउंनी विचित्र स्थिति, सुखरहितपणुं देखाडी अध्यात्मीउंनुं आध्यात्मिक कुटुंब अने मोह राजाना रंगमंडपनु वर्णन करी मोह राजाए करेला नुकसानो अने मोहाधीन प्राणीउंने अहोनिश चालती कल्पनाश्रेणीउं समजावी तेमाथी विरति करनारने थती आत्मरमणता समजाववामा आवी छे अत्र प्रथम प्रबंध पूर्ण थाय छे

पाचमा वैराग्य अधिकारमा वैराग्यनुं स्वरूप, तेनी जरूर, वैराग्य थवाना उपाय, तेना गुणस्थानको, तेनाथी थती चित्तनी प्रसन्नता, सर्वत्र बंधरहितपणु अने नामधारी वैरागीउंना लक्षणो जणाववामा आव्या छे छठा वैराग्य भेद अधिकारमा दुःखगर्भित वैराग्यवाळाउंनो शुष्क त्याग, शुष्क अभ्यास अने तेनी इच्छाउं जणावी, बीजा मोहगर्भित वैराग्यनी उत्पत्तिनु कारण, तेनी स्थिति, तेनु हीनपणु ने ते वैराग्यवाळाना लक्षणो जणाववामा आव्या छे पछी ज्ञानगर्भित वैराग्यना अधिकारी, तेउंनी बुद्धि, सम्यक्त्वनी जरूरीयात, तेउंनु शुद्ध ज्ञान, द्रव्यपर्यायनो तेउंनो विचार, ज्ञानगर्भवैराग्यवाळानु स्वरूप, तेउंना लक्षणो विगेरे विषयो जणाववामा आव्या छे सातमा वैराग्य विषय अधिकारमा विषयवैराग्य अने गुणवैराग्य, कोइ पण जातना शब्द, रूप, गंध, रस ने स्पर्श योगीउंना चित्तने चलायमान करता नथी ते बाबतनु निरूपण

अने भोगीर्जनी विषयोने अगे थती डुर्दशा जणावता साथे क्षयोपशमादिथी थती लब्धिर्जना गुणोमां पण निरसता जणाववामा आवी वे अत्र बीजो प्रबंध पूर्ण थाय वे

आठमा ममता त्याग अधिकारमां तेनी जरुर अने ममतानो राक्षस, स्त्री अने व्याधिनी उपमा, तेने लीधे थती आरंभादिकमां प्रवृत्ति, जालय करतां पण तेनु सविशेषपणुं, ममता करनारनी स्त्रीपुत्रादि साथे चेष्टार्ज, तेनु अपवित्रने पवित्र माननापणु तथा डुनियाना संबंधमा नित्यनो भ्रम जणावी, आत्मा अने पुद्गलो जुदा वे अने तेनो मनन नाश-वत वे ए जाणवाथी ममतानो नाश थवाना कारणभूत जिज्ञासा उत्पन्न थाय वे अने ते ममता जिज्ञासा अने विवेक बन्नेथीज रोकी शकाय वे ए समजाव्युं वे नवमा समता अधिकारमा समतानु स्वरूप, ते राखवानी जरुर, तेनी उच्च स्थिति, ते विना बीजी क्रियार्जनु निष्फलपणु, तेनाथी इष्टितनी प्राप्ति, अवगुणोनो नाश, सामान्य लोकोनु ते विषयमा अज्ञात होवाथी इच्छारहितपणु, कर्मना नाशनु ते मुख्य कारण इत्यादि बतावी तेने चारित्रना प्राण तरीके उल्लखावी अध्यात्म प्रसादथी तेमा थती तल्लीनता जणाववामा आवी वे दशमा सदनुष्ठान नामना अधिकारमा सदनुष्ठाननी ममताथी प्राप्ति जणावी तेना विष, गरल, अन्योन्यानुष्ठान, तद्धेतु अने अमृत एवा पाच भेद जणाव्या वे पाच पैकी प्रथमना त्रण अनुष्ठान असद् वे अने वेल्ला बे सद् वे जे अनुष्ठाननो आदर करवामा प्रीति, निर्विघ्नता, सयोग, तत्त्व जिज्ञासा अने पण्डितोनी सेवा होय ते सदनुष्ठान कहेवाय अग्यारमा मनःशुद्धि अधिकारमा मन शुद्धिवाळाने रागद्वेष न थाय ए स्पष्ट समजाव्यु वे इष्ट पदार्थादि न मळवाथी शोक अने मळवाथी आनंद थाय वे तेनु कारण मननी चपळतान

छे चपळ मनने वानर, अश्व, पवन, हाथी अने अग्निनी उपमा देवामा आवी छे अनिग्रहित मन केवा केवा प्रकारना माठा परिणामो निपजावे छे तेनो ख्याल आपी नियमित मन केवा सुदर परिणाम निपजावे छे ते जणाववामा आव्यु छे बारमा सम्यक्त्व अधिकारमा मन शुद्धि फक्त सम्यक्त्व होय तेनेज थाय छे ए जणावी बाकीनी क्रियाउंनु मोक्षमा सहचारीपणु बताव्यु छे सर्व धर्मनो सार सम्यक्त्वज छे अने ते सम्यक्त्व नव तत्त्वनी श्रद्धायीज थाय छे अहिंसानी शुद्ध बुद्धि ए पण सम्यक्त्व छे, ते अहिंसा भागवत, पाशुपत, साख्य, बौद्ध अने वैदिक विगेरेए पण मानेली छे, छता तेउं सर्वना एकातवाद प्रमाणे ते घटती नथी ते जणावीने स्याद्वाद सिद्धात प्रमाणेज ते अहिंसा (दया) घटी शके छे अने सत्यादिनु पालन तेने माटेज छे एम जणावी शमादिक लक्षणोवाळाने सम्यक्त्वनी स्थिरता थाय छे एम जणाववामा आव्यु छे तेरमा मिथ्यात्वत्याग अधिकारमा आत्मा नथी, ते नित्य नथी, कर्ता नथी, भोक्ता नथी, मोक्ष जतो नथी अने मोक्ष जवाना उपाय नथी, ए मिथ्यात्वना छ स्थानकोद्वाराए नास्तिक, बौद्ध, साख्य, मीमासक विगेरेना मतोनु खरून जणावी ज्ञान अने क्रियायी आत्मानो मोक्ष थवाना उपायो जणाव्या छे चौदमा असद्ग्रहत्याग अधिकारमा कदाग्रहथी कर्मनो बध अने धूर्तपणु थाय छे एम जणावी ते कदाग्रहनी अमावास्यानी रात्रि साथे तुलना करी तेनु त्याज्यपणु अनेक रीते बहु युक्ति पूर्वक बताव्यु छे पदरमा योग अधिकारमा पुण्य रूपी कर्मयोग ने आत्मरमणता रूप ज्ञानयोग ए बने जणावी कर्मयोगवाळाने ज्ञानयोगनी जरुर अने ज्ञानयोगवाळाने कर्मयोगनी जरुर बतावी छे, साथे यज्ञादि कर्मयोगनो निषेध करी, ज्ञान योगवाळानु अलिप्तपणु, रागद्वेषरहितपणु, कर्म छेदवामा समर्थपणु जणावी

निरंजन देवमां अभेदपणु तदाधीन थवानो उपदेश करी योगनी रीति बतावी छे मोक्षमां ध्यान अधिकारमां ध्याननुं स्वरूप, तेना मुख्य भेदो तथा अवांतर भेदो, तेनां लिंगो अने तेनां गुणस्थानको बतावी धर्मध्यान अने शुक्लध्यानमां आवशे, ध्यान थवानी रीति अने तेनाथी यावत् मोक्षप्राप्ति सुधीना क्रमो बताववामां आव्या छे सत्तरमा ध्यानस्तुति अधिकारमां ध्याननुं मोक्षदायकत्व, विषयव्यापाररहितत्व, संतुष्टिकरत्व, परमार्थहेतुत्व, कालावधिरहितत्व, अंत-तररहितत्व, ममताहीनत्व, सुखहेतुत्व अने अपूर्व आह्लादकत्व बताववामां आव्युं छे अढारमा आत्मज्ञान अधिकारमां आत्मज्ञानने माटे नवतत्त्वनुं जाणपणुं के जे निसर्ग अने उपदेशथी थाय छे तेनी जरूर बतावी, ज्ञान दर्शन अने चारित्रनुं आत्माथी अभिन्नपणुं साबीत करी, निश्चयथी आत्मानुं सिद्धस्वरूपपणुं जणावी, कथंचित् तमाम आत्मानुं एकपणुं निरूपण करीने धर्मास्तिकायादिक द्रव्योथी आत्मानुं जुदा गुणोने लीधे भिन्नपणुं प्रतिपादन करी, पुण्य अने पापनुं निरूपण करतां नैगमादिक नयोनी अपेक्षाए आत्मानुं सर्वोत्कृष्ट स्वरूप विचारथी बताववामां आव्युं छे त्यारबाद आश्रव अने संवर आत्माथी जुदा छे एम बतावी, व्यवहारथी ते बंधनुं स्वरूप निरूपण करी, निर्जरा अने ते केवी रीते थाय ते देखाडवा पूर्वक बंध अने मोक्षनुं स्वरूप जणावतां द्रव्यलिंग अने भावलिंगनुं स्वरूप जणावीने व्यवहार अने निश्चय पूर्वक आत्मज्ञानमां तदाधीन आत्मा साम्य पामे छे एम बताववामां आव्युं छे ओगणीशमा जिनमत स्तुति अधिकारमां तेने समुद्र, कल्पवृक्ष, मेरु, सूर्य अने चंद्रनुं रूपक आपी, सर्वनयसहितपणुं बतावी जिनमत शिवाय बीजी कोइ पण जग्याए सर्व नयनुं गौरव नथी एम स्पष्ट करवामां आव्युं छे, ते जैनशासन सामान्य विशेषात्मक अने अर्पित

[illegible]

कही पगोरवा हता, तेमने समनारवा माटे आ सत रचनां उपाध्यायजीए दरेक गोतम सूत्रोनी गाथांने भाषा
गाथे नीचेना मुद्दाउपर भेद मान्यो छे १ श्रावने अभव्य कहेवा ने निपुण छे २ देवता पुरुषवेदना दोषनी पण
तने अधर्मी न कहेवाय ३ सूत्र अने अर्थ दरेक सम्यग्दृष्टिने होय तेनी शुद्धतां पण राखेने छे ४ तेने व्यवहारिक
कहेवानु तत्त्व एटलुज छे के तेओ संयमधर्म अंगीकार करी शकता नथी. ५ लोकांतिक आदि देवतानी अवेलना तेने
'वात' कहेवामां आवे छे ६ सम्यक्त्व पण एकलु होय तो निष्फल कहेवामां आव्यु छे, तेथी ते ज्ञाननी माफक
संयमनु अवेक्षित गयुं छे एम जणाव्युं छे ७ नारकी अने देवताउनी लेश्याओ त्रणी होइने सम्यग्दृष्टि देवताउने
सारी लेश्याओ होय छे ८ सम्यग्दृष्टि देवताउने साधु आदिकनो विनय (वंदना) करवानुं होय छे ९ तेओ
साधु आदिनु वैयावच्च करी तप भक्ति करे छे १० इन्द्रमहाराज सम्यग्वादी छे अने तेओ निश्चय नाना गोतेछे एम
जणाव्युं छे ११ इन्द्रमहाराज साधुउने अवग्रह दे छे १२ चमरेन्द्रादि इन्द्रो अने तेना लोकपालो तथागतना अविरती
आशातनानो त्याग करी विनयरूप धर्म माचरे छे १३ हरिनैगमेषीनुं वैयावच्च सन्तोष कर्युं छे १४ देवताउना मनमान
रूप मनर होय छे १५ सूर्याभ देवताए धर्मव्यवसाय ग्रहण करीने श्री जिनप्रतिमानी पूजा करी छे १६ विजय देवताए
पण तेमज कर्युं छे १७ जन्माभिषेकनो पण तेओने अधिकार छे देवताउनी पूजा सामायिक धर्म अने श्रावक ने पणी
कल्याण करनाराउी छे १८ 'पजी' शब्दथी तें जननो पाछळो नागत थशो एम नहि पण पछनर थशो, एमक रामना
दिव्यथी तेनुज फळ बताव्युं छे १९ स्थिति पण धर्मनी कहेवाय २० ज्ञानीओनो ओरोपचार पण एमं गणावा माटन

[illegible] पूर्वे कहे ली छिन्दा [illegible] ३३ [illegible] अधिकार [illegible] [illegible] कर्त्ता [illegible] अन्य अपूर्व कामोनी मालक [illegible] [illegible] अने नरिकी दुर्गतिनी [illegible] [illegible] के निरंजनी पेठे निरूपानो उपदेश के [illegible] अनुकूल [illegible] देवना दनिमाने अगे घनी [illegible] अर्थ के [illegible] इत्यादि [illegible] तत्त्व [illegible] एम नहि, केवल तेनो उपदेश के तेनो [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] स्वरूप प्रतिपादन कर्युं छे. आ दरेके दरेक मुद्दा उपर [illegible] छे.

[illegible] ज्ञानी [illegible] तेने योग्य मानुं अने तेने योग्य मनुष्य स्वरूप [illegible] [illegible] सामर्थ्य बताव्युं छे. [illegible] ते ज्ञानी परीक्षा [illegible] स्वरूप [illegible], [illegible] बुद्धि [illegible] [illegible] रीते [illegible] [illegible] मरनारी [illegible] श्रुत, चिंता अने [illegible] [illegible] स्वरूप [illegible] अधिकार पूर्ण कर्यो छे. बीजा ज्ञानयोग [illegible] स्वरूप, [illegible] मुक्ति, [illegible] [illegible] निर्णय [illegible]

व्रतादिक करीने चित्तनी शुद्धि जणावी व्यवहारथी अने निश्चयथी ज्ञानयोग समजाव्यो छे चोथा क्रिया अधिकारमां क्रिया रहित ज्ञाननु निष्फलपणुं बतावी, पतीतजानथी करेली क्रियाथी पण ज्ञाननी शुद्धि थाय छे एम जणावी, ज्ञानीने पण क्रियाबीज कर्मनो नाश करवानो छे ए समजावी, ते अधिकार पूर्ण कर्यो छे चोथा साम्याधिकारमां समताथी प्राणी केवो होय छे ते जणावी, समता वगरना सामायिकने मायिक कहेतां समताथीज परमानन्द प्राप्त थाय छे एम बताव्युं छे समताथी भरतादि राजाओ केवलज्ञान पाम्या छे, अने क्रोधथी चण्डकोशादिक मातुर्ङग पण अद्भुत गति प्राप्त करी छे दमदत्त ऋषि, नमिराजर्षि, स्कंदक सुरिना शिष्यो, मेतार्य मुनि, गजसुकुमाळ, अर्णिकापुत्र, दृढप्रहारी अने मरुदेवा माताना थयेला कल्याणमां जे समता साधन तरीके थयेली छे तने कयो मुमुक्षु आदरशे नहि ! ए जणावी चतुर्थ अधिकार अने ग्रंथ पूर्ण कर्यो छे

चोथा अध्यात्ममत खंडन अथवा अध्यात्ममत परीक्षा ग्रंथ रचवानो प्रसंग कर्ताने एक कारणथी प्राप्त थयो छे दिगंबर लोकोनी मान्यता एवी छे के केवळज्ञानीने कवळाहार होय नहि आ हकीकत खोटी छे, अने केवळज्ञान अने कवळाहारने कोइ पण प्रकारनो विरोध नथी ए हकीकतज मात्र आ ग्रंथमा प्रथम बतावी छे आ ग्रंथनी टीका पण पोतेज रची छे के जे ग्रंथ साथे आपवामां आवी छे जिनेश्वर महाराजना चोत्रीस अतिशयमा आहारनिहारनी विधिनु अदृश्यपणु ए पण एक अतिशय गणातो होवाथी केवळीने आहारनी सिद्धि जणावी, कवळाहार व्यापक नथी एम घणा विरुद्धोथी सिद्ध करी, शरीरधारणनी माफक पात्रधारण, ध्यान ते वखते न होवाथी तेना भिन्नो अनाव

अने क्षायिक गुणवाळा होवाथी मोहनो अभाव जणावी, परमौदारिक शरीर तेमने होय छे अने ते धातुरहित होय छे एवा कुविकल्पनुं खण्डन करतां जन्मथीज एक शरीर होय छे ए सिद्ध थतामां गणातो अनुत्तर थवाथी, ध्यानवाळा सातमे गुणस्थानके आहार नहि होवाथी ध्यान विनाना तेरमे गुणस्थानके तेनो निषेध थतो नथी, तेमज शुद्ध लेश्याने लीधे आहाररहितपणुं कही शकाय नहि, केमके ते तो पण जीवोने छे अने वस्त्रादिमां केवळीने ते अगियार परीषह कहेला छे ते आहार वगर घटी शके नहि, आहारनी कथाथी साधुने प्रमादीपणुं थतां पण वेदनीनी उदीरणाने उदयनी माफक भोजननुं कर्त्तापणुं मोह नथी एम जणावी, टीकामां दिगंबरोनी उत्पत्ति, रीति अने तेनुं वस्त्रपात्ररहितपणुं थवानुं कारण जणावी ग्रंथ संपूर्ण कर्यो छे टीका स्वोपज्ञ होवाथी नवीन न्यायपद्धति प्रमाणे तेना तेमने अपूर्व रचना करेली छे

पांचमा यतिलक्षणसमुच्चय प्रकरणमां साधुओना सात लक्षणोनुं विवेचन करवामां आव्युं छे; ते एम के वर्तमान साधुओना वर्तनना सुधारा माटे अने साधुधर्मनुं खरुं स्वरूप समजाववा माटे उपयोगी जणाय छे। १ मार्गने अनुसरती क्रिया २ शिक्षा ग्रहण करवानी योग्यता ३ उत्तम श्रद्धा ४ क्रियामां प्रमादरहितपणुं ५ शक्य क्रियानो आदर ६ गुण उपर तीव्र राग अने ७ मन वचन कायाथी गुरुमहाराजनी आज्ञानुं आराधन आ सात लक्षणो समजाव्यां छे पहेला मार्ग लक्षणमां मार्गनी व्याख्या करतां सिद्धान्तनी रीति अने आचरणानुं स्वरूप बतावी मत अने असत् आचरणानुं सारी रीते विवेचन करी गुरुनी आज्ञा प्रमाणे वर्त्तनारनुं केवी रीते कल्याण थाय छे ते प्रतिपादन कर्युं छे. बीजा शिक्षायोग्यत्व (प्रज्ञापनीयत्व) लक्षणमां विधि, उद्यम, स्तुति, भय, उत्सर्ग, अपवाद अने उभयवाचक सूत्रो

स्वरूप समजावी देवानानी रीति जणावेली छे श्रीना अत्र गहराामा विविध बहुमान, विविध दान, पात्रापात्र पात्र-
वाली योग्यता, धर्म अने दयानी तारतम्यता विगेरे पर विवेचन करवामां आव्युं छे पोता क्रियानां प्रमाद ए
नामना प्रकरणमां मोक्षना दरेक अनुष्ठाननी तीव्र अभिलाषा, उपदेश करवाने योग्य गुणो, दान, पात्र विगेरे विशेषार
पूर्वक प्रकाश पाडवामां आव्यो छे पाचमा शतक विद्या आदर प्रकरणमां मतान्तरादिकनी दीनतानी रुड रीते अनु
ष्ठान करवु, शुद्ध अध्यवसाय कई रीते राखवा ए विषयपर सारी रीते विचार चलाव्यो छे वळी गुणानुराग नामना
गुणवान्नी प्रशंसा कई रीते करवी ए विषयपर विवेचन कर्युं छे सातमा गुरुआज्ञा आराधन नामनां प्रकरण
करवो आवश्यक छे तेनी विचारणा, एकाकी विहार करनारने थाणनां दूषणो, विहारनी रीति, गुरु अने शिष्यना
योग्य गुणो, सत्य प्ररूपकनी प्रशंसा, दुःषमा काळमां साधुजनु अस्तित्व विगेरे विषयो सविस्तर चलाव्या छे

वळी नयरहस्य ग्रंथमां नयोनो अधिकार विस्तारथी चलाव्यो छे आ ग्रंथने अंगे एक हकीकत खास जाणवा लायक छे
श्रीमद्यशोविजयजी महाराजे दरेक विषयना रहस्य रूप 'रहस्य' शब्दथी अंकित एकसो आठ ग्रंथ रचवानो निश्चय कर्यो
हतो, अने संप्रदायथी सांभळ्युं छे के तेओए ते प्रमाणे १०८ ग्रंथो बनाव्या पण हता आ हकीकत तेमना पोतानाज
शब्दोथी पण समजाय छे तेओ भाषारहस्य नामना ग्रंथनी शरुआतमां लखे छे के भाषाविशुद्ध्यर्थं रहस्यपदांकितत्वया
चिकीर्षिताष्टोत्तरशतग्रंथान्तर्गतप्रमारहस्य स्याद्वादरहस्यादि सजातीय प्रकरणमिदमारभ्यते । तेओश्रीनो
आ निश्चय अत्र प्रगट थाय छे परंतु तेमने ते ग्रंथो पैकी हालमा मात्र नयरहस्य, भाषारहस्य अने उपदेशरहस्य ए

आ १३ क्षायिक गुणस्थान होवाथी मोहनो अभाव जणावी, परमौदारिक शरीर तेमने होय छे अने ते धातुरहित होय छे तथा केवलीपणुं प्राप्त करतां अनादीना एक शरीर होय छे ए सिद्ध थातमा शंकानो अनुवाद जणावी, ध्यानमाळा ग्रामभे गुणस्थानक आहार नहि होवाथी ध्यान विनाना तेरमे गुणस्थानके तेनो निषेध थतो नथी, तेमज शुक्ल लेश्याने जीवे आहाररहितपणुं करी शकाय नहि, केमके ते तो घणा जीवोने छे अने तत्त्वार्थमा केवलीने जे अगियार परीसह कहेला छे ते आहार वगर घटी शके नहि। आहारनी कथाथी साधुनु प्रमादीपणु थता पण वेदनीनी उदीरणा ने उदयनी सफल थोत्रानुं कर्मीपणुं स्नेह नथी एम जणावी, टीकामां दिगंबरोनी उत्पत्ति, रीति अने तेनु उपकरणरहितपणु थवानु कारण जणावी ग्रंथ संपूर्ण कर्यो छे टीका स्वोपज्ञ होवाथी नवीन न्यायपद्धति प्रमाणे तेमा तेमणे अपूर्व विद्वत्ता बतावी छे

एकला यतिलक्षणसमुच्चय प्रकरणना साधुओना सात लक्षणोनु विवेचन करवामा आव्युं छे, जे ग्रंथ ते वखतना साधुओना वर्तनने सुधारवा माटे अने साधुधर्मनु खरु स्वरूप समजाववा माटे लखायेलो जणाय छे १ मार्गने अनुसरती क्रिया २ दिशा ग्रहण करवानी योग्यता ३ उत्तम श्रद्धा ४ क्रियामा प्रमादरहितपणु ५ शक्य क्रियानो आदर ६ गुण उपर तीव्र राग अने ७ मन वचन कायाथी गुरुमहाराजनी आज्ञानु आराधन आ सात लक्षणो समजाव्या छे पहेला मार्गे प्रवर्तनारनी व्याख्या करता सिद्धान्तनी रीति अने आचरणानु स्वरूप बतावी सत् अने असत् आचरणानु स्पष्ट रीते विवेचन करी गुरुनी आज्ञा प्रमाणे वर्तनारनु केवी रीते कल्याण थाय छे ते प्रतिपादन करेलु छे बीजा दिशायोग्यत्व (अध्यात्मपात्र) उत्सर्गमां विधि, उद्यम, स्तुति, नय, उत्सर्ग, अपवाद अने उत्सर्गापवाद सूत्रोनुं

स्वरूप समजावी देवानी रीति जणावेली छे बीजा अने त्रीजा विधिनुं बहुमान, विधिनुं ज्ञान, पचखाण वगेरे धानी योग्यता, भय अने दयानी तारतम्यता विगेरे पर विवेचन करवामां आव्युं छे चोथा विभागमां प्रवचन ए नामना सद्गुणमां मोक्षना दरेक अनुष्ठाननी तीव्र अभिलाषा, उपदेश करवा योग्य गुणो, दान, पान विगेरे विशेष पूरतो प्रकाश पाडवामां आव्यो छे पांचमा शास्त्र विगेरे आदर सम्पूर्ण गणधरादिकनी देशनानी कई रीते अनु ष्ठान करवु, शुभ अध्यवसाय कई रीते राखवा ए विषय सारी रीते विचार कराव्यो छे छठा गुणानुराग नामना गुणवान्नी प्रशंसा कई रीते करवी ए विषयपर विवेचन कर्युं छे सातमा गुरुआज्ञा आराधन नामना सद्गुण केटलो आवश्यक छे तेनी विचारणा, एकाकी विहार करनारने लागता दूषणो, विहारनी रीति, गुरु अने शिष्यना योग्य गुणो, सत्य प्ररूपकनी प्रशंसा, दुःषमा कालमां साधुओनुं अस्तित्व विगेरे विषयो सविस्तर जणाव्या छे

उक्त नयरहस्य ग्रंथमा नयोनो अधिकार विस्तारथी जणाव्यो छे आ ग्रंथने अंगे एक हकीकत खास जाणवा लायक छे श्रीमद्यशोविजयजी महाराजे दरेक विषयना रहस्य रूप 'रहस्य' शब्दथी अंकित एकसो आठ ग्रंथ करवानो निश्चय कर्यो हतो, अने संप्रदायथी जाणवामां छे के तेओए ते प्रमाणे १०० ग्रंथो बनाव्या पण हता आ हकीकत तेमना पोताना शब्दोथी पण समजाय छे तेओ भाषारहस्य नामना ग्रंथनी शरुआतमां कहे छे के भाषाविशुद्धये रहस्यपदांकितत्या चिकीर्षिताष्टोत्तरशतग्रंथान्तर्गतप्रमारहस्य स्याद्वादरहस्यादि सजातीय प्रकरणमिदमारभ्यते । तेओश्रीनो आ निश्चय अत्र प्रगट थाय छे कमनसीबे ते ग्रंथो पैकी हालमा मात्र नयरहस्य, भाषारहस्य अने उपदेशरहस्य ए

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] अने [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सातमा नयप्रदीप ग्रंथमा पहेला सप्तभंगी समर्थन सर्गमां सप्तभंगी कइ रीते बने, स्यात् शी वस्तु छे, स्यात् शब्द न होय तोपण तेनो अध्याहार करवानु कारण सविस्तरपणे समजावी सात भांगा बनवानी हकीकत पछी सीधा वाक्योमा सारी रीते समजाव्यो छे बीजा नयसमर्थन सर्गमां नयनी वस्तु, नयनी मर्यादा, द्रव्यनु स्वरूप स्वजात अने विजात पर्यायो अने तेनुं स्वरूप, द्रव्यार्थिकना दश भेद जणावता साथे द्रव्यार्थिक नयनु स्वरूप सारी रीते निरूपण कर्यु छे. आगळ पर्यायार्थिक नयनी व्याख्या करतां पर्याय अने गुणोना जुदा भेद केवुं स्वरूप बतावनार व्याख्या साथे कहेवामां आव्युं छे, अने सामान्य तथा विशेष बन्नेनो समावेश पण तेमां थाय छे एम जणावी, पहेला नैगम नयनु स्वरूप जणावतां धर्म, धर्मी अने धर्मधर्मी विषे नैगम नय शु बोले छे अने ते केटलुं पुष्टिवान्‌ छे ते बतावी नैगमाभासनु स्वरूप बताव्युं छे बीजा संग्रह नयनुं विवेचन करतां तेनुं स्वरूप, तेना भेदो अने ते भेदोनुं पण लक्षण अने तेना आभासो जणाव्या छे त्रीजा व्यवहार नयनुं स्वरूप जणावतां सद्भूत, शुद्ध सद्भूत, उपचरित सद्भूत, अनुपचरित सद्भूत, अशुद्ध सद्भूत, स्वजात्यसद्भूत, विजात्यसद्भूत, उभयासद्भूत, स्वजात्युपचरितासद्भूत, विजात्युपचरितासद्भूत, उभयोपचरितासद्भूत, असद्भूत, उपचरितासद्भूत, अनुपचरितासद्भूत आदिने जणावी, नव प्रकारना उपचारो अने सबंधो जणाववामां आव्या छे पर्यायार्थिक नयना चार भेदमां प्रथम ऋजुसूत्र नयनु लक्षण, तेना भेदो, बीजा शब्द नयनु लक्षण तेमज काळ, कारक, लिंग, उपसर्ग आदिकनी भिन्नार्थनी व्याख्या जणावी, त्रीजा समभिरूढ नयनु लक्षण कहेता साथे 'पर्याय' शब्दमा रहेला जुदा जुदा अर्थो समजावी एवंभूत

[illegible]

[illegible] सत्ता, [illegible] [illegible]

[illegible] मध्ये [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

रोनु स्वरूप समजावी श्रुतज्ञानना चौद भेदो सारी रीते समजाव्या छे पारमार्थिक प्रत्यक्षनां छ प्रकारना अवधि (अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, प्रतिपाती अने अप्रतिपाती) नु अने मनःपर्यवना ऋजुमति अने विपुलमति ए बे भेदोनु स्वरूप जणावी, केवलज्ञाननु स्वरूप समजावतां योगज धर्मनी जेम ज्ञान करता तेनुं खंडन, तथा परोक्ष प्रमाणनुं स्वरूप सारी रीते निवेदन कर्युं छे आगम परोक्षनुं स्मरण कही तेना स्मरण, प्रत्यभिज्ञा, तर्क, अनुमान अने आगम एवा पांच भेदोमां स्मरण प्रमाणरूप कई रीते थइ शके, तथा मानवानी जरूर छे ते समजावी, प्रत्यभिज्ञानु स्वरूप, तेने जुदुं मानवानी जरुर अने अनुमान आदिनो तेमां समावेश केवी रीते थाय छे ते सारी रीते समजाव्युं छे त्रीजा तर्क नामना भेदनो अगीकार व्याप्तिग्रहमां उपयोगी छे अने ते सिवाय शब्दार्थनो वाच्यवाचक संबंध मालूम पडे नहि, माटे तर्कनुं स्वतः प्रमाणपणुं छे एम समजाव्युं छे आगळ स्वार्थ अने परार्थ ए बे प्रकारना अनुमान अने हेतुनु लक्षण जणावता त्रिरूप आदि हेतु न घटे एम जणावी साध्यनुं स्वरूप, पक्षनी सिद्धि विगेरे समजावी दृष्टांत आदिकनी जरुर मंदबुद्धिने माटे छे ते समजाव्युं छे हेतुना विधिसाधक, प्रतिषेधसाधक, उपलब्धि अने अनुपलब्धिना भेदो बहु विस्तारपूर्वक समजावी असिद्ध, विरुद्ध अने अनेकान्तिक एवा त्रण हेत्वाभासोनु स्वरूप समजावता बौद्धोए मानेला तेथी अधिक हेत्वाभासोनुं खंडन कर्युं छे आगमप्रमाणनु निरूपण करता अनुमानथी तेनु जुदापणु साबीत करी, सप्तभंगी, दरेकनुं स्वरूप, दरेकनु परस्पर जणावी सकलादेश अने विक-

[illegible] सभी श्रन शब्दनुं स्वरूप गणाव्युं छे श्रत [illegible]

[illegible] प्रभृति [illegible] एवी [illegible] आदि जेवो श्रनं [illegible] आनाम [illegible]

[illegible] निगना प्रसारी [illegible] लक्षण, [illegible] निगना करी [illegible] जिगना कइ रीते [illegible] ते आ ग्रंथ [illegible] ग्रन्थामीओने [illegible] ग्रंथ करी [illegible] छे के आ ग्रंथ [illegible] प्रार्थनारूपी [illegible] पताव्यो छे. आ [illegible] ग्रंथ बनाव्या [illegible] व्याख्यानी [illegible] छे—

[illegible] यथार्थमिन्दु ॥

[illegible] प्रसिद्ध [illegible]

[illegible]

मतिज्ञाननुं स्वरूप, तेनु श्रुतज्ञानथी जुदापणुं, श्रुतनिश्रित अश्रुतनिश्रित भेदो, पदार्थ, वाक्यार्थ, महावाक्यार्थ अने ऐदंपर्यार्थ रूपी बोधनु श्रुतपणुं, ते चारे प्रकारना बोधनी घटना अने बौद्धोना स्वसंवेदन ज्ञानना पण ज्ञानरूपपणानुं निराकरण अवग्रहादिकना अनुक्रमनी जरुर, अवग्रहना भेदो, तेनुं स्वरूप, तेना प्रामाण्य अप्रामाण्यपणाना स्वतस्त्व परतस्त्वनो निर्णय, सम्यक्त्वने अंगे ज्ञाननी प्रामाण्यता, स्याद्वादने अंग एक पर्यायना ज्ञानथी सर्व पर्यायनुं ज्ञान अने अवग्रहादिक भेदोमां ज्ञान दर्शननी व्यवस्था जणावी मतिज्ञाननुं स्वरूप अत्यंत गहन रीते सूक्ष्म बोध थाय तेम वर्णव्युं छे श्रुतज्ञानना विवेचनमां तेनुं स्वरूप, मतिश्रुतनो तफावत अने महावादीना मते ते बन्नेनुं ऐक्य वगेरे बाबतमां आव्युं छे त्रीजा अवधिज्ञानना विषयमां तेनुं स्वरूप अने परमावधिनो विषय सारी रीते समजावी मनःपर्यवनी भेदनी सिद्धता साबीत करी छे चोथा मन पर्याय ज्ञानना स्वरूपमां तेनुं स्वरूप जणावी चिंतित अर्थ जाणवानी रीति तेमज मनःपर्यायमां दर्शननो अंगीकार अने अनंगीकार, तेमज मन पर्यायथी जणाता ज्ञानके मननुं स्वरूप समजाव्युं छे पांचमां केवलज्ञानना विषयमां तेनु स्वरूप, सर्वज्ञतानी सिद्धि, तेनुं प्रमाणिकपणुं, स्वभावावरणना नाशनी आवश्यकता, कर्मनुं आवारकपणु, स्त्रीजातिकनी कवलाहारथी तेमज शुक्लादिथी उत्पत्ति माननारा जैनाभासनु खंडन, वैशेषिकादि मान्यताने बांधना मतमां सर्वज्ञतानुं अव्यवस्थितपणुं, एकत्व ब्रह्मज्ञानने केवलज्ञान तरीके माननारनु निराकरण, परमात्मादिक त्रण शक्तिओनुं खंडन, दृष्टि सृष्टिवादनुं खंडन, ब्रह्मविषय अने ब्रह्माकार वृत्तिनुं खंडन, अध्यासनु निराकरण, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयनी अपेक्षाए सूक्ष्म विचारश्रेणी अने अज्ञान स्वरूपना निराकरण विचारनी विवेचन कर्युं

जी, अने तेमज श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी तथा श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणजीना केवलज्ञान दर्शन अने तेना [illegible] संबंधी मतो उपरथी [illegible] तर्कनी ते विषयनी गाथाओनु सारी रीते विवेचन करी ते तमाम मतोनु नय अपे- [illegible] स्वीकारवा कर्यु छे

आ [illegible] [illegible] दश प्रथोथी आ प्रथमाला पूर्ण करवामा आवी छे

[illegible] आ दश ग्रंथोनो उपोद्घात [illegible] लखाव्यो छे तो पण सामान्य रीते जेम बीजा सामान्य ग्रंथोना उपोद्घा- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आपी शकाय छे तेम अहीं बनी शके तेवु नथी, तेनु कारण आ ग्रंथोनु अतिशय गहनपणु छे [illegible] [illegible] [illegible] बुद्धिना जीवोने फक्त उद्देश मात्र मालूम पडे माटे आ उपोद्घात लखवामा आव्यो छे बाकी [illegible] [illegible] महाराजनो अत्यंत गहन वाक्योनो टुकाणथी बोध करवानो उद्यम दासने पात्र बनावे तेवु छे तो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जेम बोध थाय तेम प्रयत्न करवानी जरुर जाणी आ उद्यम कर्यो छे

[illegible] [illegible] मारवाडी [illegible] माटे आ ग्रंथो बहार पाडवा सूचना थती हती पण वर्तमान समयमा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उपरथी असंभवित नहि तो अशक्य तो जरुर छे एम जाणवाथी ते तरफ उद्यम [illegible] [illegible] नथी, [illegible] [illegible] पुस्तको सारी रीते बहार आव्या पछी बीजी भाषाओ तेना भाषान्तरो करी बहार [illegible] [illegible] [illegible] छे [illegible] [illegible] मूळ ग्रंथोना उद्धार करवानी अगत्य जाणी आ ग्रंथोनु मूळमात्र बहार [illegible] [illegible] छे

॥ न्यायाचार्य श्रीयशोविजयोपाध्यायकृत ॥

॥ अध्यात्मसारग्रंथ ॥

॥ ऐन्द्रश्रेणिनत श्रीमान्नन्दतान्नाभिनंदनः ॥ उद्दधार युगादौ यो जगदज्ञानपङ्कतः ॥ १ ॥ श्रीशान्तिस्तान्तिभिद्भूयाद्भविनां मृगलाञ्छनः ॥ गावः कुवलयोल्लासं कुर्वते यस्य निर्मलाः ॥ २ ॥ श्रीनेमिः जिन स्वामि युगल यशसेव य ॥ मान्येन मुखो द्वेन पाञ्चजन्यमपूपुरत् ॥ ३ ॥ जीयात् फणिफणप्रान्तसंक्रान्ततनुरेकदा ॥ उद्धर्तुमिव विश्वानि श्रीपार्श्वो बहुरूपभाक् ॥ ४ ॥ जगदानंदनः स्वामी जयति ज्ञातनंदनः ॥ उपजीवंति यद्वाचमद्यापि विबुधा सुधाम् ॥ ५ ॥ एतानन्यानपि जिनानमस्कृत्य गुरूनपि ॥ अध्यात्मसारमधुना प्रकटीकर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥ शास्त्रात्परिचितां सम्यक्संप्रदायाच्च धीमतां ॥ इहानुभवयोगाच्च प्रक्रियां कामपि ब्रुवे ॥ ७ ॥ योगिनां प्रीतये पद्यमध्यात्मरसपेशलं ॥ भोगिनां भामिनीगीतं संगीतकमयं यथा ॥ ८ ॥ कान्ताधरसुधास्वादाद्यूनां यज्जायते सुखम् ॥ बिन्दुः पार्श्वे तदध्यात्मशास्त्रास्वादसुखोदधेः ॥ ९ ॥ अध्यात्मशास्त्रसंभूतसंतोषसुखशालिन ॥ गणयंति न राजानं न श्रीदं नापि वासवम् ॥ १० ॥ यः किलाशिक्षिताध्यात्मशास्त्रः पाण्डित्यमिच्छति ॥ उत्क्षिपत्यंगुलीं पंगुः स स्वर्द्रुफललिप्सया ॥ ११ ॥ दंभपर्वतदंभोलिः सौहार्दाम्बुधिचन्द्रमाः ॥ अध्यात्मशास्त्रमुत्तालमोह-

…नाय ॥ १२ ॥ अध्या धर्मस्य गुप्तः स्यात्पापचौरः पलायते ॥ अध्यात्मशास्त्रसौराज्ये न स्यात्कश्चिदुपप्लवः ॥
॥ १३ ॥ येषामध्यात्मशास्त्रार्थतत्त्वं परिणतं हृदि ॥ कषायविषयावेशक्लेशस्तेषां न कर्हिचित् ॥ १४ ॥ निर्दयः कामचंडालः
पण्डितानपि पीडयेत् ॥ यदि नाध्यात्मशास्त्रार्थबोधयोधकृपा भवेत् ॥ १५ ॥ विषवल्लिसमा तृष्णा वर्धमाना मनोवने ॥
अध्यात्मशास्त्रदात्रेण छिंदति परमर्षयः ॥ १६ ॥ वने वेश्म धनं दौःस्थ्ये तेजो ध्वान्ते जलं मरौ ॥ दुरापमाप्यते धन्यैः
कलावध्यात्मवाङ्मयम् ॥ १७ ॥ वेदान्यशास्त्रवित् क्लेशं रसमध्यात्मशास्त्रवित् ॥ भाग्यभृद्भोगमाप्नोति वहति चंदनं खरः
॥ १८ ॥ भुजास्फालनहस्तास्यविकाराभिनयाः परे ॥ अध्यात्मशास्त्रविज्ञास्तु वदन्त्यविकृतेक्षणाः ॥ १९ ॥ अध्यात्मशास्त्र
हेमाद्रिमथितादागमोदधेः ॥ भूयांसि गुणरत्नानि प्राप्यते विबुधैर्न किम् ॥ २० ॥ रसो भोगावधिः कामे सद्भक्ष्ये भोज-
नावधिः ॥ अध्यात्मशास्त्रसेवायां रसो निरवधिः पुनः ॥ २१ ॥ कुतर्कग्रन्थसर्वस्वगर्वज्वरविकारिणी ॥ एति दृङ्निर्मली
भावमध्यात्मग्रन्थभेषजात् ॥ २२ ॥ धनिनां पुत्रदारादि यथा संसारवृद्धये ॥ तथा पाण्डित्यदृप्तानां शास्त्रमध्यात्मव-
र्जितम् ॥ २३ ॥ अध्येतव्यं तदध्यात्मशास्त्रं भाव्यं पुनः पुनः ॥ अनुष्ठेयस्तदर्थश्च देयो योग्यस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥

॥ इत्यध्यात्मसारे माहात्म्याधिकारः ॥ १ ॥

॥ भगवन् किं तदध्यात्मं यदित्थमुपवर्ण्यते ॥ शृणु वत्स यथाशास्त्रं वर्णयामि पुरस्तव ॥ १ ॥ गतमोहाधिकाराणामात्मा-
नमधिकृत्य या ॥ प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्मं जगुर्जिनाः ॥ २ ॥ सामायिकं यथा सर्वचारित्रेष्वनुवृत्तिमत् ॥ अध्यात्म
सर्वयोगेषु तथानुगतमिष्यते ॥ ३ ॥ अपुनर्बन्धकाद्यावद्गुणस्थानं चतुर्दशम् ॥ क्रमशुद्धिमती तावत् क्रियाध्यात्ममयी मता

[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible]
दीनो मत्सरी जयवान् शठ ॥ अतो जराजितंदी स्यान्निष्फलारनर्थक ॥ ६ ॥ शांतो दांतः सदा गुप्तो मोक्षार्थी विश्व
वत्सल ॥ निर्दंभां यां क्रियां कुर्यात् साध्यात्मगुणवृद्धये ॥ ७ ॥ अत एव जन पृच्छोत्पन्नसंज्ञ [illegible] ॥ साधुमार्ग
जिगमिषुर्धर्म पृच्छन् क्रियास्थित ॥ ८ ॥ प्रतिपित्सुः सृजन् पूर्वं प्रतिपन्नश्च दर्शनम् ॥ श्राद्धो यतिश्च त्रिविधोऽनंतांशक्ष
पकस्तथा ॥ ९ ॥ दृङ्मोहक्षपको मोहशमकः शांतमोहकः ॥ क्षपकः क्षीणमोहश्च जिनोऽयोगी च केवली ॥ १० ॥ यथा
क्रममी प्रोक्ता असंख्यगुणनिर्जरा ॥ यतितव्यमतोऽध्यात्मवृद्धये कलयापि हि ॥ ११ ॥ ज्ञानं शुद्धं क्रिया शुद्धे[illegible]
वात्रिह संगतौ ॥ चक्रे महारथस्येव पक्षाविव पतत्रिण ॥ १२ ॥ तत्पञ्चमगुणस्थानादारभ्यैवैतदिच्छति ॥ निश्चयो व्य
वहारस्तु पूर्वमप्युपचारत ॥ १३ ॥ चतुर्थेपि गुणस्थाने शुश्रूषाद्या क्रियोचिता ॥ अप्राप्तस्वर्णभूषाणां रजताभरणं यथा ॥ १४ ॥
अपुनर्बंधकस्यापि या क्रिया शमसंयुता ॥ चित्रा दर्शनभेदेन धर्मविघ्नक्षयाय सा ॥ १५ ॥ अशुद्धापि हि शुद्धायाः क्रिया
हेतु सदाशयात् ॥ ताम्रं रसानुवेधेन स्वर्णत्वमधिगच्छति ॥ १६ ॥ अतो मार्गप्रवेशाय व्रतं मिथ्यादृशामपि ॥ द्रव्यसम्य
क्त्वमारोप्य ददते धीरबुद्धयः ॥ १७ ॥ यो बुध्वा भवनैर्गुण्यं धीरः स्याद्व्रतपालने ॥ स योग्यो भावभेदस्तु दुर्लक्ष्यो नोप
युज्यते ॥ १८ ॥ नोचेन्मार्गपरिज्ञानासिद्धिमिति[illegible]विपराहतेः ॥ दीक्षाऽदानेन भव्यानां मार्गोच्छेदः प्रसज्यते ॥ १९ ॥ अशु
द्धानादरेऽभ्यासायोगान्नो दर्शनाद्यपि ॥ सिध्येन्निसर्गजं मुक्त्वा तदप्याभ्यासिकं यतः ॥ २० ॥ शुद्धमार्गानुरागेणाशठानां
या तु शुद्धता ॥ गुणवत्परतंत्राणां सा न क्वापि विहन्यते ॥ २१ ॥ विषयात्मानुबंधैर्हि त्रिधा शुद्धं यथोत्तरं ॥ ब्रुवते कर्म

तथाद्यं मुग्धयं पत्तावधि ॥ २२ ॥ अज्ञानिना द्वितीयं तु लोकदृष्ट्या यमादिकम् ॥ तृतीयं शांतवृत्त्या तत्तत्त्वसंवेदनानुगम् ॥ २३ ॥ आद्यादाहारायाद्युष्यान्मोक्षबाधकबाधनं ॥ सज्ञायाशयलेशेनोचितं जन्म परे जगुः ॥ २४ ॥ द्वितीयाद्दोषहानि स्यात्काचिन्मण्डूकचूर्णवत् ॥ आत्यंतिकी तृतीयात्तु गुरुलाघवचिंतया ॥ २५ ॥ अपि स्वरूपतः शुद्धा क्रिया तस्माद्विशुद्धिकृत् ॥ मौनीन्द्रव्यवहारेण मार्गबीजं दृढादरात् ॥ २६ ॥ गुर्वाज्ञापारतन्त्र्येण द्रव्यदीक्षाग्रहादपि ॥ वीर्योल्लासक्रमात्प्राप्ता बहवः परमं पदम् ॥ २७ ॥ अध्यात्माभ्यासकालेपि क्रिया काप्येवमस्ति हि ॥ शुभौघसंज्ञानुगतं ज्ञानमप्यस्ति किंचन ॥२८॥ अतोज्ञानक्रियारूपमध्यात्मं व्यवतिष्ठते ॥ एतत्प्रवर्धमानं स्यान्निर्दंभाचारशालिनाम् ॥ २९ ॥ ॥ ॥

॥ इत्यध्यात्मस्वरूपाधिकार ॥ २ ॥

॥ दंभो मुक्तिलतावह्निर्दंभो राहुः क्रियाविधौ ॥ दौर्भाग्यकारणं दंभो दंभोऽध्यात्मसुखार्गला ॥१॥ दंभो ज्ञानाद्रिदंभोलिर्दंभः कामानले हविः ॥ व्यसनानां सुहृद्दंभो दंभश्चौरो व्रतश्रियः ॥ २ ॥ दंभेन व्रतमास्थाय यो वांछति परं पदम् ॥ लोहनावं समारुह्य सोऽब्धेः पारं यियासति ॥ ३ ॥ किं व्रतेन तपोभिर्वा दंभश्चेन्न निराकृतः ॥ किमादर्शेन किं दीपैर्यद्यान्ध्यं न दृशोर्गतम् ॥ ४ ॥ केशलोचधराशय्याभिक्षाब्रह्मव्रतादिकम् ॥ दंभेन दुष्यते सर्वं त्रासेनेव महामणिः ॥५॥ सुत्यजं रसलाम्पट्यं सुत्यजं देहभूषणम् ॥ सुत्यजाः कामभोगाद्या दुस्त्यजं दंभसेवनम् ॥ ६ ॥ स्वदोषनिह्नवो लोकपूजा स्याद्गौरवं तथा ॥ इयतैव कदर्थ्यंते दंभेन बत बालिशाः ॥ ७ ॥ असतीनां यथा शीलमशीलस्यैव वृद्धये ॥ दंभेनाव्रतवृद्ध्यर्थं व्रतं वेषभृतां तथा ॥ ८ ॥ जानाना अपि दंभस्य स्फुरितं बालिशा जनाः ॥ तत्रैव धृतविश्वासाः प्रस्खलंति पदे पदे ॥ ९ ॥

महो मोहस्य माहात्म्यं दीनं [illegible] ॥ दंभेन यदि युंजति [illegible] ॥ १० ॥ [illegible]
वन्हिर्दिने निशा ॥ धने शौर्ये कविः [illegible] दंभ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible]
गुण गुणाकृना तस्य न तु दंभेन जीवनम् ॥ १२ ॥ [illegible] न दो [illegible] ॥ [illegible]
दंभः मधुसेवक ॥ १३ ॥ निर्दंभ [illegible] ॥ [illegible] ॥ १४ ॥
व्रतजातामद्भुतं ये [illegible] ॥ [illegible]
कृकाजोचितामपि ॥ [illegible] ॥ १५ ॥ [illegible] ॥ [illegible]
मथने विम्बे हीनोपि धूर्तकैतवः ॥ १७ ॥ [illegible]
दमनः ॥ १० ॥ आत्मार्थिना [illegible] दंभोऽनर्थनिबंधनम् ॥ [illegible] ॥ १९ ॥ [illegible]
नानुमत किंचिदपि [illegible] वा न मरेना ॥ कार्यं [illegible] ॥ २० ॥ [illegible]
ऽपि नोचितः ॥ निष्कृष्टोऽपि पोनस्य सिंधुं [illegible] ॥ २१ ॥ [illegible] ॥ [illegible]
त्परिहाराय यतितव्यं महात्मना ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति [illegible] ॥ ६ ॥

॥ तदेव निर्दंभाचरणपटुना [illegible]
हृती मता वैराग्यास्थामियपरनपीना गुण्यते ॥ १ ॥ [illegible]

[illegible] न गर्व कण नानि ॥ २ ॥ गिरा
[illegible] ॥ अथगाङ्गमाराः कृतश्रुगिशाश्र
[illegible] निपीनीते यत्र प्रकृति
[illegible] महागानमकरम् ॥ ४ ॥ अविद्यानां
[illegible] दनान् प्रकटयति यत्रकमामुलो
[illegible] क्यमति प्रयाती गामामीननिप
[illegible] गमनम् ॥ ६ ॥ धनं मे गेहे
[illegible] निरुपनुमनन्नृत कृष्पदाम
[illegible] यशी धामनिनं
[illegible] विज्ञायम् ॥ ७ ॥ महाकोणे गृधो-
[illegible] पतिः स्मशाने
[illegible] गुणविद्वलं वागुम-
[illegible] ॥ १० ॥ [illegible]

[illegible]

रूपं वैरूप्यं रतिकरमिदं कस्य नु नरे ॥ ११ ॥ स्वोद्दामः कामः स्मराति परिपंथी गुणमहीमविश्राम पार्श्वस्थितनुपरिणत
मस्य कवद्रः ॥ चित्रा यंत्र शापन्मदकपनर्ता पामरमतं पदामः किं नाम प्रकटनयधामस्थितिमुज्यम् ॥ १२ ॥ मृगाक्षीः
निर्धन विषयविरक्ता यत्र यतिनः कराक्रमोपार्जितमसरनि शौच गतयति ॥ स्मरस्वेदछेदक्षपितगुणभेदक्षतुदिनं जयमीश्वे
श्रीष्मे किमिह शरणं तापहरणम् ॥ १३ ॥ पिता माता भ्राताप्यनिमित्तमित्राथनिमतो गुणग्रामज्ञाता न खलु धनदाता च
धनवान् ॥ जनाः स्वार्थस्नातायनिशमपरातायनरताः प्रमाता कः स्यातामिह जनगुणस्यास्तु रसिकः ॥ १४ ॥ पाणीः
आणिगृहीतस्त्वहह भवति स्वार्थ इह यान् त्यनायुक्तैकत्करणवदसूक्ष्मानपरथा ॥ चिरं स्याते घनश्रेऽमृतमिति च निन्दा-
मदनिद्रमयादिरुद्वेगो यदि न गदितैः किं तदपिकैः ॥ १५ ॥ हस्तां प्रातैः कांतैः कथयति गुह कोपक्षितैरमीन्ति भिन्न
स्यादूपनघनजिधीगामपि गुणी ॥ उपायैस्तुत्याद्यैरपायति रोष कथमपीत्यहो मोहस्येय जननजनवैरस्यघटना ॥ १६ ॥
प्रिया प्रेम्णा पुत्रो विनय इह पुत्री गुणरतिर्विवेकाग्यम्नातः परिणतिरनिधा च जननी ॥ विशुद्धस्य स्वस्य स्फुरति हि
युद्धं स्फुटमिदं नय छलो दृष्टं तदपि यत संयोगगुणधी ॥ १७ ॥ गुरु प्रेमारज्जे वदनु तदनिछेदघटने उडुछेदे तु या
स्वप कजिनयेश विपद्यते ॥ विपाकादाराध्याद्विषयव्रतरत्तापनद्रुवाकालोपरिमण्दरिमनक्षचिदपि सुखं हत न जने ॥ १८ ॥
मृगाक्षीस्थाणीरिह हि निहन धर्मकर्मक्र लिखिता हदेशा इह च वहुधै रागरचिरैः ॥ भ्रमापूर्णे भूरा व्यसनशतगृभाथ
तदिदं महामोहद्रोणीरमणरणजपिः खलु नमः ॥ १९ ॥ हसति क्रीडति ग्लानमथ च निर्वति वहुधा स्वंति भदति दृष्य-

१ महाकेशशिति पाठान्तरम्।

[illegible] विषाद् [illegible] ॥ [illegible] दयति परित्यजति धिरला [illegible] मोदोन्मादं क्षमति तनुजाजः परिगता ॥ २० ॥
[illegible] पुनदमणाडीघारयाने विपदवनितायौवनमिव ॥ अनिष्णाते पत्यौ मृगदृशा इव स्नेहलहरी
[illegible] हृदयं तात्त्विकरराम् ॥ २१ ॥ प्रयाते मज्ञाने [illegible] रतिरिव रतिया स्यापकश्रुता ॥ दिपकज्ञान वा तिमिर-
[illegible] ॥ [illegible] स्फुरति विदिते तत्त्वविषये [illegible] साधूनामुपरतविकल्पस्थिरधियाम् ॥ २२ ॥
[illegible] पीयूषंस्वदित इति पूर्वं मतिरभूत् ॥ अकस्मादस्माकं परिकलिततत्त्वोपनिषदा-
[illegible] ॥ २३ ॥ दधाना काठिन्य निरवधिकमाविवेकनवमगवाः पाषाणीकुचक-
[illegible] ॥ [illegible] सुमसरस्वायाम्यन्ति विधी विदानन्दस्यद मदज इति तन्योरस्तु विरति ॥ २४ ॥ भवे
[illegible] न मा ज्ञानध्यानश्रमजनिता किं स्वमनसि ॥ वहिर्याः प्रेयस्यः किमु मनसि ता नात्म-
[illegible] सुखमिव त्वय परम् ॥ २५ ॥ पराधीनं शर्म्म दयि विषयकान्तौघमविज्ञ भवे प्रीतिः स्थान
[illegible] ॥ पुनस्तु स्वाधीनेऽन्तर्दिखि करणौ मुक्यरहिते निलीनाम्निशति प्रगलितनयाध्यात्मिकसुखे ॥२६॥
[illegible] खलु [illegible] रामनुपनिदानं कृतधिय ॥ स्थिरीभूते यस्मिन्विधुकिरणकर्पूरविमला
[illegible] स्थिरशिखिराम् ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति [illegible] ॥ ४ ॥

॥ भवस्वरूपविज्ञानाद्द्वेषान्नैर्गुण्यदृष्टिजात् ॥ तदिच्छोच्छेदरूपं द्राग् वैराग्यमुपजायते ॥ १ ॥ सिद्धा विषयसौख्यस्य वैराग्यं वर्णयन्ति ये ॥ मतं न युज्यते तेषां यावदर्थाप्रसिद्धितः ॥ २ ॥ अप्राप्तत्वभ्रमादुच्चैरवाप्तेष्वप्यनन्तशः ॥ कामभोगेषु मूढानां समीहा नोपशाम्यति ॥ ३ ॥ विषयैः क्षीयते कामो नेन्धनैरिव पावकः ॥ प्रत्युत प्रोल्लसच्छक्तिर्भूय एवोपवर्धते ॥ ४ ॥ सौम्यत्वमिव सिंहानां पन्नगानामिव क्षमा ॥ विषयेषु प्रवृत्तानां वैराग्यं खलु दुर्वचम्[१] ॥ ५ ॥ अकृत्वा विषयत्यागं यो वैराग्यं दिधीर्षति ॥ अपथ्यमपरित्यज्य स रोगोच्छेदमिच्छति ॥ ६ ॥ न चित्ते विषयासक्ते वैराग्यं स्थातुमप्यलम् ॥ अयोघन इवोत्तप्ते निपतन्बिन्दुरम्भस ॥ ७ ॥ यदीन्दुः स्यात् कुहूरात्रौ फलं यद्यवकेशिनि ॥ तदा विषयसंसर्गिचित्ते वैराग्यसंक्रम ॥ ८ ॥ भवहेतुषु तद्द्वेषाद्विषयेष्वप्रवृत्तितः ॥ वैराग्यं स्यान्निराबाधं भवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥ ९ ॥ चतुर्थेऽपि गुणस्थाने नन्वेवं तत् प्रसज्यते ॥ युक्तं खलु प्रमातॄणां भवनैर्गुण्यदर्शनम् ॥ १० ॥ सत्यं चारित्रमोहस्य महिमा कोऽप्ययं खलु ॥ यदन्यहेतुयोगेऽपि फलायोगोऽत्र दृश्यते ॥ ११ ॥ दशाविशेषे तत्रापि न चेदं नास्ति सर्वथा ॥ स्वव्यापारहतासंगं तथा च स्तवभाषितं ॥ १२ ॥ यदा मरुन्नरेन्द्रश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते ॥ यत्र तत्र रतिर्नाम विरक्तत्वं तदापि ते ॥ १३ ॥ त्वेष्टा यस्य त्रिविधा प्रवृत्तिः कर्मभावना ॥ रतिस्तस्य विरक्तस्य सर्वत्र शुभवेद्यतः ॥ १४ ॥ अतश्चाक्षेपकज्ञानात् कान्तायां भोगसन्निधौ ॥ न शुद्धिप्रक्षयो यस्माद्धारिभद्रमिदं वचः ॥१५॥ मायाम्भस्तत्त्वतः पश्यन्ननुद्विग्नस्ततो द्रुतम् ॥ तन्मध्येन प्रयात्येव यथा व्याघातवर्जितः ॥ १६ ॥ भोगान् स्वरूपतः पश्यंस्तथा मायोदकोपमान् ॥ भुञ्जानोऽपि ह्यसंगः सन् प्रयात्येव परं पदम् ॥ १७ ॥ भोगत

१ दुर्वचमिति वा पाठः ।

[illegible] ॥ मायोदकदद्दावेवाभान यातीह क यथा ॥ १८ ॥ स तत्रैव जलोद्विग्नो यथा तिष्ठत्यस-
[illegible] ॥ [illegible] हि तथा [illegible]मोहितः ॥ १९ ॥ धर्मशक्तिं न हन्त्यत्र भोगयोगो बलीयसी ॥ इति दीपापहो
[illegible] ॥ २० ॥ बध्यते बालकामकनो यथा श्लेष्मणि मक्षिका ॥ शुष्कगोलवदश्लिष्टो विषयेभ्यो न बध्यते
॥ २१ ॥ [illegible] क्वचित् ॥ निवृत्तिरिति नो युक्ता योगानुगतज्ञानिनाम् ॥२२॥ यस्मिन्निषेव्यमाणेऽपि
[illegible] कदाचन ॥ तेनैव तस्य शुद्धिः स्यात् कदाचिदिति हि श्रुतिः ॥ २३ ॥ विषयाणां ततो बन्धजनने नियमोऽस्ति
न ॥ [illegible] बन्धो ज्ञानिनां तु न कर्हिचित् ॥ २४ ॥ सेवतेऽसेवमानोऽपि सेवमानो न सेवते ॥ कोऽपि पारजनो न
[illegible] ॥ २५ ॥ अत एव महापुण्यविपाकोपहितश्रियाम् ॥ गर्भादारभ्य वैराग्यं नोत्तमानां विहन्यते ॥२६॥
[illegible] निबुध्यते ॥ करणैश्चार वैराग्यमेव राजपथ क्विव ॥ २७ ॥ स्वयं निवर्त्तमानैस्तैरनुदीरणय
[illegible] ॥ २८ ॥ बलेन प्रेर्यमाणानि करणानि वनेभवत् ॥ न जातु वशतां याति
[illegible] ॥ २९ ॥ [illegible] नीचैर्दुर्ध्यानं च प्रयुञ्जते ॥ आत्मानं धार्मिकाजासा क्षिपति नरकावटे ॥ ३० ॥
[illegible] ॥ मन्दारविनियोगेन सदा स्वान्यविनाशवित् ॥ ३१ ॥ प्रवृत्तेर्वा निवृत्तेर्वा न सकटशो
[illegible] वैराग्यमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ दारयत्रस्यपाचाबीनृत्यनुदया प्रवृत्तयः ॥ योगिनो नैव
[illegible] ॥ ३३ ॥ इय च योगमायेति [illegible] ॥ लोकानुग्रहकैमुत्याभ्यामपि च [illegible]

[illegible] ॥ ३५ ॥ औदासीन्यफले ज्ञाने परिपाकमुपेयुषि ॥ चतुर्थेपि गुणस्थाने तद्वैराग्यं व्यवस्थितम् ॥ ३६ ॥

॥ इति वैराग्यभेदाधिकारः ॥ ५ ॥

॥ वैराग्यं स्यात्तु [illegible] ॥ तत्राद्य विषयाभासे समारोहेणगम्यणम् ॥ १ ॥ अनागमनमो खेदो ज्ञा[illegible] न यत् ॥ निराशीभिनज्ञान च विनिपातोपि जायते ॥ २ ॥ [illegible] प्रागेवोंति प्रत्यागते पदम् ॥ [illegible] वनादिकम् ॥ ३ ॥ उक्तकादिक किचिदैघकादिकमप्यहो ॥ पठंति ते शमनदीं [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] च विशति ॥ तत्र ते नैव गच्छति प्रशमामृतनिर्झरं ॥ ५ ॥ वेषमात्रभृतोऽप्येते [illegible] ॥ न [illegible] पश्चान्निरान्तिन ॥ ६ ॥ गृहेऽन्नमात्रदौर्लभ्य लभ्यते मोदका मते ॥ वैरा- [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] नवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥ मोहगर्भ तु वैराग्य मत [illegible] ॥ तेषामप्येतदेवेष्ट कुर्वतामपि दुष्करं ॥ ९ ॥ संसारमोचकादी[illegible] नानाम्बविच्छितिः ॥ १० ॥ अमीषां प्रशमोऽप्युच्चैर्दोषपोषाय केव[illegible] ॥ ११ ॥ कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्वं शास्त्रार्थेषु विपर्यय ॥ स्वच्छन्दता कुतर्कश्च गुणव[illegible] दंभजीवनम् ॥ आश्रवाच्छादनं शक्तयुल्लघनेन क्रियादरः ॥ १३ ॥ गुणा[illegible] ॥ अनुबन्धाद्यचिन्ता च प्रणिधानस्य विच्युतिः ॥ १४ ॥ श्रद्धामृदुत्वमौद्धत्यमधैर्यमविवेकि[illegible]

[illegible] मम्याद्रव्याणि[illegible] ॥ स्याद्यादि[illegible]
[illegible] ॥ वृत्तिः [illegible] इत्यर्थः
[illegible] कर्मणः ॥ १० ॥ [illegible]
[illegible] ॥ १७ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ अत्र प्रवृत्ति
[illegible] न [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥२३॥ [illegible]
[illegible] मताः ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] धनस्येव [illegible]
[illegible] ॥ २१ ॥
[illegible] ॥ २७ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥ इति [illegible]
[illegible] ॥ ३२ ॥ [illegible]

...नयमात् ... माहात्म्य ... ॥ साम्याद्व्यवहारस्तु नियताग्निर्नोत्तरः ॥ ३३ ॥ तदेवांतर या कश्चिदिरगस्यानि
गुणः ॥ शास्त्रार्थबाधनाल्लोऽपि जैनानामस्य सम्भृत् ॥ ३४ ॥ उत्सर्गे वापवादे वा व्यवहारेऽथ निश्चये ॥ ज्ञाने कर्मणि
वार्य चेन तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३५ ॥ स्वागमेऽन्यागमार्थानां शतस्येव परार्धके ॥ नायतारबुधत्वं चेत्र तदा ज्ञानगर्भता
॥ ३६ ॥ नयेषु स्वार्थसत्येषु मोघेषु परचालने ॥ माध्यस्थ्य यदि नायातं न तदा ज्ञानगर्भता ॥३७॥ आज्ञयागमिकार्थाना
यौक्तिकानां च युक्तितः ॥ न स्थाने योजकत्वं चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३८ ॥ गीतार्थस्यैव वैराग्य ज्ञानगर्भं ततः स्थितम् ॥
उपचारादगीतस्याप्यभीष्ट तस्य निश्रया ॥ ३९ ॥ सूक्ष्मेक्षिका च माध्यस्थ्य सर्वत्र हितचिंतनम् ॥ क्रियायामादरो भूयान्
धर्म लोकस्य योजनम् ॥ ४० ॥ चेष्टा परस्य वृत्तांते मूकांधबधिरोपमा ॥ उत्साहः स्वगुणाभ्यासे दुःस्थस्येव धनार्जने॥४१॥
मदनोन्मादवमनं मदसंमर्दमर्दनम् ॥ असूयातंतुविच्छेदः समतामृतमज्जनम् ॥ ४२ ॥ स्वभावान्नैव चलनं चिदानंदमया-
स्मन ॥ वैराग्यस्य तृतीयस्य स्मृतेयं लक्षणावली ॥ ४३ ॥ ज्ञानगर्भमिहादेयं द्वयोस्तु स्वोपमर्दत ॥ उपयोग कदाचित्
स्यान्निजाध्यात्मप्रसादतः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति वैराग्यभेदाधिकार ॥ ६ ॥

॥ विषयेषु गुणेषु च द्विधा भुवि वैराग्यमिदं प्रवर्तते ॥ अपरं प्रथम प्रकीर्तितं परमध्यात्मबुधैर्द्वितीयकम् ॥ १ ॥ विषया
उपयंत्वगोचरा अपि चानुश्रविका विकारिणः ॥ न भवंति विरक्तचेतसा विषधारेव सुधासु मज्जताम् ॥ २ ॥ सुविशाल
रसालमंजरीविचरत्कोकिलकाकलीभरैः ॥ किमु माद्यति योगिनां मनो निभृतानाहतनादसादरम् ॥ ३ ॥ रमणीमृदुपाणिक

[illegible] स्पृशपूर्णता ॥ अनु [illegible] रटीरुटीकृतप्रियमगीतरता न योगिन ॥ ४ ॥ स्खलनाय न शुद्धचेतसां ललनापांगनाः [illegible] ॥ यदिदं [illegible] मधुराधरानेनैर्न रोचते ॥ ५ ॥ सतत क्षयि शुक्रशोणितमजत्र रूपमपि प्रिय नहि ॥ [illegible] निर्मोदमयमानरचकरूपदारिताः ॥ ६ ॥ परदयमपायसत्त्वं विषयो यरपातु धर्मचक्षुष ॥ न हि [illegible] मुदे यथा निरपायानुभवैकगोचर ॥ ७ ॥ गतिविभ्रमहास्यचेष्टितैर्ललनानामिह मोदतेऽबुध ॥ सुकृताद्रिपविप्र-[illegible] मनांसि हरथ ॥ ८ ॥ न मुदे मृगनाभिमल्लिकालवलीचन्दनचन्द्ररजम् ॥ विदुषा निरपाधिबाधितस्मर-[illegible] सुरभिस्पर्शनात् ॥ ९ ॥ उपयोगमुपैति यच्चिर हरते यन्न विनाशमारत ॥ न ततः [illegible] रसादपरस्मिन्निह [illegible] ॥ १० ॥ मधुरैर्न रसैरधीरता क्वचनाध्यात्मसुधालिहां सताम् ॥ अरसैः कुसुमैरिवालिनां प्रसरत्पद्मपरागमो-[illegible] ॥ ११ ॥ विषमदभिन्निर्नु किं रसे स्फुटमायातसुखैर्विकारिणि ॥ नयमेऽनवमे रसे मनो यदि मम सतताविकारिणि ॥ १२ ॥ मधुरे रसमाप्य निष्पतेऽप्यनानो रसलोलितया जलम् ॥ परिभाव्य विपाकमाध्यसं विरतानां तु ततो दृशोर्जलम् ॥ १३ ॥ [illegible] पूतिवशीकुपकृ्य रोचते ॥ [illegible] मुविक्रवतरुपके क चहि स्पर्शरता नमतु से ॥ १४ ॥ [illegible] न मुदे [illegible] विधि ॥ [illegible] मदा [illegible] निष्फला ॥ १५ ॥ गण-[illegible] मुखेव योगिन ॥ मदनाद्रिविरोमभूद्गाम [illegible] तदेव योगिनः ॥ १६ ॥ तदिमे विषयाः [illegible] न मुदे [illegible] ॥ परत्रोपमुखेऽपि निःस्पृहा परमानन्दरसावगाः [illegible] ॥ १७ ॥ मदमोहविषाद-[illegible] ॥ [illegible] सुखमेनेष्यति नैति रम्यताम् ॥ १८ ॥ रमणीविरहेण वह्निना

वहुवाग्यानिवदीपितेन यत् ॥ विदधीर्दिवि तु समाप्यते पदते तत्र कथं सुखस्थितिः ॥ १९ ॥ प्रथमानिमार्गभवां ध्यानस्यापि दियो विधितनात् ॥ हृदयं न हि यद्विदीर्यते सुगदा तदनुविशाणुनिर्मितम् ॥ २० ॥ विषयेषु रतिः शिवार्थिनो न गतिर्नास्ति किलाविलास्वपि ॥ घनदापदनार्थिनो गिरिजमिप्यपरद्रुमेप्सिन ॥ २१ ॥ इति शुद्धमतिस्थिरीकृताऽपरवैराग्यरसस्य योगिनः ॥ स्वगुणेषु वितृष्णतावहं परवैराग्यमपि प्रवर्तते ॥ २२ ॥ विपुलर्द्धिपुलाकचारणप्रवलाशीविषमुख्यलब्धयः ॥ न मदाय विरक्तचेतसामनुषङ्गोपनता पलालवत् ॥ २३ ॥ कलितातिशयोऽपि कोऽपि नो विबुधानां मदकृद्धुणव्रजः ॥ अधिकं न विदन्त्यमी यतो निजभावे समुदञ्चति स्वतः ॥ २४ ॥ हृदये न शिवेऽपि लुब्धता सदनुष्ठानमसंगमङ्गति ॥ पुरुषस्य दशेयमिष्यते सहजानन्दतरंगसंगता ॥ २५ ॥ इति यस्य महामतेर्भवेदिह वैराग्यविलासभृन्मनः ॥ उपयाति वरीतुमुच्चकैस्तमुदारप्रकृतिं यशःश्रियः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति वैराग्यविषयाधिकारः ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीनयविजयगणिशिष्यश्रीयशोविजयेन विरचितेऽध्यात्मसारप्रकरणे द्वितीयः प्रबंधः ॥

निर्ममस्यैव वैराग्यं स्थिरत्वमवगाहते ॥ परित्यजेत्ततः प्राज्ञो ममतामत्यनर्थदाम् ॥ १ ॥ विषयैः किं परित्यक्तैर्जागर्ति ममता यदि ॥ त्यागात्कञ्चुकमात्रस्य भुजगो न हि निर्विषः ॥ २ ॥ कष्टेन हि गुणग्राम प्रगुणीकुरुते मुनिः ॥ ममताराक्षसी सर्वं भक्षयत्येकहेलया ॥ ३ ॥ जन्तुः कान्तं पशूकृत्य द्रागविद्यौषधिबलात् ॥ उपायैर्बहुभिः पत्नी ममता क्रीडयत्यहो ॥ ४ ॥ एकः परभवे याति जायते चैक एव हि ॥ ममतोद्रेकतः सर्वं संबन्धं कल्पयत्यथ ॥ ५ ॥ व्याप्नोति महतीं भूमिं वटबीजा-

[illegible] ॥ [illegible] ॥ ६ ॥ माता पिता मे भ्राता मे भगिनी वल्लभा च मे ॥ पुत्राः सुता
[illegible] मित्राणि ज्ञातयः संस्तुताश्च मे ॥ ७ ॥ इत्येवं ममताव्याधिं वर्धमानं प्रतिक्षणम् ॥ जनः शक्नोति नोच्छेत्तुं विना ज्ञानम-
हौषधम् ॥ ८ ॥ [illegible] प्रवर्तते ॥ [illegible] धनलोभेन धावति ॥ ९ ॥ स्वयं येषां च
[illegible] ॥ [illegible] च ते न त्राणाय शरणाय वा ॥ १० ॥ ममत्वेन बहून् लोकान् पुष्णात्येकोऽ-
[illegible] ॥ [illegible] एव तु ॥ ११ ॥ ममतान्धो हि यन्नास्ति तत्पश्यति न पश्यति ॥ जात्यन्धस्तु
[illegible] ॥ १२ ॥ प्राणान्[illegible]ध्यानात् प्रेम[illegible] ततोऽधिका ॥ प्राणपदा प्रिया मत्वा मोदते मम-
[illegible] ॥ १३ ॥ [illegible] मुख श्लेष्मगृहं विधु ॥ मांसग्रन्थी कुचौ कुम्भौ हेम्नो वेत्ति ममत्ववान् ॥ १४ ॥
[illegible] ॥ [illegible] च ॥ यत्स्तासामपि लोकाद्वी साध्वी वेत्ति ममत्ववान् ॥ १५ ॥ या रोपयत्यकार्येऽपि
[illegible] ॥ [illegible] स्त्री ममतान्धा मुग्धामेव मन्यते ॥ १६ ॥ चर्मास्थिमांसास्थिविण्मूत्रपिठरीष्वपि ॥
[illegible] ॥ १७ ॥ [illegible] ब्रूते ममत्ववान् ॥ वेत्ति च श्लेष्मणा पूर्णा-
[illegible] ॥ १८ ॥ [illegible] मुञ्चति ॥ तदमेध्येऽपि मेध्यत्वं [illegible] ममत्वतः ॥ १९ ॥
[illegible] ॥ [illegible] नैयत्येनावतागते ॥ २० ॥ भिन्नाः प्रत्येकमात्मानो विभिन्नाः
[illegible] ॥ [illegible] पश्यति न पश्यति ॥ २१ ॥ [illegible] ॥ [illegible]-
[illegible] ॥ २२ ॥ [illegible]

स्थितिः ॥ २३ ॥ प्रियार्थिनः प्रियाप्राप्तिं विना क्वापि यथा रतिः ॥ न तथा तत्त्वजिज्ञासोस्तत्त्वप्राप्तिं विना क्वचित् ॥ २४ ॥ अत एव हि जिज्ञासा विष्कंभति ममत्वधीः ॥ विचित्राजिज्ञासाघातः संभ्रांत इव लक्ष्यते ॥ २५ ॥ धृतो योगो न ममता हता न समताऽऽदृता ॥ न च जिज्ञासितं तत्त्वं गतं जन्म निरर्थकम् ॥ २६ ॥ जिज्ञासा च विवेकश्च ममतानाशकावुभौ ॥ अतस्ताभ्यां निगृह्णीयादेनामध्यात्मवैरिणीम् ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति ममतात्यागाधिकारः ॥ ८ ॥

॥ त्यक्तायां ममतायां च समता प्रथते स्वतः ॥ स्फटिके गलितोपाधौ यथा निर्मलतागुणः ॥ १ ॥ प्रियाप्रियत्वयोरर्थैर्व्यवहारस्य कल्पना ॥ निश्चयात्तद्व्युदासेन स्तैमित्यं समतोच्यते ॥ २ ॥ तेष्वेव द्विषतः पुंसस्तेष्वेवार्थेषु रज्यतः ॥ निश्चयात्किंचिदिष्टं वाऽनिष्टं वा नैव विद्यते ॥ ३ ॥ एकस्य विषयो यः स्यात्स्वाभिप्रायेण पुष्टिकृत् ॥ अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदतः ॥ ४ ॥ विकल्पकल्पितं तस्माद्द्वयमेतन्न तात्त्विकम् ॥ विकल्पोपरमे तस्य द्वित्वादिवदुपक्षयः ॥ ५ ॥ स्वप्रयोजनसंसिद्धिः स्वायत्ता भासते यदा ॥ बहिरर्थेषु संकल्पसमुत्थानं तदा हतम् ॥ ६ ॥ लब्धे स्वभावे कण्ठस्थस्वर्णन्यायाद्भ्रमक्षये ॥ रागद्वेषानुपस्थानात् समता स्यादनाहता ॥ ७ ॥ जगज्जीवेषु नो भाति द्वैविध्यं कर्मनिर्मितम् ॥ यदा शुद्धनयस्थित्या तदा साम्यमनाहतम् ॥ ८ ॥ स्वगुणेभ्योऽपि कौटस्थ्यादेकत्वाध्यवसायतः ॥ आत्मारामं मनो यस्य तस्य साम्यमनुत्तरम् ॥ ९ ॥ समतापरिपाके स्याद्विषयग्रहशून्यता ॥ यया विशदयोगानां वासीचन्दनतुल्यता ॥ १० ॥ किं स्तुमः समतां साधो या स्वार्थप्रगुणीकृता ॥ वैराणि नित्यवैराणामपि हन्त्युपतस्थुषाम् ॥ ११ ॥ किं दानेन तपोभिर्वा यमैश्च नियमैश्च किम् ॥

एवं य ममता सेव्या तरिः संसारवारिधौ ॥ १२ ॥ दूरे स्वर्गसुखं मुक्तिपदवी सा दवीयसी ॥ मन सनिहितं दृष्ट स्पष्ट तु
ममतासुखम् ॥ १३ ॥ दृशोः स्मरविष शुष्येत् क्रोधतापः क्षय व्रजेत् ॥ औद्धत्यमलनाश स्यात् समतामृतमज्जनात्॥१४॥
[illegible]दावाग्निज्वलिते न्यवकानने ॥ सुखाय समतैकैव पीयूषघनवृष्टिवत् ॥ १५ ॥ आश्रित्य समतामेका निर्वृता भरता
दयाः ॥ न हि कष्टमनुष्ठानम् अभूत्तेषां तु किंचन ॥ १६ ॥ अर्गला नरकद्वारे मोक्षमार्गस्य दीपिका ॥ समता गुणरत्नाना सग्रहे
रोहणावनिः ॥ १७ ॥ मोहाच्छादितनेत्राणामात्मरूपमपश्यताम् ॥ दिव्याञ्जनशलाकेव समता दोषनाशकृत् ॥ १८ ॥ क्षणं
चेतः समाकृष्य समता यदि सेव्यते ॥ स्यात्तदा सुखमन्यस्य यद्वक्तु नैव पार्यते ॥ १९ ॥ कुमारी न यथा वेत्ति सुख दयि-
तभोगजम् ॥ न जानाति तथा लोको योगिना समतासुखम् ॥ २० ॥ नतिस्तुत्यादिकाशसाशरस्तीव्र स्वमर्म्मभित् ॥ सम-
तावर्मगुप्तानां नार्तिकृत्सोपि जायते ॥ २१ ॥ प्रचितान्यपि कर्म्माणि जन्मना कोटिकोटिभि ॥ तमासीव प्रभा भानो
क्षिणोति समता क्षणात् ॥ २२ ॥ अन्यलिंगादिसिद्धानामाधार समतैव हि ॥ रत्नत्रयफलप्राप्तेर्यया स्याद्भावजैनता ॥२३॥
ज्ञानस्य फलमेषैव नयस्थानावतारिण ॥ चन्दन वह्निरेव स्यात् कुग्रहेण तु ज्वलन तत् ॥ २४ ॥ चारित्रपुरुषप्राणाः सम
ताख्या गता यदि ॥ जनानुधावनावेशस्तदा तन्मरणोत्सव ॥ २५ ॥ सत्यज्य समतामेका स्याद्यत्कष्टमनुष्ठितम् ॥ तदीप्सि
तकरं नैव बीजमुप्तमिवोषरे ॥ २६ ॥ उपाय समतैवैका मुक्तेरन्य क्रियाभरः ॥ तत्तत्पुरुषभेदेन तस्या एव प्रसिद्धये ॥२७॥

१ [illegible]

दिव्यार्थदर्शने शास्त्रव्यापारः स्यात्र दूरगः ॥ अस्याः स्यादनुभवः पारं सामर्थ्याख्योऽस्य गोचरः ॥ २८ ॥ परस्मात् परमेषा यन्निगूढं तत्त्वमात्मनः ॥ तदध्यात्मप्रसादेन कार्योऽस्यामेव निर्भरः ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति समताधिकारः ॥ ९ ॥

॥ परिशुद्धमनुष्ठानं जायते समतान्वयात् ॥ कतकक्षोदसंक्रान्तेः कलुषं सलिलं यथा ॥ १ ॥ विषं गरोऽननुष्ठानं तद्धेतुरमृतं परम् ॥ गुरुसेवाद्यनुष्ठानमिति पञ्चविधं जगुः ॥ २ ॥ आहारोपधिपूजर्द्धिप्रभृत्याशंसया कृतम् ॥ शीघ्रं सच्चित्तहन्तृत्वाद्विषानुष्ठानमुच्यते ॥ ३ ॥ स्थावरं जङ्गमं चापि तत्क्षणं भक्षितं विषम् ॥ यथा हन्ति तथेदं सच्चित्तमैहिकभोगतः ॥ ४ ॥ दिव्यभोगाभिलाषेण कालान्तरपरिक्षयात् ॥ स्वादृष्टफलसम्पूर्तेर्गरानुष्ठानमुच्यते ॥ ५ ॥ यथा कुद्रव्यसंयोगजनितं गरसंज्ञितम् ॥ विषं कालान्तरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः ॥ ६ ॥ निषेधायानयोरेव विचित्रानर्थदायिनोः ॥ सर्वत्रैवानिदानत्वं जिनेन्द्रैः प्रतिपादितम् ॥ ७ ॥ प्रणिधानाद्यभावेन कर्मानध्यवसायिनः ॥ संमूर्छिमप्रवृत्त्याभमननुष्ठानमुच्यते ॥ ८ ॥ ओघसंज्ञाऽत्र सामान्यज्ञानरूपा निबन्धनम् ॥ लोकसंज्ञा च निर्दोषसूत्रमार्गानपेक्षिणी ॥ ९ ॥ न लोकं नापि सूत्रं नो गुरुवाचमपेक्षते ॥ अनध्यवसितं किंचित्कुरुते चौघसंज्ञया ॥ १० ॥ शुद्धस्यान्वेषणे तीर्थोच्छेदः स्यादिति वादिनाम् ॥ लोकाचारादरश्रद्धा लोकसंज्ञेति गीयते ॥ ११ ॥ शिक्षितादिपदोपेतमप्यावश्यकमुच्यते ॥ द्रव्यतो भावनिर्मुक्तमशुद्धस्य तु का कथा ॥ १२ ॥ तीर्थोच्छेदभिया हन्ताविशुद्धस्यैव चादरे ॥ सूत्रक्रियाविलोपः स्याद्गतानुगतिकत्वतः ॥ १३ ॥ धर्मोद्यतेन कर्तव्यं कृतं बहुभिरेव चेत् ॥ तदा मिथ्यादृशां धर्मो न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥ १४ ॥ तस्माद्गतानुगत्या यत् क्रियते सूत्रवर्जितम् ॥

उपतो दोषतो वा तदनुष्ठानमेव हि ॥ १५ ॥ अकामनिर्जरागत्य कायक्लेशादिहोदितम् ॥ सकामनिर्जरा तु स्यात् सोपयोगप्रवृत्तित ॥ १६ ॥ सदनुष्ठानरागेण तद्धेतुर्मार्गगामिनाम् ॥ एतच्च चरमावर्त्तेऽनाभोगादेर्विना जवेत् ॥ १७ ॥ धर्मयौवनकालोऽयं जवबालदशापरा ॥ अत्र स्यात्सत्क्रियारागोऽन्यत्र चासत्क्रियादर ॥ १८ ॥ भोगरागाद् यथा यूनो बालक्रीडाऽपि हि हिये ॥ धर्मे यूनस्तथा धर्मरागेणासत्क्रिया हिये ॥ १९ ॥ चतुर्थे चरमावर्त्ते तस्माद्धर्मानुरागत ॥ अनुष्ठान विनिर्दिष्टं बीजादिक्रमसङ्गतम् ॥ २० ॥ बीज चेह जनान् दृष्ट्वा शुद्धानुष्ठानकारिणः ॥ बहुमानप्रशसाभ्या चिकीर्षा शुद्धगोचरा ॥ २१ ॥ तस्या एवानुबन्धश्चाकलङ्क कीर्त्यतेऽङ्कुर ॥ तद्धेत्वन्वेषणा चित्रा स्कन्धकल्पा च वर्णिता ॥ २२ ॥ प्रवृत्तिषु चित्रा च पत्रादिसदृशी मता ॥ पुष्प च गुरुयोगादिहेतुसपत्तिलक्षणम् ॥ २३ ॥ भावधर्मस्य सपत्तिर्या च सद्देशनादिना ॥ फल तदत्र विज्ञेय नियमान्मोक्षसाधकम् ॥ २४ ॥ सद्भो भावधर्मो हि शुद्धश्चदनगन्धवत् ॥ एतद्गर्भमनुष्ठानममृतं सम्प्रचक्षते ॥ २५ ॥ जैनीमाज्ञा पुरस्कृत्य प्रवृत्त चित्तशुद्धित ॥ सवेगगर्भमत्यन्तममृत तद्विदो विदु ॥ २६ ॥ शास्त्रार्थालोचन सम्यक् प्रणिधान च कर्मणि ॥ कालाद्यङ्गाविपर्यासोऽमृतानुष्ठानलक्षणम् ॥ २७ ॥ द्वय हि सदनुष्ठान त्रयमत्रासदेव च ॥ तत्रापि चरम श्रेष्ठ मोहोग्रविषनाशनात् ॥ २८ ॥ आदरः करणे प्रीतिरविघ्न सपदागमः ॥ जिज्ञासा तज्ज्ञसेवा च सदनुष्ठानलक्षणम् ॥ २९ ॥ भेदैर्भिन्न जवेदिच्छाप्रवृत्तिस्थिरसिद्धिभिः ॥ चतुर्विधमिदं मोक्षयोजनाद्योगसञ्ज्ञितम् ॥ ३० ॥ इच्छा तद्वत्कथा प्रीतियुक्ताविपरिणामिनी ॥ प्रवृत्ति पालन सम्यक् सर्वत्रोपशमान्वितम् ॥ ३१ ॥ सत्क्षयोपशमोत्कर्षादतिचारादिचिन्तया ॥ रहित तु स्थिरं सिद्धिः परेषामर्थसाधकम् ॥ ३२ ॥ भेदा इमे विचित्राः स्य क्षयोप-

शमनेरत्तः ॥ श्रन्नामीत्यादियोगेन नव्यानां मार्गगामिनाम् ॥ २२ ॥ अनुगंगा च नि दिः गंभेगः प्रशामन्मथा ॥ पटेषाम नुनाया स्तुरिभादीनां यथाक्रमम् ॥ २४ ॥ कायोत्सर्गादिसूत्राणां श्रन्नामोपादिनायतः ॥ इष्ठादियोगे मानव्यं देशनर्थमन स्तृशाम् ॥ २५ ॥ गुरुमण्डादिमाधुर्यजेदवत् पुरतारे ॥ जेदेत्जीप्रादिनामानां दोषो नार्थान्यिगादिह ॥ २६ ॥ येनां नेजा दिग्रेशोपि तेषां त्वेतत्समर्पणे ॥ स्फुन्नो महामृगगाद इत्याचार्याः प्रचक्ष्मते ॥ २७ ॥ छन्मागदियापर्न गाढमगर्मनमकारणे ॥ जानतीयमिदं तस्मै जानतियांगविंशिकाम् ॥ २८ ॥ त्रिधा तत्सदनुष्ठानमादेय शङ्खेगापा ॥ ज्ञात्वा ममयगक्षाने ओकत्रङ्गा निशाय च ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति सद्गुष्ठानाधिकार ॥ १० ॥

॥ उचितमाचरणं शुभमिच्छतां प्रथमतो मनसः खलु शोधनम् ॥ गदवतां ह्यकृते मलशोधने कमुपयोगमुपैतु रसायनम् ॥ १ ॥ गानने प्रज्ञन किमु रञ्यति क्षिपति वा स्वमतो यदि निर्मलम् ॥ विरहिणामरतेर्गतो रवेरपि च का निशि निर्मले निधी ॥ २ ॥ दनितमाकलयन्ननुपस्थितं स्वमतैव हि शोषति मानवः ॥ उपनते सयमानमुपः पुनर्जगति तत्र परस्य किमु च्यताम् ॥ ३ ॥ चरणयोगघटा प्रविलोठयन् शमरम मरख विकिरत्यथ ॥ चरत एव मन करिराजके स्मरणिम् निव्यातु मुनिरस्तु किं ॥ ४ ॥ सततकुट्टितसंयमकूततोऽत्यितरजोनिकरै. प्रथयत्तमः ॥ अतिदृढेश्च मनस्तुरगो गुणैरपि नियन्त्रित एव न तिष्ठति ॥ ५ ॥ जिनवचोघनसारमलिम्लुच कुसुमसायकपावकदीपक ॥ अदृह कोपि मनःपवनो चली शुभमतिद्रुमम नविर्नगद्दव ॥ ६ ॥ चरणगोपुरजगपर स्फुरतमयघोधतमनपि पातयन् ॥ भ्रमति यद्वतिमत्तमनोगज क सुखाव शिर

राजपथे तदा ॥ ७ ॥ मततरूनभगुणीकुरुते जनो दहति दुष्टमनोदहनः पुन ॥ ननु परिश्रम एव विशेषवान् क भविता
गुणोपचयोदये ॥ ८ ॥ अनिगृहीतमना विदधत्परा न वपुषा वचसा च शुभक्रियाम् ॥ गुणमुपैति विराधनयाऽनया बत
दुरंतभवभ्रममंचति ॥ ९ ॥ अनिगृहीतमना कुविकल्पतो नरकमृच्छति तंदुलमत्स्यवत् ॥ इयमभक्षणजा तदजीर्णताऽनुप-
लब्धिविकल्पकदर्थना ॥ १० ॥ मनसि लोलतरे विपरीतता वचननेत्रकरेंगितगोपना ॥ व्रजति धूर्त्ततया ह्यनयाखिल
निबिडदंभपरैर्मुषितं जगत् ॥ ११ ॥ मनस एव तत परिशोधनं नियमतो विदधीत महामति ॥ इदमभेषजसंवननं मुने
परपुमर्थरतस्य शिवश्रियः ॥ १२ ॥ प्रवचनाब्जविलासरविप्रभा प्रशमनीरतरंगतरंगिणी ॥ हृदयशुद्धिरुदीर्णमदज्वरप्रसर-
नाशविधौ परमौषधम् ॥ १३ ॥ अनुभवामृतकुंडमनुत्तरव्रतमरालविलासपयोजिनी ॥ सकलकर्मकलंकविनाशिनी मनस
एव हि शुद्धिरुदाहृता ॥ १४ ॥ प्रथमतो व्यवहारनयस्थितोऽशुभविकल्पनिवृत्तिपरो भवेत् ॥ शुभविकल्पमयव्रतसेवया
हरति कंटक एव हि कंटकम् ॥ १५ ॥ विषमधीत्य पदानि शनैः शनैर्हरति मंत्रपदावधि मांत्रिक ॥ भवति देशनिवृत्ति-
रपि स्फुटा गुणकरी प्रथमं मनसस्तथा ॥ १६ ॥ च्युतमसद्विषयव्यवसायतो लगति यत्र मनोऽधिकसौष्ठवात् ॥ प्रतिकृतिः
पदमात्मवदेव वा तदवलंबनमत्र शुभं मतम् ॥ १७ ॥ तदनु काचन निश्चयकल्पना विगलितव्यवहारपदावधि ॥ न किम-
पीति विवेचनमुखी भवति सर्वनिवृत्तिसमाधये ॥ १८ ॥ इह हि सर्वबहिर्विषयच्युतं हृदयमात्मनि केवलमागतम् ॥ चर
णदर्शनबोधपरंपरापरिचितं प्रसरत्यविकल्पकम् ॥ १९ ॥ तदिदमन्यदुपैत्यधुनापि नो नियतवस्तुविलास्यपि निश्चयात् ॥
कुसुममग्रमुदीतनिसर्गधीहृतबहिर्भवमंतरदाहृता ॥ २० ॥ धृतकषायजयः सगभीरिम प्रकृतिशांतमुदात्तमुदारधीः ॥ समनु

गृह मनोऽनुनयलब्धो गलितमोहतमः परमं महः ॥ २१ ॥ गलितदुष्टविकल्पपरंपरं धृतविशुद्धि मनो भवतीदृशम् ॥
धृतिमुपेत्य ततश्च महामतिः समधिगच्छति शुद्धयशा श्रियम् ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति मन शुद्धयधिकार ॥ ११ ॥

॥ मनःशुद्धिश्च सम्यक्त्वे सत्येव परमार्थतः ॥ तद्विना मोक्षगर्भा सा मत्यपायानुबंधिनी ॥ १ ॥ सम्यक्त्वसहिता एव-
शुद्धा दानादिकाः क्रिया. ॥ तासां मोक्षफले प्रोक्ता यदस्य सहकारिता ॥ २ ॥ कुर्वाणोऽपि क्रियां ज्ञातिधनभोगास्त्यज-
न्नपि ॥ दुःखस्योरो ददानोऽपि नाप्नो जयति वैरिणम् ॥ ३ ॥ कुर्वन्निवृत्तिमप्येवं कामभोगांस्त्यजन्नपि ॥ दुःखस्योरो ददा-
नोऽपि मिथ्यादृष्टिर्न सिध्यति ॥ ४ ॥ कनीनिकेव नेत्रस्य कुसुमस्येव सौरभम् ॥ सम्यक्त्वमुच्यते सारः सर्वेषां धर्मकर्म-
णाम् ॥ ५ ॥ तत्त्वश्रद्धानमेतच्च गदितं जिनशासने ॥ सर्वे जीवा न हंतव्याः सूत्रे तत्त्वमितीष्यते ॥ ६ ॥ शुभो धर्मोऽय-
मिलनकर्ममलध्यानक स्थितम् ॥ शुद्धानामिदमन्यासां रुचीनामुपलक्षणम् ॥ ७ ॥ अथवेदं यथा तत्त्वमाज्ञयैव तथाऽ-
भिहितम् ॥ नयानामपि तत्त्वानामिति श्रद्धोदितार्थतः ॥ ८ ॥ इदेव प्रोच्यते शुद्धाऽहिंसा सा तत्त्वमित्यत ॥ सम्यक्त्व
दर्शनं सूत्रप्रामाण्योपगमात्मकम् ॥ ९ ॥ शुद्धाऽहिंसोदिताः सूत्रप्रामाण्य तत एव च ॥ अहिंसाशुद्धधीरेवमन्योन्याश्रय
नीनेनु ॥ १० ॥ नैवं यस्मादहिंसाया सर्वेषामेकवाक्यता ॥ तच्छुद्धतावबोधश्च मज्जनादिविचारणात् ॥ ११ ॥ यथाऽहिं-
सादयः पंच व्रतधर्मयमादिभिः ॥ पदैः कुशलधर्माद्यैः कथ्यंते स्वस्वदर्शने ॥ १२ ॥ प्राक् कुशीलरतामात्र व्रतोपव्रतपंचकम् ॥
यमांश्च नियमान् पाशुपता धर्मान् दशान्यधुः ॥ १३ ॥ अहिंसा सत्यवचनमस्तैन्यं चाप्यकल्पना ॥ ब्रह्मचर्यं तथाक्रोधो

[illegible] मैत्री कुमुदमुषा [illegible] वीर्हिंसा ॥ निगद्यंते यमाः सार्ध्वैरपि व्यागानुसारिभिः ॥
॥ १५ ॥ [illegible] ॥ पचनो व्यवहाराथेत्येते पच यमा स्मृता ॥ १६ ॥ अमोघो गुर
[illegible] ॥ [illegible] दरिद्रैर्हिंसा ॥ १७ ॥ बौद्धे कुदागधमाश्च दर्शोप्यते यदुच्यते ॥
[illegible] ॥ १८ ॥ [illegible] विपर्ययम् ॥ पापकर्मेति दशधा काय
[illegible] ॥ १९ ॥ [illegible] दिकादय ॥ अत [illegible] दोऽर्थकम् ॥२०॥
[illegible] ॥ [illegible] मना ॥ २१ ॥ प्रमाणलक्षणादेस्तु नोप
[illegible] ॥ २२ ॥ प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृत ॥ प्रमा
[illegible] ॥ २३ ॥ [illegible] निन्त्य एवेति येषामेकान्तदर्शनम् ॥ हिंसादय कथ तेषा कथम
[illegible] ॥ २४ ॥ [illegible] ॥ हिंसा नवैव तत्त्वस्य सिद्धेरार्थंसमागत ॥ २५ ॥
[illegible] ॥ इति [illegible] व्यवस्थिते ॥ २६ ॥ न च हिंसादि नाहार
[illegible] ॥ २७ ॥ शरीरेणापि संबधो नित्यस्य न संगती ॥ नित्य-
[illegible] ॥ २८ ॥ [illegible] किया हिना च स्यान्निरनुग्रहणं कथम् ॥ कथ सयोगनैनादिक
[illegible] ॥ २९ ॥ [illegible] संयोगादिसभवात् ॥ ३० ॥
[illegible] ॥ ३१ ॥ [illegible]

[illegible] न मानुषित् ॥ [illegible] हिंसा[illegible]पगच्छते ॥ ३२ ॥ अनित्यैकान्तपक्षेऽपि हिंसादीनामसंभवः ॥
[illegible]योगेन [illegible] साधनात् ॥ ३३ ॥ न च सन्तानभेदस्य जनको हिंसको भवेत् ॥ सांवृतत्वादनन्यत्वात्
[illegible] हि तत् ॥ ३४ ॥ नगादि[illegible]तुश्च शूकरादेन हिंसकः ॥ शूकरालम्भणेनैव व्यभिचारप्रसंगतः ॥ ३५ ॥
[illegible] तुल्यतुल्ययोस्तथा ॥ नैव तद्विरति क्वापि तत्र शास्त्राद्यसंगति ॥ ३६ ॥ घटते न विनाऽहिंसा सत्या-
[illegible] ॥ एतस्या वृतिभूतानि तानि यत्भगवान् जगौ ॥ ३७ ॥ मौनीन्द्रे च प्रवचने युज्यते सर्वमेव हि ॥ नित्या-
[illegible] तथात्मनि ॥ ३८ ॥ आत्मा द्रव्यार्थतो नित्यः पर्यायार्थाद्विनश्वरः ॥ हिनस्ति हन्यते तत्त-
[illegible] ॥ ३९ ॥ [illegible] चानुभवः साक्षी व्यावृत्त्यन्वयगोचरः ॥ एकान्तपक्षपातिन्यो युक्तयस्तु मिथो हताः
॥ ४० ॥ [illegible] दुष्टनाशवत् ॥ त्रिधा हिंसागमे प्रोक्ता नहीयमपहेतुका ॥ ४१ ॥ हन्तुर्नामति को
[illegible] ॥ प्रमत्तिस्तदनात्र चान्तरावीति मुधा रव ॥ ४२ ॥ हिंस्यकर्मविपाकेऽपि दुष्टाशयनिमित्तता ॥
[illegible] ॥ ४३ ॥ [illegible] मद्वाक्यादेव निवृत्तिरपि स्फुटा ॥ सोपक्रमस्य पापस्य नाशात्स्वा-
[illegible] ॥ ४४ ॥ [illegible] मुख्याऽहिंसैषमुच्यते ॥ सत्यादीनि व्रतान्यत्र जायते पल्लवा नवाः ॥ ४५ ॥ अहिं-
[illegible] ॥ अनुबन्धस्तिराधिरप्यनैवास्मि नाम्नी ॥ ४६ ॥ हिंसाया ज्ञानयोगेन सम्यग्दृष्टेर्महा-
[illegible] नानुबन्धनम् ॥ ४७ ॥ [illegible] कस्याश्चिद्‌ यतनाभक्तिशालिनाम् ॥ अनुबन्धो
[illegible] ॥ ४८ ॥ हिंसानुबन्धिनी हिंसा मिथ्यादृष्टेस्तु दुर्मते ॥ अज्ञानशक्तियोगेन तस्याहिंसापि

च [illegible] ॥ परवंधादेतो च स्वात्मानमवसादयेत् ॥ २५ ॥ सिद्धि स्थापनादित्यचत्ता सशया-
[illegible] ॥ [illegible] पुनः ॥ २६ ॥ अजीव इति शब्दश्च जीवसत्तानियन्त्रित ॥ असतो न
[illegible] ॥ २७ ॥ सयोग समवायश्च सामान्य च विशिष्टता ॥ निषिध्यते पदार्थाना त एव न तु
[illegible] ॥ २८ ॥ [illegible] पदादिवत् ॥ तदर्थश्च शरीर नो पर्यायपदभेदत ॥ २९ ॥ आत्मन्यवस्थि-
[illegible] ॥ पापा. [illegible] सद्यापारविरोधिन ॥ ३० ॥ ज्ञानक्षणावलीरूपो नित्यो नात्मेति
[illegible] ॥ [illegible] नित्यत्वे युज्यतेऽर्थक्रिया न हि ॥ ३१ ॥ स्वभावहानितो ध्रौव्य क्रमेणार्थक्रियाकृतौ ॥ अन-
[illegible] ॥ ३२ ॥ क्षणिके तु न दोषोऽस्मिन् कुर्वद्रूपविशेषिते ॥ ध्रुवेक्षणोत्थतृष्णाया निवृत्तेश्च
[illegible] ॥ ३३ ॥ [illegible] तदेतदपि दर्शनम् ॥ क्षणिके कृतहानिर्यत्तयात्मन्यकृतागम ॥ ३४ ॥ एकद्-
[illegible] न ॥ पौर्वापर्यं हि भावाना सर्वत्रातिप्रसक्तिमत् ॥ ३५ ॥ कुर्वद्रूपविशेषे च न प्रवृत्तिर्न
[illegible] ॥ [illegible] तथा चोदयतो जगौ ॥ ३६ ॥ न [illegible] विना तत् स्यान्न तस्मिन्ननुमा भवेत् ॥ विना
[illegible] विना ॥ ३७ ॥ एकतासत्यविज्ञान क्षणिक न च बाधते ॥ योऽहमन्वभव सोऽहं स्मरामी-
[illegible] ॥ ३८ ॥ [illegible] यत् क्षणिकेऽपि यथैकता ॥ नानाज्ञानान्वये तद्वत् स्थिरे नानाक्षणान्वये ॥३९॥
[illegible] च निरस्यते ॥ स्याद्वादमविवेकेन नित्येऽर्थक्रिया न हि ॥ ४० ॥ नीलादावप्यतद्भेदता
[illegible] ॥ [illegible] हि [illegible] विना ॥ ४१ ॥ [illegible] ॥ माद्या

कार इव ज्ञाने गुणलक्षण दर्शने ॥ ४२ ॥ मत्तुल्यानित्यताने हि स्यातः इतजनुर्दिता ॥ हेतवादतः गर्वनियनित्यता
जयत् ॥ ४३ ॥ तस्मादिदमपि त्याज्यमनित्यत्वस्य दर्शनम् ॥ नित्यमत्यनिदादसदर्शनमनिशुना ॥ ४४ ॥ न कर्ता नाति
जोवात्मा कापिलाना तु दर्शने ॥ जन्यधर्माश्रयो नायं प्रकृतिः परिणामिनी ॥ ४५ ॥ प्रथम परिणामोऽस्या बुद्धिर्मोह
काऽन्विता ॥ ततोऽहंकारत मात्रेन्द्रियसृतोदयः क्रमात् ॥ ४६ ॥ चिद्रूपपुरुषो बुद्धेः भिन्नो चैतन्यमात्र ॥ निविनम्या
श्रविषयाऽनच्छेदनियमाश्रितः ॥ ४७ ॥ हेतुत्वे पुरुषकृत्यर्थेऽक्रियाणामत्र निर्वृतिः ॥ दृष्टादृष्टविनाशश्च व्यापकश्च न युज्यते
॥ ४८ ॥ स्वप्ने व्याघ्रादिमकल्पात्प्रत्यानजिमानत ॥ अहंकारश्च नियतव्यापारः परिकल्प्यते ॥ ४९ ॥ तन्मात्रादिक्रमम्
स्मात्प्रपञ्चोत्पत्तिहेतव ॥ इय बुद्धिर्जगत्कर्त्री पुरुषो न विकारजात ॥ ५० ॥ पुरुषायापरागी धी व्यापाराशेन पर च ॥
प्रज्ञाशो वेद्यद्द वस्तु करोमीति च धीस्ततः ॥ ५१ ॥ चेतनोऽहं करोमीति बुद्धर्नेदामहात्मन ॥ चान्याद्वान्तराभि
चैतन्य मोक्ष इष्यते ॥ ५२ ॥ कर्तृबुद्धिगत तु समुते पुरुषुपचारतः ॥ नरनाथे यथा भृत्यगतौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥ कर्ता
जोक्ता च नो तस्मादात्मा नित्यो निरञ्जनः ॥ अध्यासादन्यथाबुद्धिस्तथा चोक्त महात्मना ॥ ५४ ॥ प्रकृतः क्रियमाणानि
गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ ५५ ॥ विचार्यमाणं नो चारु तदेतदपि दर्शनम् ॥
कृतिचैतन्ययोर्व्यक्त सामानाधिकरण्यत ॥ ५६ ॥ बुद्धि कर्त्री च भोक्त्री च नित्या चेत्स्यान्न निर्वृतिः ॥ अनित्या चेत्
ससार प्राग्धर्मादरयोगत ॥ ५७ ॥ प्रकृतावेव धर्मादिस्वीकारे बुद्धिरेव का ॥ गुरवश्च पगादौ स्यादीन्द्रस्मान्नियमान्मग्ना

१ अनच्छेदनियमाश्रित इति वा पाठ ।

…निरवतितं यदेषा … तत्र तत्त्वपदसायपङ्क्तिः ॥ प्रशातिपुण्याणि हितोपदेशफलानि चान्यत्र गवेषयतु ॥ २ ॥
अधीत्य विविध … विविदसद्ग्रहात्पण्डितमानिनो ये ॥ मुरा गुरु चुवितमस्तु वाचो लीलारहस्य तु न तैर्जगादे
॥ ३ ॥ … ॥ त्रिडनिना हत जगैर्वितमापाण्डित्यकडूलतया त्रिलोकी ॥ ४ ॥
… न यत्र … तत्त्वरविवेकी ॥ अनुग्रहस्थितिरेव नूनममन्द्रहः कोऽपि कुहूविलासः ॥ ५ ॥
… तत्त्ववल्ली रसात्मिचति दोषभृत्म् ॥ हिपत्यधः स्वाङ्कुरस्य शमाख्यममन्द्रहमामतिर्मनुष्य. ॥ ६ ॥
… ये हि चित्ते न चापि सद्भावरसप्रवेशः ॥ इहाङ्कुरश्चित्तविशुद्धबोध मिथ्यातवाचा वत कोऽपराध ॥ ७ ॥
… मनोऽपि तस्य कृता प्रयत्नेन च पिंडशुद्धि ॥ अनूनस्य यत्तु न निन्हवानामसद्ग्रहस्यैव हि सोऽपराध
॥ ८ ॥ … स्वबुद्धि. गुरुरोध सानुरपस्थिता काचन मोदकाली ॥ असद्ग्रह कोऽपि गलेग्रहीता तथापि जोकु न
… ॥ ९ ॥ गुरुप्रसादीक्रियमाणमर्थं गृह्णाति नासद्ग्रहवानत किम् ॥ आम्रा हि साक्षादुपनीयमाना क्रमलेक
… ॥ १० ॥ असद्ग्रहात्पामरसगर्ति ये कुर्वन्ति तेषां न रतिर्बुधेषु ॥ विष्टासु पुष्टा विश नायसा नो मिष्टा-
… नयति ॥ ११ ॥ नियोनयत्येव मतिं न युक्तौ युक्तिं मतौ य प्रमन निगुर्ह ॥ असद्ग्रहादेव न कस्य
… ॥ १२ ॥ असद्ग्रहो यस्य गतो न नाश न दीयमान श्रुतमस्य शस्यम् ॥ न नाम वैक-
… पतने नृपश्री ॥ १३ ॥ आमे घटे वारि धृत यथा नश्येत्तदाधारस्य च घट च मद्यः ॥ असद्-
… ॥ १४ ॥ … हि तत्त्वदेशो … यो विमूढ ॥ …

शरीरे न महोपकारी कस्तूरिकालेपनमादधाति ॥ १५ ॥ कष्टेन लब्धं विशदागमार्थं ददाति योऽनग्रहदूषिताय ॥ न
नियते यत्नलतोपनीत धीन धनपुरन्दमिदेशे ॥ १६ ॥ शृणोति शास्त्राणि गुरोस्तदाज्ञां करोति नाग्रहदयाद् कदाचित् ॥
निवेषकर्त्रं मनुते त्वमारमाही श्रुतिं स्पम्य च पावनीयत् ॥ १७ ॥ दंभाय चातुर्यमपाय शास्त्र प्रतारणाय प्रतिभापटुत्वम् ॥
गर्वाय धीरत्वमहो गुणानामसद्ग्रहस्थे विपरीतदृष्टिः ॥ १८ ॥ असद्ग्रहस्थेन समं समतामीहार्दवृत्तु नमीनि तादृक् ॥
वर्धति यादृग्दधी गुहूरस्फुरन्मुद्गरकोटिकीर्णा ॥ १९ ॥ विद्या विवेको विनयो विशुद्धिः सिद्धान्तवाल्लभ्यमुदारता च ॥
असद्ग्रहायाति विनाशमेव गुणास्तृणानीव कणादवाग्नेः ॥ २० ॥ स्वार्थः प्रियो नो गुणवांस्तु कश्चिन्मूढेषु मैत्री न गु
णानुरागः ॥ असद्ग्रहात्पादितविभ्रमाणां स्थितिः किलासावधमाधमानाम् ॥ २१ ॥ उद्दिर्दंतत्त्वमुदारतुरिरगाग्रह
सन्तृणरजसानि ॥ जहाति नैनं कुलजेव योषिद्गुणानुरक्ता दयितं यशःश्रीः ॥ २२ ॥

॥ इत्यसद्ग्रहत्यागाधिकारः ॥ १४ ॥

॥ असद्ग्रहव्ययवान्तमिथ्यात्वविषविप्रुषः ॥ सम्यक्त्वशालिनोऽध्यात्मशुद्धेर्योगः प्रसिध्यति ॥ १ ॥ कर्मज्ञानविभेदेन स
द्विधा तत्र चादिमः ॥ आवश्यकादिविहितक्रियारूपः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ शारीरस्पन्दकर्मात्मा यदयं पुण्यलक्षणः ॥ कर्मात
नोति सद्रागात्कर्मयोगस्ततः स्मृतः ॥ ३ ॥ आवश्यकादिरागेण वात्सल्याद्भगवद्गिरा ॥ प्राप्नोति स्वर्गसौख्यानि न याति
परमं पदम् ॥ ४ ॥ ज्ञानयोगस्तपः शुद्धमात्मरत्यैकलक्षणम् ॥ इन्द्रियार्थोन्मनीभावात्स मोक्षसुखसाधकः ॥ ५ ॥ न परप्रतिब
न्धोऽस्मिन्नल्पोऽप्येकात्मवेदनात् ॥ शुभं कर्मापि नैवात्र व्याक्षेपायोपजायते ॥ ६ ॥ न ह्यप्रमत्तसाधूनां क्रि

दिवा ॥ निपता ध्यानशुद्धरायदन्यैरप्यदः स्मृत ॥७॥ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव ॥ आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ८ ॥ नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥ न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय ॥ ९ ॥ अवकाशो निषिद्धोऽस्मिन्नरत्यानन्दयोरपि ॥ ध्यानावष्टम्भत क्वास्तु तत्क्रियाणा विकल्पनम् ॥ १० ॥ देहनिर्वाहमात्रार्था यापि भिक्षाटनादिका ॥ क्रिया सा ज्ञानिनोऽसङ्गान्नैव ध्यानविघातिनी ॥ ११ ॥ रत्नशिक्षादृगन्या हि तन्नियोजनदृग् यथा ॥ फलभेदात्तथाचारक्रियाप्यस्य विभिद्यते ॥ १२ ॥ ध्यानार्था हि क्रिया सेय प्रत्याहृत्य निज मन ॥ प्रारब्धजन्मसकल्पादात्मज्ञानाय कल्पते ॥ १३ ॥ स्थिरीभूतमपि स्वान्त रजसा चलता व्रजेत् ॥ प्रत्याहृत्य निगृह्णाति ज्ञानी यदिदमुच्यते ॥ १४ ॥ शनै शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥ आत्मसस्थ मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ १५ ॥ यतो यतो नि सरति मनश्चचलमस्थिरम् ॥ ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वश नयेत् ॥ १६ ॥ अत एवादृढस्वात कुर्याच्छास्त्रोदितां क्रियाम् ॥ सकलाविषयत्यागरणाय महामति ॥ १७ ॥ श्रुत्वा पैशाचिकीं वार्त्ता कुलवध्वाश्च रक्षण ॥ नित्य सयमयोगेषु व्यापृतात्मा भवेद् यति ॥ १८ ॥ या निश्चयैकलीनाना क्रिया नातिप्रयोजनाः ॥ व्यवहारदशास्थाना ता एवातिगुणावहा ॥ १९ ॥ कर्मयोऽपि हि मुक्तस्य श्रद्धामेधादियोगत ॥ अहत मुक्तिहेतुत्व ज्ञानयोगानतिक्रमात् ॥ २० ॥ अभ्यासे सत्क्रियापेक्षा योगिना चित्तशुद्धये ॥ ज्ञानपाके शमस्यैव यत्परैरप्यद स्मृत ॥ २१ ॥ आरुरुक्षोर्मुनेर्योग कर्मकारणमुच्यते ॥ योगारूढस्य तस्यैव शम कारणमुच्यते ॥ २२ ॥ यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥ सर्वसकल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ २३ ॥ ज्ञाने क्रियाविरोधी न क्रिया या ज्ञानवर्जिता ॥ गुणप्रधानभावेन दशाभेद क्रियैनयोः ॥ २४ ॥

ज्ञानी तु शांतविक्षेपो नित्यभक्तिर्विशिष्यते ॥ अत्यासन्नो ह्यसौ भर्तुरंतरात्मा सदाशय ॥ ७८ ॥ कर्मयोगविशुद्धस्तज्ज्ञाने युंजीत मानसम् ॥ अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥ ७९ ॥ निर्जय स्थिरनासाग्रदत्तदृष्टिर्व्रते स्थित ॥ सुखासन प्रसन्नास्यो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ८० ॥ देहमध्यशिरोग्रीवमवक्रं धारयन्बुधः ॥ दंतैरसस्पृशन् दंतान् सुश्लिष्टाधरपल्लव ॥ ८१ ॥ आर्त्तरौद्रे परित्यज्य धर्म्ये शुक्ले च दत्तधी ॥ अप्रमत्तो रतो ध्याने ज्ञानयोगी भवेन्मुनि ॥ ८२ ॥ कर्मयोग समभ्यस्य ज्ञानयोगसमाहित ॥ ध्यानयोगं समारुह्य मुक्तियोग प्रपद्यते ॥ ८३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति योगाधिकार ॥ १५

॥ स्थिरमध्यवसानं यत्तद्ध्यान चित्तमस्थिरम् ॥ भावना चाप्यनुप्रेक्षा चिंता वा तत्त्रिधा मतम् ॥ १ ॥ मुहूर्तांतर्भवेद्ध्यानमेकार्थे मनस स्थिति ॥ बह्वर्थसंक्रमे दीर्घाप्यच्छिन्ना ध्यानसंतति ॥ २ ॥ आर्त्तं रौद्रं च धर्म्यं च शुक्लं चेति चतुर्विधम् ॥ तत् स्याद्भेदाविह द्वौ द्वौ कारणं भवमोक्षयो ॥ ३ ॥ शब्दादीनामनिष्टाना वियोगासंप्रयोगयोः ॥ चिंतन वेदनायाश्च व्याकुलत्वमुपेयुषः ॥ ४ ॥ इष्टाना प्रणिधान च संप्रयोगावियोगयो ॥ निदानचिंतन पापमार्त्तमित्थं चतुर्विधम् ॥ ५ ॥ कापोतनीलकृष्णाना लेश्यानामत्र भवेत् ॥ अनतिक्लिष्टभावाना कर्मणा परिणामतः ॥ ६ ॥ क्रंदन रुदन प्रोच्चै शोचन परिदेवनम् ॥ ताडन लुंचनं चेति लिंगान्यस्य विदुर्बुधा ॥ ७ ॥ मोघ निंदन्निज कृत्य प्रशंसन् परसंपद ॥ विस्मित प्रार्थयते भोगानत्र प्रसक्तश्चैतदर्जने ॥ ८ ॥ प्रमत्तश्चेंद्रियार्थेषु गृध्नो धर्मपराङ्मुख ॥ जिनोक्तमपुरस्कुर्वन्नार्त्तध्याने प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ प्रमत्तान्तगुणस्थानानुगत तन्महात्मना ॥ सर्वप्रमादमूलत्वात्त्याज्य तिर्यग्गतिप्रदम् ॥ १० ॥ निर्दय वधबंधादिचिंतन निबिड-

[illegible] ॥ [illegible] प्रणिधानं च भावना ॥ ११ ॥ शौर्यधीर्हिंसकस्य तीव्रक्रोधाद्युदयस्य च ॥ सर्वानिशांकाक [illegible] चित्तं च घनरक्षणे ॥ १२ ॥ एतद्दोषकारणकारणानुमतिस्थिति ॥ देशविरतिपर्यंत रौद्रध्यानं चतुर्विधम् ॥ १३ ॥ [illegible] ध्यानानामत्र भजत ॥ अतिमलिष्टरूपाणां कर्मणां परिणामत ॥ १४ ॥ [illegible] नानामा [illegible] ॥ हिंसादिषु प्रवृत्तिश्च कृत्वापि स्मयमानता ॥ १५॥ निर्दयत्वाननुशयी बहुमान परापदि॥ लिंगान्यत्रेत्यदो धीरै- [illegible] नरकद्रु [illegible] ॥ १६ ॥ अप्रमत्ते उभे ध्यान कुरुते चिरसंस्तुते ॥ प्रशस्त तु कृताभ्यासो ध्यानमारोढुमर्हति ॥१७॥ [illegible] च भावनाश्चैवमस्मात् ॥ ध्यातव्यध्यानुप्रेक्षालेश्यालिंगफलानि च ॥ १८ ॥ ज्ञात्वा धर्म्यं ततो ध्याये- [illegible] ॥ ज्ञान[illegible]चारित्रवैराग्याख्या प्रकीर्तिता ॥ १९ ॥ निश्चलत्वमसंमोहो निर्जरा पूर्वकर्मणाम् ॥ सगा [illegible] यथाक्रमम् ॥ २० ॥ स्थिरचित्त क्रियैतानि याति ध्यानस्य योग्यताम् ॥ योग्यतैव हि नान्यस्य [illegible] ॥ २१ ॥ चपलं हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढम् ॥ तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ २२ ॥ [illegible] मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥ अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ २३ ॥ असंयतात्मनो [illegible] ॥ वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ २४ ॥ सद्दशप्रत्ययावृत्त्या वैतृष्ण्याद्बहिर [illegible] ॥ २५ ॥ [illegible] ध्यानमागमे ॥ सदा यतीनामाख्यात [illegible] ॥ २६ ॥ [illegible] ॥ तेन यत्र समाधानं स देशो ध्यायतो मतः ॥२७॥ [illegible] ॥ दिनरात्र्यादीनां ध्यानिनो नियमस्तु न ॥ २८ ॥ यैरावस्था जिता जातु

न स्यात्सा नोपघातिनी ॥ तथा ध्यायेन्निषण्णो वा स्थितो वा शयितोऽथवा ॥ २९ ॥ सर्वासु मुनयो देशकालावस्थासु केव-
लम् ॥ प्राप्तास्तन्नियमो नास्ति नियता योगसुस्थता ॥ ३० ॥ वाचना चैव पृच्छा च परावृत्त्यनुचिंतने ॥ क्रिया चालंबनानीह
सद्धर्मावश्यकानि च ॥ ३१ ॥ आरोहति दृढद्रव्यालंबनो विषमं पदम् ॥ तथारोहति सद्ध्यानं सूत्राद्यालंबनाश्रित ॥३२॥
आलंबनादरोद्भूतप्रत्यूहक्षययोगत ॥ ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो योगिनां नोपजायते ॥ ३३ ॥ मनोरोधादिको ध्यानप्रतिपत्ति-
क्रमो जिने ॥ शेषेषु तु यथायोगं समाधानं प्रकीर्तितम् ॥ ३४ ॥ आज्ञापायविपाकानां संस्थानस्य च चिंतनात् ॥ धर्मध्या-
नोपयुक्तानां ध्यातव्यं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ३५ ॥ नयभंगप्रमाणाढ्यां हेतूदाहरणान्विताम् ॥ आज्ञां ध्यायेज्जिनेंद्राणामप्रामा-
ण्याकलंकिताम् ॥ ३६ ॥ रागद्वेषकषायादिपीडितानां जनुष्मताम् ॥ ऐहिकामुष्मिकांस्तांस्तान्नानापायान्विचिंतयेत् ॥ ३७ ॥
ध्यायेत्कर्मविपाकं च तं तं योगानुभावजम् ॥ प्रकृत्यादिचतुर्भेदं शुभाशुभविभागत ॥ ३८ ॥ उत्पादस्थितिभंगादिपर्यायै
र्लक्षणै पृथक् ॥ भेदैर्नामादिभिर्लोकसंस्थानं चिंतयेद्भृतम् ॥ ३९ ॥ चिंतयेत्तत्र कर्त्तारं भोक्तारं निजकर्मणाम् ॥ अरू-
पमव्ययं जीवमुपयोगस्वलक्षणम् ॥ ४० ॥ तत्कर्मजनितं जन्मजरामरणवारिणा ॥ पूर्णं मोहमहावर्त्तकामौर्वानलभीषणम्
॥ ४१ ॥ आशामहानिलापूर्णकषायकलशोच्छलत् ॥ असद्विकल्पकल्लोलचक्रं दधतमुद्धतम् ॥ ४२ ॥ हृदिस्रोतसिकावेलास-
पातदुरतिक्रमम् ॥ प्रार्थनावल्लिसंतानं दुष्पूरविषयोदरम् ॥ ४३ ॥ अज्ञानदुर्दिनं व्यापद्विद्युत्पातोद्भवद्भयम् ॥ कदाग्रहकुवा-
तेन हृदयोल्लासकारिणम् ॥४४॥ विविधव्याधिसंबंधमत्स्यकच्छपसंकुलम्॥चिंतयेच्च भवांभोधिं चलद्दोषाद्रिदुर्गमम्॥४५॥त्रिभि-
र्विशेषकम्॥ तस्य संतरणोपायं सम्यक्त्वदृढबंधनम्॥महाशीलांगफलकं ज्ञाननिर्यामकान्वितम्॥४६॥संवरास्ताश्रवच्छिद्रं गुप्तिगुप्त

गमंतत ॥ आचारगम्योदीसाग्रनादो मर्गनूद्यम् ॥ ४७ ॥ अर्गर्व्यैर्डर्धर्यैर्धैर्धुष्प्रघृष्यं सदाशयी ॥ सद्योगकूपर्गनामन्य-
माध्यात्ममिताग्रुकम् ॥४८॥ तपोऽनुकूलपनागेऽभूतसत्रगवेगत ॥ वैराग्यमार्गपतित चारित्राह्न श्रिता ॥४९॥ गजारनारय
मेगुरा यमनगधिक्तरलत ॥यथाऽविघ्नेन गच्छति निर्वाणनगरं सुधा ॥५०॥ पचज्जि गुप्तकम् ॥ यथा च मोहपल्लीशो लब्धव्यतिकरे
मति ॥ ममागनाटकोमुगार्शकापकारिण मुहु ॥ ५१ ॥ सज्जीकृतस्वीयभटे नाव दुर्बुद्धिनामिकाम् ॥ श्रिते दुर्नीतिनामृदा
स्वनारजनान्वित ॥५२॥ आगतत्यत्र धर्मेशजटांधे रणमरूपम् ॥ तत्त्वचिन्तादिनाराचगञ्जीभूते समाश्रिते ॥५३॥ मिथोऽनभे
गगरा सम्यग्दर्शनमन्त्रिणा॥मिथ्यात्वमन्त्रीनिगमा प्राप्यते चरमा दशाम्॥५४॥चतुर्ज्जि गुप्तकम्॥लीलयेव निरध्यते कषाय
चरपश्चिर ॥ प्रशमाग्निमहायोधं शीलेन स्मरतस्कर ॥५५॥ हास्यादिषट्कलुंटाक दृढ वैराग्यसनया ॥ निद्रादयश्च ताड्यते
श्रुताचारगाग्निनिनदं ॥ ५६ ॥ नटान्या धर्म्यशास्त्रयामार्तरौद्रजिधौ नटौ ॥ निग्रहेणेंद्रियाणा च जीयते ज्ञागसयम ॥
॥ ५७ ॥ न्यायसमनश्चतुर्दनानारयाम्य ॥ नश्यत्यमातमैन्य च पुण्योदयपराक्रमात् ॥ ५८ ॥ मह देषगजेंद्रेण रागकेस
रिणा तथा ॥ गुतन मोहनृपोऽपि धर्मनृपन हन्यते ॥ ५९ ॥ तत प्राप्तमहानन्दा धर्मभूपप्रसादत ॥ यथा कृतार्था जा
यंत मान्यो ध्यरतारिण ॥ ६० ॥ निचितयत्तथा सर्व धर्मध्याननिविष्टधी ॥ ईदृगन्यदपि न्यस्तमर्थजात यदागमे ॥६१॥
मागश्रेणियां च तथाधो निर्विशगधी ॥ धर्मध्यानस्य स ध्याता शातो दात प्रकीर्तित ॥ ६२ ॥ परैरपि यदिष्ट च
स्थिरमनस्य लक्षणम् ॥ यन्न ग्रन्थ तत्सर्व तथा चेद व्यवस्थितम् ॥ ६३ ॥ प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोग
तान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ६४ ॥ दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ॥ वीतरागभयक्रोध

...शेषवर्तीप्रतिरूपाने ॥ ६५ ॥ यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥ नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६६॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६७ ॥ ज्ञातो दांतो नवेदीदृगा
[illegible] स्थिरः ॥ निश्चय हि स्वगतो यः सैव साधकयोग्यता ॥ ६८ ॥ ध्यातायमेव शुक्लस्याप्रमत्त पादयोर्द्वयोः ॥
पूर्ववित् योगियोगी च केवली परयोस्त्वयो ॥ ६९ ॥ अनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षा ध्यानस्योपरमेऽपि हि ॥ भावयेन्नित्यमभ्रांत प्राणा
ध्यानस्य ताः खलु ॥ ७० ॥ तीव्रादिभेदभाजः स्युर्लेश्यास्तिस्र इहोत्तरा ॥ लिंगान्यत्रागमश्रद्धा विनयः सद्गुणस्तुति ॥७१॥
[illegible] व्यापादो धर्मगुणम् ॥ स्वर्गापवर्गं फलं प्राहुः पुण्यानुबन्धिनीम् ॥ ७२ ॥ ध्यायेच्छुक्लमथ क्षान्तिमृदु-
[illegible] ॥ छद्मस्थोऽणौ मनो धृत्वा व्यपनीय मनो जिन ॥ ७३ ॥ सवितर्कं सविचारं सपृथक्त्वं तदादिमम् ॥
नानानयाश्रितं तत्र वितर्कः पूर्वगं श्रुतम् ॥ ७४ ॥ अर्थव्यञ्जनयोगानां विचारोऽन्योन्यसंक्रमः ॥ पृथक्त्वं द्रव्यपर्यायगुणा-
न्तराणि तु ॥ ७५ ॥ त्रिविधस्य योगिनः [illegible] ॥ ईषच्चलतरंगाब्धेः क्षोभाभावदशानिभम् ॥ ७६ ॥
एकत्वेन वितर्केण विचारेण च संयुतम् ॥ निर्वातस्थप्रदीपाभं द्वितीयं त्वेकपर्ययम् ॥ ७७ ॥ सूक्ष्मक्रियानिवृत्त्याख्यं तृतीयं
तु जिनस्य तत् ॥ अर्धरुद्धाङ्गयोगस्य रुद्धयोगद्वयस्य च ॥ ७८ ॥ तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति तत् ॥ शैलवन्निष्प्रकं-
पस्य शैलेश्यां विश्ववेदिनः ॥ ७९ ॥ एतच्चतुर्विधं शुक्लध्यानमत्र द्वयोः फलम् ॥ आद्ययोः सुरलोकाप्तिरन्त्ययोस्तु महोदय
॥ ८० ॥ आस्रवापायसंसारानुभावशुभानुचिन्तनाः ॥ अर्थे विपरिणामे [illegible] ॥ ८१ ॥ द्वयो शुक्ला तृतीये च
लेश्या सा परमा मता ॥ चतुर्थे [illegible] लेश्यातीतं प्रकीर्तितम् ॥ ८२ ॥ लिंगं निर्मलयोगस्य शुक्लध्यानवतोऽवध ॥

[illegible] विशेषि च ॥ [illegible] माला
[illegible] मुनिः ॥ ८५ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ ८६ ॥ ॥ ॥

[illegible] ११६

[illegible] नवनाशि [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] जयति तव [illegible]
[illegible] परमानंदि[illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] ॥ ७ ॥
[illegible] ॥ ८ ॥
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible]

पिदरदमोदरपायप्रातिनापरमतामधुपर्क ॥ ध्यानधाम्नि नवति स्फुटमात्माहूतपूतपरमातिथिपूजा ॥ १० ॥ आत्मनो हि परमात्मनि योऽन्तर्भेदबुद्धिकृत एव विवाद ॥ ध्यानसधिकृदमु व्यपनीय जागभेदमनयोर्वितनोति ॥ ११ ॥ क्वामृतं विपन्नृते फणिलोके न दिविष्वपि विधौ त्रिदिवे वा ॥ ह्याप्सरोरतिमता त्रिदशाना ध्यान एव तदिद बुधपेयम् ॥ १२ ॥ गोस्तनीषु न सितासु सुधायां नापि नापि वनिताधरबिम्बे ॥ त रस कमपि वेत्ति मनस्वी ध्यानसजवधृतौ प्रथते य ॥ १३ ॥ इत्यवेत्य मनसा परिसृष्य ध्यानमेनरफड़े गरिमाणम् ॥ तत्र यस्य रतिरेनमुपैति प्रौढधामन्नृतमाशु यश श्री ॥ १४ ॥ ॥ ॥

॥ इति ध्यानस्तुत्यधिकार ॥ १७

॥ आत्मज्ञानफल ध्यानमात्मज्ञान च मुक्तिदम् । आत्मज्ञानाय तन्नित्य यत्न कार्यो महात्मना ॥ १ ॥ ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ अज्ञाते पुनरेतस्मिन् ज्ञानमन्यन्निरर्थकम् ॥ २ ॥ नवानामपि तत्त्वाना ज्ञानमात्मप्रसिद्धये ॥ येनाजीवादयो नाना स्यनेदमतियोगिन ॥ ३ ॥ श्रुतो ह्यात्मपराभेदोऽनुभूत सस्तुतोऽपि वा ॥ निसर्गादुपदेशाद्वा वेत्ति भेद तु कश्चन ॥ ४ ॥ तदेवमपृथक्त्वान्यामात्मज्ञान हितावहम् ॥ वृथैनाभिनिविष्टानामन्यथा धीर्विडम्बना ॥ ५ ॥ एक एव हि तत्रात्मा स्वभावसमवस्थित ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षण प्रतिपादित ॥ ६ ॥ प्रभानैर्मल्यशक्तीना यथा रत्नान्न भिन्नता ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणाना तथात्मन ॥ ७ ॥ आत्मनो लक्षणाना च व्यवहारो हि भिन्नताम् ॥ षष्ठ्यादिव्यपदेशेन मन्यते न तु निश्चय ॥ ८ ॥ घटस्य रूपमित्यत्र यथा भेदो विकल्पज ॥ आत्मनश्च गुणाना च तथा भेदो न तात्त्विक ॥ ९ ॥ शुद्ध यदात्मनो रूप निश्चयेनानुभूयते ॥ व्यवहारो भिदाद्वारानुभावयति तत्परम् ॥ १० ॥ वस्तुतस्तु गुणाना

मध्याह्ने मृगतृष्णायां पय पूरो यथेक्ष्यते ॥ तथा सयोगजः सर्गो विवेकाख्यातिविप्लवे ॥ २९ ॥ गधर्वनगरादीनामवरे भवरो यथा ॥ तथा सयोगज सर्गो विलासो वितथाकृति ॥ ३० ॥ इति शुद्धनयायत्तमेकत्व प्राप्तमात्मनि ॥ अशादिकल्पनाप्यस्य नेष्टा यत्पूर्णवादिन ॥ ३१ ॥ एक आत्मेति सूत्रस्याप्ययमेवाशयो मत ॥ प्रत्यग्ज्योतिषमात्मानमाहुः शुद्धनया खलु ॥ ३२ ॥ प्रपंचसर्वग्रिष्टान्मायारूपाद्बिभेमि ते ॥ प्रसीद जगन्नात्मन् शुद्धरूप प्रकाशय ॥ ३३॥ देहेन सममेकत्व मन्यते व्यवहारवित् ॥ कथचिन्मूर्ततापत्तेर्वेदनादिसमुद्भवात् ॥ ३४ ॥ तन्निश्चयो न सहते यदमूर्तो न मूर्त्तताम् ॥ अशेनाप्यवगाहन पावकः शीततामिव ॥ ३५ ॥ उष्णस्याग्नेर्यथा योगाद् घृतमुष्णमिति भ्रम ॥ तथा मूर्त्तागसबधादात्मा मूर्त्त इति भ्रम ॥ ३६ ॥ न रूप न रसो गधो न न स्पर्शो न चाकृति ॥ यस्य धर्मो न शब्दो वा तस्य का नाम मूर्त्तता ॥ ३७ ॥ दृशादृश्य हृदाग्राह्य वाचामपि न गोचर ॥ स्वप्रकाश हि यद्रूप तस्य का नाम मूर्त्तता ॥ ३८ ॥ आत्मा सत्यचिदानद सूक्ष्मात्सूक्ष्म परात्पर ॥ स्मृरात्यपि न मूर्त्तत्व तथा चोक्त परैरपि ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य पर मन ॥ मनसोऽपि परा बुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु स ॥ ४० ॥ विकले इत लोकेऽस्मिन्नमूर्त्ते मूर्त्तताभ्रमात् ॥ पश्यत्याश्चर्यवद् ज्ञानी वदत्याश्चर्यवत्परः ॥ ४१ ॥ वेदनापि न मूर्त्तत्वनिमित्ता स्फुटमात्मन ॥ पुद्गलाना तदापत्ते किं त्वशुद्धस्वशक्तिजा ॥ ४२ ॥ उदकारा यथा ज्ञान स्वय परिणमत्ययम् ॥ तथेष्टानिष्टविषयस्पर्शाकारेण वेदनाम् ॥ ४३ ॥ विपाककाल प्राप्यासौ वेदनापरिणामभाक् ॥ मूर्त्त निमित्तमात्र नो घटे दण्डवदन्वयि ॥ ४४ ॥ ज्ञानाख्या चेतना बोध कर्म्माख्या द्विष्टरक्तता ॥ जतोः कर्मफलाख्या सा वेदना व्यपदिश्यते ॥ ४५ ॥ नात्मा तस्मादमूर्त्तत्व चैतन्यं चातिवर्तते ॥ अतो देहेन नैकत्व तस्य मूर्त्तेन

कश्चित् ॥ ४६ ॥ गतिकृद्धर्मनोपाधीकमादरपि पुद्गलात् ॥ विभक्तधर्मादेश्च नाभ्येयं विज्ञातव्यम् ॥ ४७ ॥ पुद्गलानां
गुणो मूर्तिरात्मा ज्ञानगुणः पुनः ॥ पुद्गलान्यमतो भिन्नमात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥ ४८ ॥ धर्मस्य गतिहेतुत्वं गुणो ज्ञानं
तथात्मनः ॥ धर्मान्निकायात्तद्भिन्नमात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥ ४९ ॥ अधर्मे स्थितिहेतुत्वं गुणो ज्ञानगुणोऽसुमान् ॥ ततोऽध
मान्निकायाद्यमात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥ ५० ॥ अवगाहो गुणो व्योम्नो ज्ञानमस्यात्मनो गुणः ॥ व्योमान्निकायात्तद्भिन्न
मात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥ ५१ ॥ आत्मा ज्ञानगुणः सिद्धः समयो वर्तनागुणः ॥ तद्भिन्नं समयद्रव्यादात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः
॥ ५२ ॥ आत्मनस्तदनीयन्यो विभिन्नत्वं व्यवस्थितम् ॥ व्यपि जदनयादेशादजीवत्वमपीष्यते ॥ ५३ ॥ अजीवा जन्मिन
शुद्धभावप्राणव्यपेक्षया ॥ सिद्धाश्च निर्मलज्ञाना द्रव्यप्राणव्यपेक्षया ॥ ५४ ॥ इन्द्रियाणि बलं श्वासोच्छ्वासो ह्यायुस्तथा परम् ॥
द्रव्यप्राणाश्चतुर्भेदाः पर्यायाः पुद्गलाश्रिताः ॥ ५५ ॥ भिन्नास्ते ह्यात्मनोऽत्यन्तं तदेतैर्नास्ति जीवनम् ॥ ज्ञानवीर्यसुखाभ्यामनि
त्यभिव्यक्तिविकारिभिः ॥ ५६ ॥ एतस्मृतिमूलानि शाश्वतीभिरतु शक्तिभिः ॥ जीवत्यात्मा सदेत्येषा शुद्धद्रव्याश्रयस्थितिः
॥ ५७ ॥ जीवा जीवन्ति न प्राणैर्विना तैरेव जीवन्ति ॥ इदं चित्रं चरित्रं के वृत पर्यनुयुञ्जताम् ॥ ५८ ॥ नात्मा पुण्यं न वा
पापमेव पुद्गलात्मकं ॥ आद्यबन्धशरीरस्योपादानत्वेन कल्पितं ॥ ५९ ॥ पुण्यं कर्म शुभं प्रोक्तमशुभं पापमुच्यते ॥ तत्कथं
तु शुभं जन्तून् यत् पातयति जन्मनि ॥ ६० ॥ न ह्यायसस्य बन्धस्य तपनीयमयस्य च ॥ पारतन्त्र्याविशेषेण फलभेदोऽस्ति
कश्चन ॥ ६१ ॥ फलाभ्यां सुखदुःखाभ्यां न भेदः पुण्यपापयोः ॥ दुःखान्न भिद्यते हन्त यतः पुण्यफलं सुखम् ॥ ६२ ॥
दयाद्यपत्तः ॥ तत्र दुःखप्रतीकारविमूढानां सुखभ्रमः ॥ ६३ ॥ परिणामाच्च तापाच्च संस्काराच्च

पुर्धर्मतम् ॥ गुणवृत्तिविरोधाच्च दु खं पुण्यजवं सुखम् ॥ ६४ ॥ देहपुष्टेर्नरामर्त्यनायकानामपि स्फुटम् ॥ महाजपोपणस्येव परिणामोऽतिदारुण ॥ ६५ ॥ जलूका सुखमानिन्य पिबंत्यो रुधिरं यथा ॥ भुजाना विषयान् याति दशामतेऽतिदारुणाम् ॥ ६६ ॥ तीव्राग्निसंगमशुष्यत्पयसामयसामिव ॥ यत्रौत्सुक्यात्सदाक्षाणा तसता तत्र किं सुखम् ॥ ६७ ॥ प्राक्पश्चाच्चारतिज्वालालुटपाकमुपेयुषि ॥ इन्द्रियाणा गणे तापव्याप एव न निर्वृति ॥ ६८ ॥ सदा यत्र स्थितो द्वेषोल्लेख स्वप्रतिपक्षिषु ॥ सुखानुभवकालेऽपि तत्र तापहत मन ॥ ६९ ॥ स्कंधात् स्कंधांतरारोपे भारस्येव न तत्त्वत ॥ अक्षाह्लादेऽपि दु खस्य संस्कारो विनिवर्त्तते ॥ ७० ॥ सुख दु ख च मोहश्च तिस्रोऽपि गुणवृत्तय ॥ विरुद्धा अपि वर्त्तते दु खजात्यनतिक्रमात् ॥ ७१ ॥ क्रुद्धनागफणाभोगोपमो भोगोद्भवोऽखिल ॥ विलासश्चित्ररूपोऽपि भयहेतुर्विवेकिनाम् ॥ ७२ ॥ इत्थमेकत्वमापन्न फलत पुण्यपापयो ॥ मन्यते यो न मूढात्मा नांतस्तस्य भवोदधे ॥ ७३ ॥ दु खैकरूपयोर्भिन्नस्तेनात्मा पुण्यपापयो ॥ शुद्धनिश्चयत सत्यचिदानंदमय सदा ॥ ७४ ॥ तत् तुरीयदशाव्यंग्यरूपमावरणक्षयात् ॥ भास्वदुद्योतशीलस्य घनापायाद्रवेरिव ॥ ७५ ॥ जायते जाग्रतोऽक्षेभ्यश्चित्राधिसुखवृत्तय ॥ सामान्य तु चिदानंदरूप सर्वदशान्वयि ॥ ७६ ॥ स्फुलिंगैर्न यथा वह्निर्दीप्यते ताप्यतेऽथवा ॥ नानुभूतिपराभूती तथैताभिः किलात्मन ॥७७॥ साक्षिण सुखरूपस्य सुषुप्तौ निरहंकृतम् ॥ यथा भानं तथा शुद्धविवेके तदतिस्फुटम् ॥ ७८ ॥ सच्चिदानंदभावस्य भोक्तात्मा शुद्धनिश्चयात् ॥ अशुद्धनिश्चयात्कर्मकृतयो सुखदु खयो ॥ ७९ ॥ कर्मणोऽपि च भोगस्य स्रगादेर्व्यवहारत ॥ नैगमादिव्यवस्थापि भावनीयाऽनया दिशा ॥ ८० ॥ कर्त्तापि शुद्धभावानामात्मा शुद्धनयाद्विभुः ॥ प्रतीत्य वृत्तिं यच्छुद्धक्षणानामेष मन्यते ॥ ८१ ॥

अनुपप्लवसाम्राज्ये विप्लवापरिस्थिते ॥ आत्मा शुद्धस्वभावानां जननाय प्रवर्तते ॥ ८२ ॥ चित्तमेव हि संसारो रागादि क्लेशवासितम् ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते ॥ ८३ ॥ यश्च चिरात्मनः क्लिष्टो नानापात्मा विरोधतः ॥ अनन्य विकृतं रूपमित्यन्वर्थं हृदः पदम् ॥ ८४ ॥ श्रुतज्ञानोपयोगश्चेत्येतन्मिथ्या यथा घटः ॥ तथात्मा शुद्धरूपश्चेत्येवं शब्दनया जगुः ॥ ८५ ॥ शुद्धपर्यायरूपस्तदात्मा शुद्धः स्वभावकृत् ॥ प्रथमाप्रथमत्वादिभेदोऽप्येवं हि तात्त्विकः ॥ ८६ ॥ ये तु दिक्पटदेशीयाः शुद्धद्रव्यतयात्मनः ॥ शुद्धस्वभावकर्तृत्वं जगुरेऽपूर्वबुद्धयः ॥ ८७ ॥ द्रव्यास्तिकस्य प्रकृतिः शुद्धा संग्रह-गोचरा ॥ येनोक्ता संमतौ श्रीमत्सिद्धसेनदिवाकरैः ॥ ८८ ॥ तन्मते च न कर्तृत्वं भावानां सर्वदान्वयात् ॥ कूटस्थः कथम-त्युपात्मा वाग्मिसमाश्रितः ॥ ८९ ॥ कर्तुं व्याप्रियते नायमुदासीन इव स्थितः ॥ आकाशमिव पङ्केन लिप्यते न च कर्मणा ॥ ९० ॥ स्वरूपं तु न कर्तव्यं ज्ञातव्यं केवलं स्वतः ॥ दीपेन दीप्यते ज्योतिर्न त्वपूर्वं विधीयते ॥ ९१ ॥ अन्यथा प्रागनात्मा स्यात्स्वरूपानुपलक्षितः ॥ न च हेतुसहस्रेणाप्यात्मता स्यादनात्मनः ॥ ९२ ॥ नये तेनेह नो कर्ता किं त्वात्मा शुद्धज्ञानदृक् ॥ उपचारात्तु लोकेषु तत्कर्तृत्वमपीष्यताम् ॥ ९३ ॥ उत्पत्तिमात्मधर्माणां विशेषग्राहिणो जगुः ॥ अव्यक्ति-व्यक्तिरूपां नाशोत्पादादिति का प्रमा ॥ ९४ ॥ सत्त्वं च परसंताने नोपयुक्तं कथंचन ॥ सतानिनामनित्यत्वात्संतानोऽपि न च ध्रुवः ॥ ९५ ॥ व्योमाप्युत्पत्तिमत्तत्तदवगाहात्मना ततः ॥ नित्यता नात्मधर्माणां तदृष्टान्तवशादपि ॥ ९६ ॥ ऋजुसूत्रनय-स्तत्र कर्तृतां तस्य मन्यते ॥ स्वयं परिणमत्यात्मा यं यं भावं यदा यदा ॥ ९७ ॥ कर्तृत्वं परभावानामसौ, नाभ्युपगच्छति ॥ क्रियाश्रयं हि कर्तृत्वं व्यभ्यासिमतं जिनैः ॥ ९८ ॥ नृपत्यां हि क्रिया सैव स्यादेकद्रव्यसंततौ ॥ न सा तत्त्वं विना च

स्यात् परद्रव्यगुणेषु सा ॥ ९९ ॥ नन्वेवमन्यजावाना न चेत्कर्त्ता परो जनः ॥ तदा हिंसादयादानहरणाद्यव्यवस्थिति ॥ १०० ॥ सत्य पराश्रय न स्यात् फल कस्यापि यद्यपि ॥ तथापि स्वगत कर्म स्वफल नातिवर्त्तते ॥ १०१ ॥ हिनस्ति न पर कोपि निश्चयान्न च रक्षति ॥ तदायु कर्मणो नाशे मृतिर्जीवनमन्यथा ॥ १०२ ॥ हिंसादयाविकल्पाभ्या स्वगताभ्या तु केवलम् ॥ फल विचित्रमाप्नोति परापेक्षा विना पुमान् ॥ १०३ ॥ शरीरी म्रियता मा वा ध्रुव हिंसा प्रमादिन ॥ दयैव यतमानस्य वधेऽपि प्राणिना क्वचित् ॥ १०४ ॥ परस्य युज्यते दान हरण वा न कस्यचित् ॥ न धर्मसुखयोर्यत्ते कृतनाशादिदोषत ॥ १०५ ॥ जिनाभ्या जक्तवित्तादिपुद्गलाभ्या च ते कुतः ॥ स्वत्वापत्तिर्यतो दान हरण स्वत्वनाशनम् ॥ १०६ ॥ कर्मोदयाच्च तद्दान हरण वा शरीरिणाम् ॥ पुरुषाणा प्रयास कस्तत्रोपनमति स्वतः ॥ १०७ ॥ स्वगताभ्या तु जावाभ्या केवल दानचौर्ययो ॥ अनुग्रहोपघातौ स्त परापेक्षा परस्य न ॥ १०८ ॥ पराश्रिताना जावाना कर्तृत्वाद्यभिमानत ॥ कर्मणा बध्यतेऽज्ञानी ज्ञानवास्तु न लिप्यते ॥ १०९ ॥ कर्तृत्वमात्मा नो पुण्यपापयोरपि कर्मणो ॥ रागद्वेषाशयाना तु कर्त्ते ष्टानिष्टवस्तुषु ॥ ११० ॥ रज्यते द्वेष्टि वार्थेषु तत्तत्कार्यविकल्पतः ॥ आत्मा यदा तदा कर्म प्रमादात्मनि युज्यते ॥ १११ ॥ स्नेहाभ्यक्ततनोरंग रेणुनाश्लिष्यते यथा ॥ रागद्वेषानुविद्धस्य कर्मबधस्तथा मतः ॥ ११२ ॥ आत्मा न व्यापृतस्तत्र रागद्वेषाशय सृजन् ॥ तन्निमित्तोपनद्धेषु कर्मोपादानकर्मसु ॥ ११३ ॥ लोह स्वक्रियया‍न्येति भ्रामकोपलसनिधौ ॥ यथा कर्म तथा चित्र रक्तद्विष्टात्मसनिधौ ॥ ११४ ॥ वारि वर्षन् यथाम्भोदो धान्यवर्षी निगद्यते ॥ जावकर्म सृजन्नात्मा तथा पुद्गलकर्मकृत् ॥ ११५ ॥ नैगमव्यवहारी तु मूल कर्मादिकर्तृताम् ॥ व्यापारः फलपर्यंत परिदृष्टो यदात्मनः ॥ ११६ ॥ अन्यो-

न्यानुगतानां का तदेतद्विति या भिदा ॥ यावच्चरमपर्यायं यथा पानीयदुग्धयोः ॥ ११७ ॥ नात्मनो विकृतिं दत्ते तदेषा
नयकल्पना ॥ शुद्धस्य रजतस्येव शुक्तिधर्मप्रकल्पना ॥ ११८ ॥ मुषितत्वं यथा पान्थगतं पथ्युपचर्यते ॥ तथा पुद्गलकर्मस्था
विक्रियात्मनि बालिशैः ॥ ११९ ॥ कृष्णः शोणोऽपि चोपाधेर्नाशुद्धः स्फटिको यथा ॥ रक्तो द्विष्टस्तथैवात्मा संसर्गात्पुण्य
पापयोः ॥ १२० ॥ स्वयं नटकृता तासु यावद्विविधकल्पना ॥ यद्रूपं कल्पनातीतं तत्तु पश्यत्यकल्पकः ॥ १२१ ॥ कल्प
नामोहितो जन्तुः शुक्लं कृष्णं च पश्यति ॥ तस्यां पुनर्विलीनायामशुक्लाकृष्णमीक्षते ॥ १२२ ॥ तद्ध्यानं सा स्तुतिर्भक्तिः
सैवोक्ता परमात्मनः ॥ पुण्यपापविहीनस्य यद्रूपस्यानुचिन्तनम् ॥ १२३ ॥ शरीररूपलावण्यवप्रछत्रध्वजादिभिः ॥ वर्णितैर्वी
तरागस्य वास्तवी नोपवर्णना ॥ १२४ ॥ व्यवहारस्तुतिः सेयं वीतरागात्मवर्तिनाम् ॥ ज्ञानादीनां गुणानां तु वर्णना निश्च
यस्तुतिः ॥ १२५ ॥ पुरादिवर्णनाद्राजा स्तुतः स्यादुपचारतः ॥ तत्त्वतः शौर्यगाम्भीर्यधैर्यादिगुणवर्णनात् ॥ १२६ ॥ मुख्यो
पचारधर्माणामविभागेन या स्तुतिः ॥ न सा चित्तप्रसादाय कवित्वं कुकवेरिव ॥ १२७ ॥ अन्यथाभिनिवेशेन प्रत्युतानर्थ
कारिणी ॥ सुतीक्ष्णखड्गधारेव प्रमादेन करे धृता ॥ १२८ ॥ मणिप्रभामणिज्ञानन्यायेन शुभकल्पना ॥ वस्तुस्पर्शितया
न्याय्या यावन्नानन्तप्रभा ॥ १२९ ॥ पुण्यपापविनिर्मुक्तं तत्त्वतस्त्वविकल्पकम् ॥ नित्यं ब्रह्म सदा ध्येयमेषा शुद्धनयस्थितिः
॥ १३० ॥ आश्रवः संवरश्चापि नात्मा विज्ञानलक्षणः ॥ यत्कर्मपुद्गलादानरोधावाश्रवसंवरौ ॥ १३१ ॥ आत्मादत्ते तु यै
र्भावैः स्वतन्त्रः कर्मपुद्गलान् ॥ मिथ्यात्वाविरती योगाः कषायास्तेऽन्तराश्रवाः ॥ १३२ ॥ भावनाधर्मचारित्रपरीषहजया
दयः ॥ आश्रवोच्छेदिनो धर्मा आत्मनो भावसंवराः ॥ १३३ ॥ आश्रवः संवरो न स्यात्संवरश्चाश्रवः क्वचित् ॥ भवमोक्ष

द्भेदोऽन्यथा स्याद्धेतुसंकरात् ॥ १३४ ॥ कर्माश्रवं च संवरं चात्मा भिन्नैर्निजाशयैः ॥ करोति न परापेक्षामर्हञ्जुणुः स्वतः सदा ॥ १३५ ॥ निमित्तमात्रभूतास्तु हिंसाऽहिंसादयोऽखिलाः ॥ ये परप्राणिपर्याया न ते स्वफलहेतवः ॥ १३६ ॥ व्यवहारविमूढस्तु हेतूंस्तानेव मन्यते ॥ बाह्यक्रियारतस्वान्तस्तत्त्वं गूढं न पश्यति ॥ १३७ ॥ हेतुत्वं प्रतिपद्यन्ते नैवैतेऽनियमस्पृशः ॥ यावन्त आश्रवाः प्रोक्तास्तावन्तो हि परिश्रवाः ॥ १३८ ॥ तस्मादनियतं रूपं बाह्यहेतुषु सर्वथा ॥ नियतौ भावपर्यन्तर्विस्यादात्मैवाश्रवसंवरौ ॥ १३९ ॥ अज्ञानाद्विषयासक्तो बध्यते विषयैस्तु न ॥ ज्ञानाद्विमुच्यते चात्मा न तु शास्त्रादिपुद्गलात् ॥ १४० ॥ शास्त्रं गुरोश्च विनयं क्रियामावश्यकानि च ॥ संवराङ्गतया प्राहुर्व्यवहारविशारदाः ॥ १४१ ॥ विशिष्टा वाक्तनुस्वान्तपुद्गलास्तेऽपकारवहाः ॥ ये तु ज्ञानादयो भावाः संवरत्वं प्रयान्ति ते ॥ १४२ ॥ ज्ञानादिभावयुक्तेषु शुभयोगेषु तद्गतम् ॥ संवरत्वं समारोप्य स्मयते व्यवहारिणः ॥ १४३ ॥ प्रशस्तरागयुक्तेषु चारित्रादिगुणेष्वपि ॥ शुभाश्रवत्वमारोप्य फलभेदं वदन्ति ते ॥ १४४ ॥ भवनिर्वाणहेतूनां वस्तुतो न विपर्ययः ॥ अज्ञानादेव तद्भानं ज्ञानी तत्र न मुह्यति ॥ १४५ ॥ तीर्थकृन्नामहेतुत्वं यत्सम्यक्त्वस्य वर्ण्यते ॥ यच्चाहारकहेतुत्वं संयमस्यातिशायिनः ॥ १४६ ॥ तपःसंयमयोः स्वर्गहेतुत्वं यच्च पूर्वयोः ॥ उपचारेण तद्युक्तं स्याद् घृतं दहतीतिवत् ॥ १४७ ॥ येनांशेनात्मनो योगस्तेनांशेनाश्रवो मतः ॥ येनांशेनोपयोगस्तु तेनांशेनास्य संवरः ॥ १४८ ॥ तेनासावंशविश्रान्तौ विभ्रदाश्रवसंवरौ ॥ जात्यादर्श इव स्वच्छास्वच्छभागद्वयः सदा ॥ १४९ ॥ शुद्धा ज्ञानधारा स्यात्सम्यक्त्वप्राप्त्यनन्तरम् ॥ हेतुभेदाद्विचित्रा तु योगधारा प्रवर्त्तते ॥ १५० ॥ सम्यग्दृशो विशुद्धत्वं सर्वास्वपि दशास्वतः ॥ मृदुमध्यादिभावस्तु क्रियावैचित्र्यतो भवेत् ॥ १५१ ॥ यदा तु सर्वतः शुद्धि-

जायते धारयोर्द्वयो ॥ शैलेशीमहिता स्थैर्यात्सदा स्यात्सयोगिनः ॥ १५२ ॥ ततोऽयोगि पदं प्राप्य स्थिरत्वं गाढदारगः ॥ सततो योगपर्यायस्य धारत्तारतिस्त्राश्रय ॥ १५३ ॥ अनुज्ञनयतर्थं सतराश्रयसकथा ॥ समारिणां च सिद्धानां न शुद्ध नयतो निगः ॥ १५४ ॥ निर्जरा कर्मणा शाटो नात्माऽसौ कर्मपर्ययः ॥ येन निर्जीयते कर्म स नास्त्यात्मविग्रहणम् ॥ १५५ ॥ मनसो चादनापिप शुद्धध्यानसमन्वितम् ॥ आत्मशक्तिसमुज्ञान चित्तवृत्तिनिरोधकृत् ॥ १५६ ॥ यत्र रोध कषायाणां ब्रह्मध्यान जिनस्य च ॥ ज्ञातव्य ततप शुद्धमवशिष्ट तु लपनम् ॥ १५७ ॥ उद्युक्ता देहकार्श्यया तपसो नास्ति लक्षणम् ॥ निनिष्टाग्रहगुप्त्यादिस्थान ज्ञान तु तद्बुधः ॥ १५८ ॥ ज्ञानेन निपुणेनैक्य प्राप्त चन्दनगन्धवत् ॥ निर्जरामात्मनो दत्ते तपो नान्यादृशं क्वचित् ॥ १५९ ॥ तपस्वी जिनवाक्या च शासनोज्ञासनेच्छया ॥ पुण्य बध्नाति बहुल मुच्यते तु गतस्पृह ॥ ॥ १६० ॥ कर्मतापकर ज्ञान तपस्तन्नैव वेत्ति य ॥ प्राप्नोतु स कृतस्यातो विपुलां निर्जरां कथम् ॥ १६१ ॥ अज्ञानी तपसा जन्मकोटिभि कर्म यन्नयेत् ॥ अन्त ज्ञानतपोयुक्तस्तत् क्षणेन सहरेत् ॥ १६२ ॥ ज्ञानयोगस्तप शुद्धमित्याहुर्मुनिपुंगवा ॥ तस्मान्निकाचितस्यापि कर्मणो युज्यते क्षयः ॥ १६३ ॥ यद्विहापूर्वकरण श्रेणि शुद्धा च जायते ॥ ध्रुव स्थितिक्षयस्तत्र स्थितानां प्राच्यकर्मणाम् ॥ १६४ ॥ तस्मात् ज्ञानमय शुद्धतपस्वी भावनिर्जरा ॥ शुद्धनिश्चयतस्त्वेषा सदा शुद्धस्य कापि न ॥ १६५ ॥ बन्धः कर्मात्मसश्लेषो द्रव्यत स चतुर्विध ॥ तत्कृत्यध्यवसायात्मा भावतस्तु प्रकीर्तित ॥ १६६ ॥ वेष्टय त्यात्मनात्मान यथा सर्वस्तथांशुमान् ॥ तदज्ञानैः परिणतो बध्नात्यात्मानमात्मना ॥ १६७ ॥ बध्नाति स्व यथा कोशकार कीटः स्वतन्तुभि ॥ आत्मनः स्वगतैर्भावैर्बन्धन सोपमा स्मृता ॥ १६८ ॥ जन्तूना सापराधाना बधकारी न हीश्वर ॥ तद्व

धवाग्रस्थानादयथस्याग्रपृस्तित ॥ १६९ ॥ न त्वज्ञानप्रवृत्त्यर्थे ज्ञानवनोदना ध्रुवा ॥ अबुद्धिपूर्वकार्येषु स्वभावो तददर्श-
नात् ॥ १७० ॥ तथाजन्यतया जतुर्नोदितश्च प्रवर्त्तते ॥ वध्नन् पुण्य च पाप च परिणामानुसारत ॥ १७१ ॥ शुद्ध-
निश्चयतस्त्वात्मा न बद्धो बधशाकया ॥ जयक्पादिक किंतु रज्ञावद्दिमतेरिव ॥ १७२ ॥ रोगस्थित्यनुसारेण प्रवृत्ती रोगिणो
यथा ॥ नवस्थित्यनुसारेण तथा वधेऽपि वर्ण्यते ॥ १७३ ॥ दृढाज्ञानमयीं शकामेनामपनिनीषव ॥ अध्यात्मशास्त्रमिच्छति
धोतु वैराग्यशालिणः ॥ १७४ ॥ दिश प्रदर्शकं शाखाचन्द्रन्यायेन तत्पुन ॥ प्रत्यक्षविषया शका न हि हति परोक्षधी
॥ १७५ ॥ शसे मंत्यानुमानेऽपि दोषालीतत्वधीर्यथा ॥ शास्त्रज्ञानेऽपि मिथ्याधीसस्काराद्बधधीस्तथा ॥ १७६ ॥ श्रुत्वा
मत्वा मुहु स्मृत्वा साक्षादनुजवति ये ॥ तत्त्व न वधधीस्तेषामात्मानध प्रकाशते ॥ १७७ ॥ द्रव्यमोक्ष क्षय कर्मद्रव्या-
णां नात्मलक्षणम् ॥ जावमोक्षस्तु तद्धेतुरात्मा रत्नत्रयान्वयी ॥ १७८ ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रैरात्मैक्य लजते यदा ॥ कर्माणि
कुर्वितानीव नरत्याशु तदा पृथक् ॥ १७९ ॥ अतो रत्नत्रय मोक्षस्तदजावे कृतार्थता ॥ पाषण्डिगणलिंगैश्च गृहिलिंगैश्च कापि
त ॥ १८० ॥ पाषण्डिगणलिंगेषु गृहिलिंगेषु ये रता ॥ न ते समयसारस्य ज्ञातारो बालबुद्धय ॥ १८१ ॥ जावलिंगरता ये
स्तु सर्वसारविदो हि ते ॥ लिंगस्था वा गृहस्था वा सिध्यति धूतकल्मषा ॥ १८२ ॥ जावलिंग हि मोक्षाग द्रव्यलिंगम-
कारणम् ॥ द्रव्य नात्यन्तिक यस्मात्राप्येकान्तिकमिष्यते ॥ १८३ ॥ यथाजातदशालिंगमर्थाद्व्यजिचारि चेत् ॥ विपक्षबा-
धकाजावान् तद्धेतुत्वे नु का प्रमा ॥ १८४ ॥ वस्त्रादिधारणेच्छा चेद्बाधिका तस्य ता विना ॥ धृतस्य किमवस्थाने करा-
देरिव बाधकम् ॥ १८५ ॥ स्वरूपेण च वस्त्र चेत्केवलज्ञानबाधकम् ॥ तदा दिक्पटनीत्यैव तत्तदावरण जवेत् ॥ १८६ ॥

इत्य वेयक्तिगलेन मूर्हि दिशेन वेनचित् ॥ वेवचित् पक्षायोमदो क्रियमाजगत् ॥ १०७ ॥ जानाप[illegible]
निश्चग्रिगोप्यपि ध्रुव ॥ यदाप्रद्व विमुर्च्यतजायतीय गतम्बिना ॥ १०० ॥ अनुनयतो ज्ञाना पक्षो गुण इति स्थितिः ॥
न शुद्धनयतस्तेव पच्यते नापि मुच्यते ॥ १०९ ॥ अन्वयव्यतिरेका यामात्मतत्त्वविनिश्चयम् ॥ [illegible] हि [illegible]
सुर्यादेव विचक्षणः ॥ १९० ॥ इद हि परमध्यात्मममृत हद एव च ॥ इद हि परम ज्ञानं योगोऽय परमः स्मृतः ॥ १९१ ॥
गुणाद्गुणलर तत्त्वमेतत्शुद्धनयाश्रितम् ॥ न देय स्वल्पबुद्धीना ते [illegible] निश्चयः ॥ १९२ ॥ [illegible]बुद्धीनां [illegible]
सत्त्व हितावहम् ॥ निर्बुद्धाना सुधापोना भोजन धर्मिणो यथा ॥ १९३ ॥ [illegible]र्विदग्धानां [illegible]मेऽदुनर्थकृत् ॥
अनात्मज्ञ[illegible] पणिरत्नमहो यथा ॥ १९४ ॥ व्यवहारविनिष्णातो यो ज्ञीप्सति विनिश्चयम् ॥ [illegible]
स तितीर्षति ॥ १९५ ॥ व्यवहार विनिश्चित्य ततः शुद्धनयाश्रितः ॥ आत्मज्ञानरतो भूत्वा परम साम्यमाश्रयेत् ॥ १९६ ॥

॥ इत्यात्मनिश्चयाधिकार ॥ १८

॥ उत्सर्पद्व्यवहारनिश्चयकथारङ्गोत्तरङ्गोन्नाद्दद्धजैनसुनयवादिद्रुमपुञ्जप्रदप्रगुणान्वयम् ॥ [illegible]
स्याद्वादमर्यादया युक्त श्रीजिनशासन जलनिधि मुक्त्वा पर नाश्रये ॥ १ ॥ पूर्णः पुण्य[illegible]गुणैः [illegible]
[illegible] सदा विजयते स्याद्वादकल्पद्रुमः ॥ एतस्मात् पतिते प्रसादकुसुमैः षड्दर्शनारामभूः [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥ २ ॥ चित्रोत्सर्गशुभापवादरचनासानुश्रियाश्रृङ्गः श्रद्धा[illegible]महोऽयमलंकारः ॥ [illegible]
स्यद्रि परदर्शनग्रहगणैरासेव्यमानः सदा तर्कस्वर्णशिलोच्छ्रितो विजयते जैनागमो मन्दरः ॥ ३ ॥ एतादृशागममन्नमपि न

गलि क्षीयत एव क्षणादध्वानो विशदीजवति निविमा निद्रा दृशोर्गच्छति ॥ यस्मिन्नन्युदिते प्रमाणदिवसप्रारंजकल्याणिनी प्रौढत्व नयगीर्दधाति स रविर्जैनागमो नदतात् ॥ ४ ॥ अध्यात्मामृतवर्षिन्निः कुवलयोल्लास विलासैर्गवा तापव्यापविनाशि न्निवितनुते लब्धोदयो य सदा ॥ तर्कस्थाणुशिर स्थित परिवृत स्फारैर्नयैस्तारकैः सोऽयश्रीजिनशासनामृतरुचि कस्यैति नो रध्यताम् ॥ ५ ॥ बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमजूद्वेदातिना सम्ग्रहात्साख्याना तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिक ॥ शब्दब्रह्मविदोऽपि शब्दनयत सर्वैर्नयैर्गुंफिता जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्ष्यते ॥ ६ ॥ ऊष्मा नार्कमपाकरोति दहन नैव स्फुलिंगावली नाब्धि सिंधुजलप्लय सुरगिरिं ग्रावा न चान्यापतन् ॥ एव सर्वनयैकजावगरिमस्थान जिनेंद्रागम तद्दर्शनमकथासारचनारुपा न हतु क्षमा ॥ ७ ॥ ङु साध्य परवादिना परमतक्षेप विना स्व मत तत्क्षेपे च कषायपंकक-लुष चेत मनापद्यते ॥ सोऽय नि स्वनिधिप्रलुव्यवसितो वेतालकोपक्रमो नाथ सर्वहितावहे जिनमते तत्त्वप्रसिद्ध्यर्थिनाम् ॥ ७ ॥ वार्त्ता सति सहस्रश प्रतिमत ज्ञानाशयक्रमाश्चेत्तस्तासु न नः प्रयाति नितमा लीन जिनेंद्रागमे ॥ नोत्सर्पति लता फलति प्रतिदिनं पुष्पे पवित्रा मधौ तान्यो नैति रति रसालकलिकारक्तस्तु पुस्कोकिल ॥ ए ॥ शब्दो वा मतिरर्थ एव वस्तु वा जातिः क्रिया वा गुण शब्दार्थ किमिति स्थिता प्रतिमत संदेहशकुव्यथा ॥ जैनेंद्रे तु मते न सा प्रतिपद जात्यतरार्थस्थिते सामान्य च विशेषमेव च यथा तात्पर्यमन्विच्छति ॥ १० ॥ यत्रानर्पितमादधाति गुणता मुख्य तु वस्त्व र्पित तात्पर्यानवबवनेन तु जवेद्बोध स्फुट लौकिकः ॥ सपूर्ण त्ववजासते कृतधिया कृत्स्नाद्विवक्षाक्रमात् ता लोकोत्तरज-गपद्धतिमयीं स्याद्वादमुद्रा स्तुम ॥ ११ ॥ आत्मीयानुजवाश्रयार्थविषयोऽप्युच्चैर्यदीयक्रमो म्लेच्छानामिव सस्कृत तनुधि-

ग्युक्तिन त जैनागममात्रग्रन्थ न यय व्याक्षेपनाज कचित् ॥१२॥
यामाश्रयमोक्षानह ॥ व्युत्पत्तिमतिशक्तिहेतुचिततस्याद्वादवाग्युक्तिन त जैनागममात्रग्रन्थ... पतत्किमन कौतस्य कत्रिमखङ्ग
मूत्र सर्वत्रयोगतस्य विदित जैनेश्वर शासन तस्मादेव समुक्तिर्नयमतस्तस्यैव यत्नेकृतम् ॥ त्यक्तोन्मादविजगयवादरचनामात्रम्यं कर्णा
प्रात्मन स्याश्रिता शास्त्रा ठेतुमिरोघतस्य कटुकोदर्काय वर्जाथिन ॥ १३ ॥ यस्या सर्वनया विशति न पुनर्व्यस्तेषु तेष्वेव या मात्राया
मृत निक्तार्थरहस्यवित् क ठजतामन्यत्र शास्त्रे रतिम् ॥ अन्योन्यमतिपक्षजातनितयान् स्वस्वार्थमत्यान्नयाघापेन्नाविरयामर्हर्नित-
मणयो मुक्ति न पुनर्व्यस्तेषु मात्रापि सा ॥ १४ ॥ अन्योन्यमतिपक्षजातनितयान् ... दिङ्मूढतो मुदेऽप्रतिम यशो विजयिनस्तस्यैव मनर्द्धते ॥१५॥
मन माध्यस्थ्यमास्थाय च ॥ स्याद्वादे सुपथे निवेश्य हरते तेषा तु दिङ्मूढतो मुदेऽप्रतिम यशो ॥ १९

॥ इति जिनमतस्तुत्यधिकार ॥ १९

नारवोपदर्शितदिशा गद्दितामवृमहकषायकपुराणाम् ॥ प्रियमनुजवैकवेद्य रहस्यमाविर्जयति किमपि ॥ १ ॥ प्रथमान्या
मशिवामादावित्यैव यत्नेश्वाद्दीनम् ॥ चपत्तरणीनिभ्रमनममुत्तराञ मनः मुक्ते ॥ २ ॥ मुनिविदितयोगैरिष्ट क्षिप्त मूढ तथैव
विक्षिप्त ॥ एकाग्र च निरुद्ध चेत पञ्चप्रकारमिति ॥ ३ ॥ विषयेषु कल्पितेषु च पुर स्थितेषु च निवेशित रजसा ॥ सुख
दु खयुग्बहिर्मुखमाम्नात क्षिप्तमिह चित्तम् ॥ ४ ॥ क्रोधादिभिर्नियमित विरुद्धकृत्येषु यत्तमोभूम्ना ॥ कृत्याकृत्यविभागास
गामन मनो मूढम् ॥ ५ ॥ सतोऽकालरहितद्धखनिदानेषु सुखनिदानेषु ॥ शब्दादिषु प्रवृत्त सदैव चित्त तु विक्षिप्तम् ॥६॥
अद्वेषादिगुणवता नित्य खेदादिदोषपरिहारात् ॥ सदृशप्रत्ययसगतमेकाग्र चित्तमाम्नातम् ॥ ७ ॥ उपरतविकल्पवृत्तिकमवम
॥ आत्मारामसुनीना भवति निरुद्ध सदा चेत ॥ ८ ॥ न समाधावुपयोग तिसृश्चेतोदशा इह ठजते ॥

सत्वोत्कर्षात् स्थैर्याद्भजे समाधिसुखातिशयात् ॥ ए ॥ योगारम्भस्तु भवेद्विक्षिप्ते मनसि जातु सानन्दे ॥ क्षिप्ते मूढे चास्मिन् व्युत्थानं भवति नियमेन ॥ १० ॥ विषयकषायनिवृत्तं योगेषु च सञ्चरिष्णु विविधेषु ॥ गृहखेलद्बालोपममपि चलमिष्टं मनोऽभ्यासे ॥ ११ ॥ वचनानुष्ठानगतं यातायातं च सातिचारमपि ॥ चेतोऽभ्यासदशायां गजाङ्कुशन्यायतोऽदुष्टम् ॥१२॥ ज्ञानविचाराभिमुखं यथा यथा भवति किमपि सानन्दम् ॥ अर्थ प्रत्योन्य बाह्यैरनुगृह्णीयात्तथा चेत ॥ १३॥ अभिरूपजिनप्रतिमा विशिष्टपदवाक्यवर्णरचना च ॥ पुरुषविशेषादिकमप्यत एवालम्बनं ब्रुवते ॥ १४ ॥ आलम्बनैः प्रशस्तैः प्रायो भाव प्रशस्त एव यत ॥ इति सालम्बनयोगी मन शुभालम्बनं दध्यात् ॥ १५ ॥ सालम्बनं क्षणमपि क्षणमपि कुर्यान्मनो निरालम्बम् ॥ इत्यनुभवपरिपाकादाकालं स्यान्निरालम्बम् ॥१६॥ आलम्ब्यैकपदार्थं यदा न किंचिद्विचिंतयेदन्यत् ॥ अनुपनतेंधनवह्निवदुपशान्तं स्यात्तदा चेत ॥ १७ ॥ शोकमदमदनमत्सरकलहकदाग्रहविषादवैराणि ॥ क्षीयन्ते शान्तहृदामनुभव एवात्र साक्षी नः ॥१८॥ शान्ते मनसि ज्योति. प्रकाशते शान्तमात्मन सहजम् ॥ भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वान्तं विलयमेति ॥१ए॥ बाह्यात्मनोऽधिकार शान्तहृदामन्तरात्मना न स्यात् ॥ परमात्मानुध्येय सन्निहितो ध्यानतो भवति ॥ २० ॥ कायादिर्बहिरात्मा तदधिष्ठातान्तरात्मतामेति ॥ गतनि शेषोपाधि परमात्मा कीर्त्तितस्तज्ज्ञै ॥ २१ ॥ विषयकषायावेश तत्त्वाश्रद्धा गुणेषु च द्वेषः ॥ आत्माज्ञानं च यदा बाह्यात्मा स्यात्तदा व्यक्त ॥ २२ ॥ तत्त्वश्रद्धा ज्ञानं महाव्रतान्यप्रमादपरता च ॥ मोहजयश्च यदा स्यात् तदान्तरात्मा भवेद्व्यक्त ॥ २३ ॥ ज्ञानं केवलसंज्ञं योगनिरोध. समग्रकर्म्महति ॥ सिद्धिनिवासश्च यदा परमात्मा स्यात्तदा व्यक्त ॥ २४ ॥ आत्ममनोगुणवृत्ती विविच्य य. प्रतिपदं विजानाति ॥ कुशलानुबन्धयुक्त प्रा-

मोति यान नयमनी ॥ २५ ॥ ब्रह्मस्थो ब्रह्मज्ञो ब्रह्म प्राप्नोति तत्र किं चित्रम् ॥ ब्रह्मविदां वचनापि ब्रह्मविचारमनुनरामः
॥ २६ ॥ यत्राध्यगतु मन ब्रह्मादादगमद्भ्यपदनारे ॥ येनास तत् पूर्ण योगी न ब्रह्मण परम ॥ २७ ॥ व्यवोऽय
मेव्योऽय कार्यो नपि गुरुतधियाऽसंवर ॥ अमि गुरुरबुध्या गुतर सगारसिधुरवि ॥ २८ ॥ अयवव्येखायोग पूर्णा-
धागमदिम्पुरथ श्रयम् ॥ तत्क्या परममुनीना तदीयपदवीमनुसरामः ॥२९॥ अद्यापि यात्र यतना निर्दिशा मा नुनानुबंध
वरी ॥ अज्ञानविध्ययवृद्धिरेयन यात्मजातानां ॥ ३० ॥ सिद्धान्ततद्गाना शास्त्राणामस्तु परिचयः शनया ॥ परमाग
यनमूलो दर्शनयागोऽयमस्माकम् ॥ ३१ ॥ विधिकृयन विधिरागो विधिमार्गस्थापर विधीमूना ॥ अविधिनिषेधश्चेति प्रवच-
नतर्ग अभिज्ञान ॥ ३२ ॥ अध्यात्मतारतोऽयश्चेतोवृत्त्योचित हि नः कृत्यम् ॥ पूर्णक्रियाभिलाषश्चेति द्वयमात्मनुद्धिकरम्
॥ ३३ ॥ द्वयमिह गुरानुरथ शक्यारम्भश्च शुवारम्भ ॥ अहितो विपर्यय पुनरित्यनुनयगत पश्य ॥ ३४ ॥ ये त्वनु
नयाविनिश्चिलमार्गाश्चारित्रपरिणतिभ्रष्टा ॥ यात्रत्रियया चरणाभिमानिनो ज्ञानिनोऽपि न ते ॥ ३५ ॥ लोकेषु बहिर्बुद्धिषु
विगोपकानां बहिःक्रियासु रति ॥ श्रद्धा विना न चेता मता प्रमाण यतोऽनिखिलम् ॥ ३६ ॥ बाल पश्यति लिङ्ग मध्य
मबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ॥ आगमतत्त्व तु बुध परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ ३७ ॥ निधो न कोपि लोके पापिष्ठेष्वपि नवस्थि
तिश्चिन्त्या ॥ पूज्या गुणगरिमाढ्या धार्या रागो गुणलवेऽपि ॥ ३८ ॥ निश्चित्यागमतत्त्व तस्माल्लुब्धय लोकसज्ञा च ॥
श्रद्धाविवेकसारं यतितव्य योगिना नित्यम् ॥ ३९ ॥ ग्राह्य हितमपि बालादालापैर्दुर्जनस्य न द्वेष्यम् ॥ त्यक्तव्या च पराशा
पाशा इव सगमा ज्ञेयाः ॥ ४० ॥ स्तुत्या स्मयो न कार्यः कोपोऽपि च निन्दया जनैः कृतया ॥ सेव्या धर्माचार्यास्तत्त्व

जिज्ञासनीयं च ॥ ४१ ॥ शौच स्थैर्यमदंभो वैराग्य चात्मनिग्रह कार्य ॥ दृश्या जवगतदोषाश्चित्य देहादिवैरूप्यम् ॥४२॥ जक्तिर्जगवति धार्या सेव्यो देश सदा विविक्तश्च ॥ स्थातव्य सम्यक्त्वे विश्वास्यो न प्रमादरिपु ॥ ४३ ॥ ध्येयात्मबोध निष्ठा सर्वत्रैवागम पुरस्कार्य ॥ त्यक्तव्या कुविकल्पा स्थेय वृद्धानुवृत्त्या च ॥ ४४ ॥ साक्षात्कार्यं तत्त्व चिद्रूपानदमेदुरैर्जाव्यम् ॥ हितकारी ज्ञानवतामनुजववेद्य प्रकारोऽयम् ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इत्यनुभवाधिकार ॥ २०

॥ येषां कैरवकुदवृदशशांकजृत्कर्पूरशुभ्रा गुणा मालिन्य व्यपनीय चेतसि नृणा वैशद्यमातन्वते ॥ सत सतु मयि प्रसन्न मनसस्ते केऽपि गौणीकृतस्वार्था मुख्यपरोपकारविधयोऽत्युच्चकृषलै कि खलै ॥ १ ॥ ग्रथार्थान् प्रगुणीकरोति सुकविर्यत्नेन तेषां प्रथामातन्वंति कृपाकटाक्षलहरीलावण्यत सज्जना ॥ माकदद्रुममजरी वितनुते चित्रा मधुश्रीस्तत सौजाग्य प्रथयति पंचमचमत्कारैश्च पुंस्कोकिला ॥ २ ॥ दोषोल्लेखविष खलाननबिलाजुत्थाय कोपाज्ज्वलन् जिह्वाहिर्ननु क गुण न गुणिना पार्श्वे क्षयं प्रापयेत् ॥ न स्याच्चेत्प्रबलप्रजावजवन दिव्यौषधीसन्निधौ शास्त्रार्थोपनिषद्विदा शुजहृदा कारुण्यपुण्यप्रथा ॥ ३ ॥ उत्तानार्थगिरा स्वतोऽप्यवगमान्नि सारता मेनिरे गजीरार्थसमर्थने वत खला काठिन्यदोष ददु ॥ तत्को नाम गुणोऽस्तु कथ सुकवि किं काव्यमित्यादिका स्थित्युच्छेदमतिं हरति नियता दृष्टा व्यवस्था सताम् ॥ ४ ॥ अध्यात्मामृतवर्षिणीमपि कथामापीय सत सुख गाहते विषमुद्गिरति तु खला वैषम्यमेतत्कुत ॥ नेदं चाद्भुतमिन्दुदीधितिपिवा प्रीताश्चकोरा जृश किं न स्युर्वत चक्रवाकतरुणास्त्वत्यतखेदातुरा ॥ ५ ॥ किंचित्साम्यमवेक्ष्य ये विदधते काचेंद्रनीलाजिदा तेषा न प्रमदा-

यद्या ननुधिया गूढ करीना इति ॥ यं गानति निशिममध्यविगते रेखांगरंगाशतो वस्तु यस्तु गतामितः शृङ्गारिणा तेना

मह्लानुगया ॥ ६ ॥ पूर्णाध्यात्मपदार्थमार्थघटना यत्तश्चमत्कारिणी मोदप्रद्यश्चा नवचनुधिया नो पठितानाभिन ॥ काकु-

त्यागुञ्जरागमगंगहलमोदामयाप्यातुरी कामिन्याः प्रगत प्रमोदयति न प्राप्यान् निदग्धानिर ॥ ७ ॥ स्नात्वा मिञातङ्के

निधुवनशिलाध्यात्मपानीयपूरैन्राय गमारद्व र वल्लिरगुगमय लोननृप्णा च हित्वा ॥ जाता यं सुवर्णा रामन्मनुनि

तापन्नाभिमगात्रा नीनावंशागाराः गनन्यगुणनिधीन्मज्ञागालाश्यमामः ॥ ८ ॥ पायोद पयनर्धनिधुवनगनर यदति

मयवना भ्रमां पूर्णम् येत गर उद्गुहल शाव्यत रगवनि ॥ सुव्यति स्यानयथा पुरगमगुणवृषिणा कुरंगाना चित्र

नारदोयात् प्रगायगनवनाधि गरत्यधुनीरम् ॥ ९ ॥ उद्दाममयनामथ्यानवयरा मचय गतकनीना क्षीराब्धिर्मथ्यते य

गह्न्यनिधुधर्मन्या रगुनन ॥ एतांकीरपिकीनवति निधुवर्धमकन निधुवलासारा चन्द्रागशोभादय इह दधते नीचिरि

नानडीआम् ॥ १० ॥ काव्य दृष्ट्वा करीना हामसृतमिति स्व मत्वा पानाशी येद धत्त तु मूर्धा मृदुतरहृदय मजानो

गाधुन ॥ हारा मर्यादनाय प्रगमरमत्र तत्कीर्तिपीयूषपूर नित्य रक्षाविधानानियतमतितरां मोदत च स्मिता ॥ ११ ॥

निष्णाय गौरयुत निपुणनयमृत गुनकारा पर्वान्ता गार्गे धारोष्य तस्मिन् कमपि परिचयालगसरीमारनागम् ॥ पद्य

मत्वांति यादं गुणहरणमनिम्नवडशेषदृष्टिराशामाशा कराडे रमननवचनरयाडनिक्त निरस्य ॥ १२ ॥ उद्गुरोग्मारगंधि

... ज्ञानायनज्ञयोगात्मसुपचितगुणो मधुता याति मद्य ॥ मत पीत्वा यद्वुद्गंधयति हृदि मुद

... ॥ १३ ॥ नव्योऽस्माकं प्रवधोऽध्यनागुणगृहा सज्जानाना

प्रजाघादिस्त्वात स्यादितीमे हितकरणविधौ प्रार्थनीया न किं न॰ ॥ निष्णाता या स्वतस्ते रविरुचय इवाम्भोरुहाणां गुणा- नामुल्लामेऽपेक्षणीयो न खलु परस्त्वे क्वापि तेषां स्वभाव ॥१४॥ यत्कीर्त्तिस्फूर्त्तिगानावहितसुरवधूवृंदकोलाहलेन प्रक्षुब्धस्व र्गर्भिश्रो पतितजलभरैः क्षालित शैत्यमेति ॥ अश्रान्तभ्रान्तकान्तग्रहगणकिरणैस्तापवान् स्वर्णशैलो भ्राजते ते मुनींद्रा नय- विजयबुधा॰ सज्जनव्रातधुर्याः ॥ १५ ॥ चक्रे प्रकरणमेतत्तत्पदसेवापरो यशोविजय ॥ अध्यात्मधूतरुचीनामिदमान- दावह भवतु ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मसारग्रंथ॰ समाप्तः ॥

॥ अथ देवधर्मपरीक्षाप्रारंभः ॥

॥ ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदर्शिनम् । निराकरोमि देवानामधर्मत्वस्य विभ्रमम् ॥१॥ इह केचिन्मूढमतयो देवा अध-
र्मिण इति निष्ठुरं जल्पन्ते वराकाः । देवानामसंयततव्यपदेशस्यापि सिद्धान्ते निषिद्धत्वात् । तथाहि पञ्चमाङ्गे पञ्चमशत
चतुर्थोद्देशके-देवाणं भंते संजयत्ति वत्तव्वं सिया गोयमा नो इणट्ठे समट्ठे अब्भक्खाणमेयं देवाणं । देवाणं भंते असंजयत्ति व
त्तव्वं सिया नो इणट्ठे समट्ठे निट्ठुरवयणमेयं देवाणं । देवाणं भंते संजयासंजयत्ति वत्तव्वं सिया गोयमा नो इणट्ठे समट्ठे असब्भू-
यमेयं देवाणं से किं खाइएणं भंते देवत्ति वत्तव्वं सिया गोयमा देवाणं नोसंजयत्ति वत्तव्वं सिया ॥ अत्र यदि देवानामसंयतत्वव्यपदे-
शोऽपि निषिद्धस्तदा कथमधर्मित्वव्यपदेशः सचेतसा कर्तव्य इति पर्यालोचनीयम् ॥२॥ ननु तर्हि नोसंयता इतिवन्नोधर्मिण
इत्येव वक्तव्यम् । न । देवानां संयमसामान्याभावेऽपि निष्ठुरभाषापरिहारार्थं नोसंयतत्वव्यपदेशविधानेऽपि धर्मसामान्याभावा-
भावेन तद्वत्तेन नोधर्मित्वव्यपदेशासिद्धेः । धर्मसामान्याभावस्तेषु कथं नास्तीति चेत् "दुविहे धम्मे पन्नत्ते सुयधम्मे य चरित्तध
म्मे य" इति स्थानाङ्गविवेचितश्रुतधर्मस्य तेषामबाधासिद्धेः ॥ २ ॥ स्यादेतत्-विरताविरत-गुणस्थानकाद्युपलक्षितधर्माऽपि
तेषां न भविष्यतीति अयुक्तम्-"सुयधम्मे दुविहे पन्नत्ते तं सुत्तसुयधम्मे चेव अत्थसुयधम्मे चेव" इति जिनागमपर्यालोचनया
सम्यग्दृष्टिमात्रे श्रुतधर्मस्याऽऽवश्यकत्वात् ॥ ३ ॥ अथ नेरइयाणं पुच्छा "गोयमा नेरइया नोधम्मे ठिया अधम्मे ठिया
नो धम्माधम्मे ठिया एवं जाव चउरिंदिया पंचिंदियतिरिक्खजोणिया नोधम्मे ठिया अधम्मे ठिया धम्माधम्मे ठिया

मणुस्सा जहा जीवा वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया' इति भगवतीसप्तदशशतकद्वितीयोद्देशकवचनस्य का गतिरिति चेद्धर्मानभिज्ञानां वक्तुर्गतिवर्गाणां भवतां न काचिदस्ति गतिः अस्माकं तु सम्यगुपासितगुरुकुलानामस्ति समीचीनैव गतिः । तथाहि-उपक्रमे यात्र धर्मशब्दः संयमपर्यायो धर्माधर्मशब्दश्च देशविरतिपर्याय "स्था"धात्वर्थश्चानुगमन स्फोटधर्मस्थितादौ च तदन्तरप्रतिज्ञानामादविरतिप्रतिपत्तिमात्रमुक्तम् यथाश्रुतश्च स्थाधात्वर्थः कथ्यत एवाश्रयविविक्षा नहि किंचिदनुपपन्नम् । एव हि मनुष्याणां विवरणेन साधारणोपदेशेन च देवेषु निपुणनाममगोऽपि न जानाति । सूत्रं चेदम् - 'से नूणं भंते संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिते असंजयअविरयअप्पडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अधम्मे ठिते संजयासंजए धम्माधम्मे ठिते हंता गोयमा से जाव । एयंसि णं धम्मंसि वा अधम्मंसि वा धम्माधम्मंसि वा चकिया केइ आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा नो इणट्ठे समट्ठे से केण अट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ जाव धम्माधम्मे ठिए गोयमा संजयविरय जाव धम्मे ठिए धम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ असंजय जाव पावकम्मे अधम्मे ठिते अधम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए धम्माधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ से तेणट्ठेणं जाव ठिएत्ति' ॥ ५ ॥ एवं - 'नेरइयाणं पुच्छा गोयमा नेरइया बाला नो पंडिया नो बालपंडिया एवं जाव चउरिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया बाला नो पंडिया बालपंडिया वि मणुस्सा जहा जीवा वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया' इत्येतत्सूत्रमपि व्याख्यातम् । पूर्वसूत्रादस्यार्थतोऽभेदात् व्यवहारमात्रे च परस्परम् । तथा च सूत्र-प्रयुक्तानां संयतादीनामविशेषाणां च पण्डितादीनां यद्यपि शब्दत एव भेदो नाप्यर्थतस्तथापि

गंरत सम्यक्त्वस्य क्रियासव्यपेक्ष पक्तित्वसम्यक्त्वपदंशस्तु साधविशायाम इति । अथ च सतक्रियापेक्षया सम्यग्दृशा
स्यात् सा न भवति सम्यग्ज्ञानाद्यन्यतः सर्वं साक्षत्वमिति पर्यालोचनीयम् ॥ ५ ॥ यदि च बालादिशब्दश्रवणमात्रेण तास
गंथानां आगमनात् तत्र व्यामोहस्तदा "जे अ बुद्धा महाभागा वीरा सम्मत्तदंसिणो । सुद्धं तेसि परक्कंतं अफलं होइ स-
व्वसो ॥ १ ॥" इति सीयाध्ययनोक्तगाथाया सम्यक्त्वस्याफलत्वश्रवणेन तत्र सुतरां एव व्यामोहः स्यात् । तात्पर्यपर्या-
लोचनायां तु न कश्चिन्नुपपत्तिरिति नावनीय गुरुकुलवासिना ॥ ६ ॥ एतेन नारकातिदर्शनं तादृशा एव देवा इति
आगमप्रतिपादितत्वम् । नंदंगदनस्यापि सूत्र बहुशो दर्शनात् । तयोर्भगवत्यां तृतीयशतके तुर्योद्देशके—"जीवेणं भंते
जे भविए नरएसु उववज्जित्तए से णं भंते किंलेसेसु उववज्जति गोयमा जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु
उववज्जति । तं० कण्हलेसेसु वा नीललेसेसु वा काउलेसेसु वा । एवं जस्स जा लेसा सा तस्स भाणियव्वा जाव जी
वेणं भंते जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए पुच्छा गोयमा जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जति तं०
तेउलेसेसु वा । जीवे णं भंते जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते किंलेसेसु उववज्जइ जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता
कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ तं० तेउलेसेसु वा पम्हलेसेसु वा सुक्कलेसेसु वेति" । अथात्र सामान्योक्तावपि मिथ्यादृ
ष्टिसम्यग्दृष्टिर्विशेषाश्रयणीयाः इति चतुर्दशपूर्वधरस्याप्यवधिर्ज्ञानवतोऽपि किमित्ययं नान्वेषणीय इति मध्यस्थदृशा विचारणीयम् ॥ ७ ॥
एवं भगवत्याद्युक्तवचनाद् "अन्निए णं भंते जीवाणं सक्कारेति वा सम्माणेति वा किंतिकम्मेति वा अब्भुट्ठाणेति वा
अंजलिपग्गहेति वा आसणाभिग्गहेति वा आसणाणुप्पदाणेति वा एतस्स पच्चुग्गच्छणता आगच्छंतस्स पज्जुवासणता गच्छंतस्स

पमिसंगाहणता णो इणठे समठे । अत्थिण जते असुरकुमाराण सक्कारेति जाव पमिससाहणता ५ हता अत्थि एव जाव थणियकुमाराण" इत्यत्राभ्युत्थानादिकं नैरयिकाणा निषिद्ध देवाना चोक्त तच्च साध्वादिगोचरं तपोविशेष एव नविष्यति शुश्रूषाविनयरूपत्वेन तस्य पचविंशतितमशतकेऽष्टमोद्देशे प्रतिपादनादित्ययमपि व्यवहारविनयक्रियारूपो विशेष सम्यग्दृष्टिदेवाना कुतो मनसि जायते ॥ ७ ॥ अन्यान्यपि सम्यग्दृशा देवाना सम्यक्त्वधर्मोद्द्योतकानि वहून्यक्षराणि दृश्यते । तथोक्त सनत्कुमारेन्द्रमाश्रित्य तृतीयशतके प्रथमोद्देशके–"सणकुमारेण जते देविंदे देवराया कि जवसिद्धिए अनवसिद्धिए सम्मादिठी मिच्छादिठी परित्तससारए अणतससारए सुलजवोहिए डुल्लजवोहिए आराहए विराहए चरिमे अचरिमे गोयमा सणकुमारेणं देविंदे देवराया जवसिद्धिए एव सम० परि० सुलज० आरा० चरि० पसत्थं णेयवं । से केणठेण जते गोयमा सणकुमारेण देविंदे वहूण समणाणं वहूण समणीण वहूण सावगाणं वहूण साविगाण हियकामए सुहकामए पसत्थकामए आणुकंपिए णिस्सेयसिए हियसुहणिस्सेयसकामए सेतेणठेण गोयमा सणकुमारेण जवसिद्धिए जाव चरिमए" अत्र हेतुप्रश्नोत्तराभ्या देवजवस्य साधुवैयावृत्त्यादिक्रिययाऽपि साफल्य दर्शितम् । न च सम्यग्दर्शनादौ स्वत एव सिद्धेस्तदनुपयोगः शङ्कनीय, असतो गुणस्योत्पादनाय सतश्च स्थैर्याधानाय क्रियाव्यापारोपयोगस्य तत्र२समतत्वात् अन्यथा गुणस्थाने सिद्धयसिद्धिभ्या वाह्यक्रियाविलोपप्रसंगादिति दिक् ॥ ए ॥ तथा शक्रेन्द्रमाश्रित्य षोमशशते द्वितीयोद्देशकेऽभिहितम् "सक्केण जते देविंदे देवराया कि सम्मावाई मिछावाई गोयमा सम्मावादी नो मिछावादी । सक्केण जते देविंदे देवराया कि सच्चं जास जासति, मोस जास जासति, सच्चामोस जास जासति, असच्चामोस जास जासइ । गोयमा सच्चपि जास जा

मह जाव अगग्गामोमपि जासं जासइगमेकणं भंते देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासइ अणवज्जं भासं भासइ गोयमा सावज्जंपि भासं भासइ अणवज्जंपि भासं भासइ, जाव से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ सावज्जंपि जाव अणवज्जंपि भासं भासइ। गोयमा जाहेणं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जुहित्ताणं भासं भासइ ताहेणं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ, जाहेणं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निज्जुहित्ताणं भासं भासति ताहेणं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासइ, से तेणट्ठेणं जाव० भासइ। सक्के णं भंते देविंदे देवराया किं भवसिद्धिए अभवसिद्धिए सम्मदिट्ठिए मिच्छादिट्ठिए एवं जहा मोउद्देसए सणंकुमारो जाव णो अचरिमेत्ति" अत्र शक्रस्य प्रमादादिना भाषाचतुष्टयभाषित्वसम्भवेऽपि सम्यग्वादीति तथिदिना स्वरूपतः सम्यग्वादित्वमुक्तम् सुहुमकायं अणुनिरोधं या सजयतीति बोध्यम् ॥ १० ॥ "अणिज्जुहित्ताणं" इत्यत्र सूक्ष्मकायं हस्तादिकं वस्त्रं वाऽदत्त्वेत्यर्थः अन्यथाकृतमुखत्वेन भाषमाणतया जीवसंरक्षणतोऽनवद्यभाषाभाषित्वमुक्तम्। एतच्च धर्मस्थानकं निर्गुणमगारं भवतया नत्वेव-"कतिविहेणं भंते उग्गहे पण्णत्ते सक्का पंचविहे पण्णत्ते तंजहा देविंदोग्गहे १ रायाव गहे २ गाहावइउग्गहे ३ सागारिउग्गहे ४ साहम्मियउग्गहे ५ जे इमे भंते अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एएसिणं अहं उग्गहं अणुजाणामि' इत्यनेन शक्रस्यावग्रहदानत्वमुक्तम् स च साधुना वसतिदानरूपो महानेव धर्म इति ॥११॥ तथा स्थानाङ्ग पञ्चमोद्देशके-"पभूणं भंते चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए णो इणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ णो पभू

चमरे असुर० चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए अज्जो चमरस्सण असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो चमरचचाए राय हाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ सण्णिखित्ताओ जाओण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ नम सणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ समाणणिज्जाओ कल्लाण मंगल देवय चेइय पज्जुवासणिज्जाओ भवंति से तेणट्ठेण अज्जो एव वुच्चइ णो पभू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचचाए जाव विहरित्तए" इत्यादिसूत्रकदम्बकेन चमरेन्द्रस्य तद्-तिदेवीप्रभृतीनामीशानेन्द्रपर्यन्ताना तल्लोकपालाना च भगवदस्थ्याशातनापरिहार उक्त । स च भगवद्विनयरूपधर्म एव पर्यवस्यतीति बोध्यम् ॥ १२ ॥ तथोत्तराध्ययनेषु हरिकेशीये-"पुव्विं च इण्हिं च अणागय च मणप्पओसो न मे अत्थि कोई । जक्खा हु वेयावडियं करेंति तम्हा हु एए णिहया कुमारा" इत्यत्र महर्षिणोपसर्गकर्तृशिक्षादातृयक्षस्य वैयावृत्त्यगुण श्लाघित स च तपोविशेष एव । अथ हिंसारूपेऽस्मिन् यक्षव्यापारे कथ वैयावृत्त्यकृत्योक्तिरिति चेदेतत्त्वया यक्षस्य समीप एव गत्वा प्रष्टव्यम् अन्यनानाभ्यासात्परिणामप्राधान्यवादिना तु न कश्चिदत्र शङ्कालेशोऽपि ॥ १३ ॥ किंच सम्यक्त्व प्रथम संवरभेद इति सम्यग्दृष्टित्वेनैव देवानामवर्जनीय धर्मित्वम् । तदुक्तं स्थानाङ्गे-"पंच आसवदारा पन्नत्ता तजहा मिच्छत्त, अविरई, पमाओ, कसाया, जोगा । पंच संवरदारा पण्णत्ता तंजहा-सम्मत्त, विरई, अपमाओ, अकसायत्त, अजो गत्तम्" इति । इतरथा मिथ्यादर्शनशल्यविरमणेन सम्यग्दृष्टिमात्रस्य विरतत्त्व प्रसक्तमिति चतुर्थगुणस्थानकोच्छेदो न एकाश्रव पदयापि त्रयोदशगुणस्थानेऽनाश्रवत्वव्यपदेशवदेकसंवरसत्तया चतुर्थगुणस्थानेऽविरतत्वव्यपदेशस्याविरुद्धत्वात् फल तु

हनुमानादीन ? पातिविधयमिति श्रद्दधन् ॥ १४ ॥ इयमत्र धमकथागायप्रकरणकं सूर्याभदेवस्य देवाधिदेवप्रतिमार्च
नविधिविनाविधानम्युपगतित श्रीरायपसेणीयसूत्रोक्त मगभुत । तथा च तत्र -तएण तस्स सूरियाभस्स देवस्स सा
मानियपरिसोववन्नगा देवा पोत्थयरयण उवणामति । तएण से सूरियाभे देवे पोत्थयरयण गिण्हइ पोत्थयरयण गिण्हित्ता
पोत्थयरयण विघाडइ पोत्थयरयण वाएइ पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिय ववसाय गिण्हति पोत्थयरयण पडिनिक्खिवति
सिहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ ववसायसभाओ पुरिच्छिमिल्लेण दारेण निग्गच्छति निग्गच्छित्ता जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छ
ति २ णंदा पुक्खरिणी पुरच्छिमिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहइ २ हत्थपाए पक्खा
लइ उवागच्छति सुरभि ताड गिण्हति २ गन्धतो पुक्खरणीतो पच्चोरुहति जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहार
त्थगमणाए । तएण ? सूरियाभे देवे चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे सूरि
याभ जाव देवीओ य अप्पेगतिया उप्पलहत्थगया जाव सयसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभ देव पिट्ठतो समणुगच्छति । तएण
तं सूरियाभ देवं बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य अप्पेगइया कलसहत्थगया जाव अप्पेगइया धूवकडुच्छुयहत्थगता
हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभं देवं पिट्ठो २ समणुगच्छति तएण सूरियाभे जाव देवहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए
जाव णातियरवेणं जेणेव सिद्धायतणे जेणेव उवागच्छति सिद्धायतण पुरच्छिमिल्लेण दारेण अणुपविसति २ जेणेव देवच्छंद
जाव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति जिणपडिमाणं आलोए पणाम करेति लोमहत्थग गिण्हति २ जिणप
डिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जति पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेति ण्हाणित्ता ...

अद्याइ नियंसेइ २ पुप्फारुहण मल्लारुहण चुन्नारुहण वत्थारुहण आभरणारुहण करेति करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेइ करित्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसाहिं तंदुलेहिं अट्ठमंगलए आलिहइ तंजहा सत्थिय जाव दप्पणं। तयणंतरं च णं चंदप्पभरयणवइरवेरुलियविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कधूपमघमघंतगंधुत्तमाणुविद्धं धूववट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियमयं कडुच्छुयं पग्गहिय पत्तेयं २ धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ। सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ २ वामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ २ ईसिं पच्चुन्नमइ २ करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी नमोत्थुणं जाव संपत्ताणं वंदइ णमंसइ ॥ १५ ॥ अयमेव पाठः प्रायो विजयदेववक्तव्यताया जीवाभिगमेऽपि ॥ १६ ॥ अमून्यक्षराणि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादावप्यूह्यानि । ननु जिनप्रतिमानामिव द्वारशाखाशालभञ्जिकादीनामप्यर्चनश्रवणं "धम्मियं ववसायं ववसइत्ति" धार्मिकं धर्मानुगतं व्यवसायं व्यवस्यति कर्तुमभिलपतीति भाव इति सामान्यत एव वृत्तौ व्याख्यानाच्च कुलधर्मानुगत एवायं व्यवसायो भविष्यति "दसविहे धम्मे पन्नत्ते गामधम्मे, नगरधम्मे, रज्जधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गण, संघ, सुय, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मेत्ति" सूत्रे दशधा धर्मपदार्थस्य विभक्तत्वादिति चेन्न द्वारशाखार्चनाज्जिनप्रतिमार्चने आलोकप्रणामशक्रस्तवाष्टोत्तरशतवृत्तस्तोत्रादीनां स्फुटतरस्य विशेषस्य सूत्र एवोपलभ्यमानत्वात्। धर्मव्यवसायस्य तत्र सम्यक्त्वानुगतस्यैव संभवात्। अत एवाभिनवोत्पन्नस्य सूर्याभस्य "किं मे पुव्विं सेयं किं मे पच्छा

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] मा [illegible] । पच्छा [illegible] ॥ १ ॥' इति मृगापुत्रीयाध्ययने पश्चादुद्देनामुक्ति [illegible] स्पष्टमभिधानात् । किं च "किं मे पुव्विं करणिज्ज किं मे पच्छा करणिज्जं" इत्यनेन तत्रत्ये कालत्रये तस्या [illegible] सूत्रादिति । तच्च निश्चित्य द्वयमिदित निश्चितासनानां सामानिकैरिति कथं न [illegible] प्रदर्शिते [illegible] पूर्वधाऽभणीदतया इति विचारणीयम् । जन्मान्तरार्जितशुभकर्मभोगस्योचितप्रवृ- [illegible] । एवं हि तप‌ःसंयमादिकष्टमपि जन्मान्तरार्जितकर्मभोगसाधनमात्रमिति [illegible] । विजयेनाभ्युक्तं यदादृष्टार्जनेन समाधानं पुनरत्र तुल्यम् । ऐहिकनिःश्रेयसहेतुमार्गमानतया [illegible] सममाधानं च 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ'मित्यादिना तपःसंयमादौ मंगलरूप- [illegible] ॥ १८ ॥ एतेन स्थितिकल्पमेव जिनप्रतिमार्चनं देवानां न तु धर्मरूपमिति धर्मस्थानादिमनपि- [illegible] । किं तर्हि धर्मार्थं [illegible] विचने धर्मस्थितावेव तस्यान्तर्भावस्य वाच्यत्वात् । धर्मं स्थितिपदं नास्तीति तु [illegible] साधुधर्मेऽपि स्थितिपदस्य स्पष्टमभिधानात् । "चविहा कप्पट्ठिई पन्नत्ता [illegible] १ [illegible] कप्पट्ठिइ २ णिव्विसमाणकप्पट्ठिइ ३ णिव्विट्ठकाइयकप्पट्ठिइ ४ जिणकप्प- [illegible] ६ ॥ १९ ॥ एतेन लोकस्य [illegible] नामपि लोकस्थितस्य धर्मरूपतार्थत- [illegible] । तथा च [illegible] एतदनुरूपनिष्टत एव प्रागेव प्रतिमया निरस्त इति ॥ २० ॥ [illegible] । यत्र च परलोकयाचनाद्येन निर्देश-

त्वामुष्मिकफलकत्वं दृश्यते । यथा स्कन्दकोद्देशके-"आलित्तेण भंते लोए पलित्तेणं भंते लोए जराए मरणेण य से जहा णामए केइ गाहावती अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवति अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमति एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति एवामेव देवाणुप्पिया एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थिज्जे वेसासिए सम्मते अणुमते बहुमते भंडकरंडगसमाणे मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं वाला मा णं दंसा मा णं मसया मा णं वातियपित्तियसिंभियसन्निवातियविविहा रोगातंका परीसहोवसग्गा फुसंतुत्तिकट्टु एस मे णित्थारिए समाणे परलोगस्स हियाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सती' त्यत्र गृहपतेर्जीर्ण गृहीतापक्रमणस्यैहिकमात्रफलकत्वम् स्कन्दकस्य च स्वात्मनिस्तारणस्यामुष्मिकफलकत्वं प्रसिद्धम् । एतेन च जिनप्रतिमार्चनादि सूर्याभादीनामैहिकमात्रफलकमेवेत्यपि निरस्तम् अन्यत्र दृष्टेन समानवदनीयकर्मणोऽदृष्टजनकस्य प्रेत्य फलजनकत्वस्यार्थसिद्धत्वात् । अन्यथा जगवंदनादिकमपि देवानां प्रेत्य हितावहं न स्यात्तस्य च तथात्वं पठ्यते सूत्रे । तथा च राजप्रश्नीये सूर्याभोक्ति -"तं महाफलं खलु तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं णामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए तं गच्छामिणं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि एयं मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइत्ति' ॥ २१ ॥ ननु वंदनपूजनादिफलस्थले देवानां पारंपर्यदर्शनादेवासौ भ्रम इति चेन्न वंदनाधिकारे पर्युपासनावदन

पुणाथा अपि प्रहणात् को लेवाधिकारिकृतस्य निहितकर्मए पक्षे विशेष । अधर्मिणा हि देवानामधर्मित्वेऽभ्युपगम्य-
माने तथापि तेषां विपरीतपक्षे वाच्ये धार्मिकमूर्धन्यैस्तेषा धर्मित्वमभ्युपगच्छद्भिश्च तुल्यजातीयतुजफलमिति । न च यद्-
वाधिकारे "भेदादिणाए" इत्येव सार्वत्रिक पाठो जगवत्यौपपातिकादौ-"एयणं इह जवे वा परजवे वा आणुगामियत्ताए
त्ताविस्मारूसि" पाठस्यापि दर्शनात् । तस्मादन्यत्र आत्मानामेव पक्षितास्त्वर्थतात्पर्यकरसिका इति मत्येयम् ॥ २२ ॥
अथ स्वरूपतो निरवद्यं जगवद्वन्दनं देवाना परलोकहितम् । अत एव सूर्याभादिनियोगिकदेवाना वदनादिमतिशा जगवता-
नुज्ञाता । तथा च सूत्रम्-अन्देणं जंते सूरियाजस्स देवस्स आजियोगिया देवाणुप्पिय वदामो णमसामो सकारेमो सम्मा-
णेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो देवानि ममणं जगवं महावीरे देवे एव वयासी पोराणमेयं देवा जीयमेयं देवा किच्चमेयं
देवा करणिज्जमेयं देवा आइण्णमेयं देवा अब्भणुण्णायमेयं देवा जं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा अरिहंते जगवंते वंदति णमसति वंदि-
त्ता ... साइं साइं णामगोयाइं साहिंति तं पोराणमेयं देवा जाव अब्भणुण्णायं देवाणं" इति सूर्याभवदनादिमतिशा-
... पाठ । पूर्वोक्तं तु स्वरूपतः सावद्यमिति न तद्देवाना परलोकहितत्त्वेनागतम् किं तु रागप्राप्तमेव । तथा
च सूर्याभस्य स्वस्य जवसिद्धिकत्वादिप्रश्ने पृष्ठ तदुत्तरे वाचावधूते जातहर्षेण त्रि कृत्वोऽपि नाटकानुज्ञाया वचने जगवता
मौनमेव स्थितम् । तथा च सूत्रम्-"अहण्णं जंते सूरियाभे जवसिद्धिए अजवसिद्धिए सम्मद्दिठ्ठी मिच्छादिठ्ठी परित्तससारे
अणंतससारे सुलभबोहिए दुलभबोहिए आराहए विराहए चरिमे अचरिमे सूरियाभाति समणे जगवं महावीरे सूरि-
याभं देवं एवं वयासी सूरियाभा तुमं जवसिद्धिए नो अजवसिद्धिए जाव चरिमे णो अचरिमे तएणं सूरियाभे देवे

समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए परमसोमणस्से समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति २ एवं वयासी तुब्भे णं भंते सव्वं जाणह सव्वं पासह सव्वं कालं जाणह सव्वे भावे पासह जाणंति णं देवाणुप्पिया मम पुव्विं वा पच्छा वा ममेयारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभागं लद्धं पत्तं अभिसमन्नागयं तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वगं गोयमादियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसित्तए तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं नो आढाति णो परियाणाति तुसिणीए संचिट्ठति तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवं महावीरं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी तुब्भे णं भंते सव्वं जाणह जाव उवदंसित्तएत्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदइ' इत्यादि इति प्रश्नम् भवसिद्धिकत्वादिना निश्चितयोग्यताके सूर्याभे नाटकरूपभक्त्युपायानुज्ञां याचमाने भगवतोऽनिषेधस्यैवानुमतित्व-परत्वात् "अनिषिद्धमनुमतमिति" न्यायात्। कथमन्यथा धर्मश्रवणमुपस्थिते प्रथमं सर्वविरतिमनुपदिश्य देशविरत्युपदेशे "गाहावइचोरगहणविमोक्खणयाए" इत्यादिसिद्धान्तसिद्धन्यायेन प्रमोक्षफलकारिणः स्थावरहिंसानुमतिरप्रतिषेधानुमतिरूपा हिंसा। एवमत्रापि योग्ये प्रष्टरि अप्रतिषेधानुमतिरवारितेति। तदिदमभिप्रेत्योक्तं श्रीहरिभद्रसूरिभिः—"णियकारणाउवि नरदेव न निवारियं तेण। जह तेसिंचिय कामा सल्लमरिसाइणा तेण ॥ १ ॥ ता एस अणुमइ च्चिय अप्पडिसेहाउ तंतजुत्तीए। इय सेसाणवि इत्थं अणुमोअणमाइ अविरुद्धं ॥ २ ॥ अयं चात्र प्रयोगः नाटकादि व्यापारं भगवतोऽनुमतं योग्यं प्रत्यनिषिद्धत्वात् यद्भगवदनुमतं न भवति तद्योग्यं प्रति प्रतिषिद्धं भवति यथा कामनो

गादिवमिति व्यतिरेकी यचेन य प्रति न निषिध्यते तत्त प्रति तदनुमत यथाऽक्रमज्ञस्य प्रथमदेशविरत्युपदेशो स्थावरहिंसा दिवमिति सामान्यतो व्याप्त्यावन्वयी वा ॥ २३ ॥ ननु न वयमनुमानरसिका मौनकारणात्त्वावात् सूत्रे साक्षात्फलादर्शनाच्च दव्यस्तरे विप्रतिपद्यामह इति चेच्छृणु मौनकारण तावन्नाटकोपक्रमस्य वारणे सूर्याभे जगवद्भक्तिव्यस प्रवर्तने च गौतमादीनां स्वाध्यायोपघात इति तुल्यायव्ययत्वमेवेति वृत्तिकृदभिप्राय । वस्तुतस्तु स्वरूपत सावद्येऽनुवधतश्च निरवद्ये जगवतो नाचारवनाय परार्थं पर्यनुयोगस्य विषयेऽन्यत्रापि स्वतन्त्रमाया अपर्यनुयोज्यत्वोक्ते । अत एव चारित्रग्रहणविधावपि शिष्यं प्रति जगवत क्वचिदिच्छानुलोमा जाषा क्वचिदाज्ञापनीति वैचित्र्य दृश्यते । इच्छानुलोमाजेदभाय चैतन्मौनमिति विचारणीयमजिनिवेशं विहाय चेतसि । यच्चोक्तम्–"फल ऽव्यस्तरस्य न दृश्यते सूत्र" इति तत्र न ह्ययं स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति न्यायः "देवाणुप्पियाए नत्तिपुव्वगं" इत्यादिना जगवत प्रति जक्तिरूपत्वेन गौतमादीन् प्रति च गौरवात् प्रीतिहेतुक्रिया आराधनेति लक्षणादाराधनाख्यशुश्रूषारूपत्वेन सिद्धस्य सूर्याजनाटकस्योत्तराध्ययनेषु सम्यक्त्वपराक्रमाध्ययने चतुर्थद्वारोत्तर एव साक्षात्फलदर्शनात् । तथा च सूत्रम्–"गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाएणं जंते जीवे किं जणयइ गोयमा गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए विणयपडिवत्तिं जणइ विणयपडिवत्तिएणं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवदुग्गईओ निरुंभइ वण्णसंजलणजत्तिबहुमाणयाए मणुस्सदेवसुगईओ निबंधइ सिद्धिसुगइं च विसोहेइ पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता जवइत्ति" । अत्र मनुष्यदेवसद्गतीफलानि इत्यनेन सम्यग्दृष्टेरिवापुनर्बंधकस्य मिथ्यादृष्टेरपि जगवद्भक्ति सफलेति दर्शितम् । न हि सम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो वैमा

निरवगतिं विराया गतिं यथाति देयहृतजगिविसयो पायं निर्दिनः दयस्य सम्यग्दृशोऽपि नगरजाणा मनुष्यगतेर्व
र्धपादिति ध्ययम् ॥ २४ ॥ एतत "दाणवयाऽ ने पाणा हम्मंति नासयारा । तेसिं सारक्खणाए तम्हा नत्थित्ति नो वए
॥ १ ॥ जेसिं त उववर्ण्णंति अन्नं पाणं तहाविहं । तेसि लाभंतरायत्ति तम्हा नत्थित्ति नो वए ॥ २ ॥ ने य दाणं पसं
सति वहमिच्छंति पाणिणं । जेय णं पडिसेहंति वित्तिच्छेयं करंति ते ॥ ३ ॥' इत्यादिसूत्रकृताङ्गवाक्यान्योगदानानुप
देश इव निषेधानुपदेशोऽपि साधोः पुण्यपापान्यतरदर्शनदोषनिरासानुचित इति निरस्तम् । अथ दानोपदेशस्यायोग्यान्य
तीर्थिकप्रतिबोधितसामान्यधर्मविषयतया निषिद्धत्वेऽपि योग्ये प्रवृत्ति जिनागमनिर्भोगप्रत्यासत्तेर्भावात् अन्यथा प्रभु
संदेहमसुन्मज्ञानप्रसङ्गात् । प्रवृत्ते च योग्यवधे जगतो मौनमनुमतिमेव व्यनक्ति । न तयोस्तस्य समाप्तेर्विहारवधे मौन
तुल्यमेतदिति । दानानुपदेशोऽप्यवस्थाविशेषविषयो विशिष्टगुणस्थानावाप्तियोग्यताकारणेन योगवदादिकदानस्यापि शास्त्रा
न्त्यादित्यप्युपमाचार्यैरष्टवादी । किं च दानादौ पापपुण्यान्यतरानुपदेशः साधोः किं तत्रानायाभ्यनायात् उत तन्न्य
तरस्याज्ञानात् आहोस्वित् सङ्कीर्णस्याज्ञानात् उताहोऽन्यतरोपदेशे कस्यचिद्गुणविघ्नसमुत्पादनाद् । नाद्यो निर्जी
जस्य स्वजायस्यानाश्रयणीयत्वात् । न द्वितीयः पापपुण्यान्यतरप्रज्ञापनकस्य उत्तरकर्मणोऽप्रसिद्धेः । न तृतीयो ज्ञा
नरूपाणां योगानामध्यवसायानां च शुभाशुभव्यतिरिक्तृतीयराश्यभ्युपगमनाभावात् संकीर्णकर्मबन्धस्याप्यसिद्धेः ।
योऽपि व्यवहारतोऽविधिना दानादिरूपः शुभाशुभयोग इष्यते सोऽपि परिणामप्राधान्यान्निश्चयतः उत्कटैककोटिनिक्षेपेणैव
पर्यवसन्न सङ्कीर्णकर्मबन्धायालम् । द्रव्यकोटेरनर्थकत्वस्य भावकोटेः प्रावल्यस्य च सर्वत्र संमतत्वात् । अन्यथा नद्युत्तारादौ

[illegible] यतापि [illegible] विश्वनिमित्तमिश्रकर्मबन्धप्रसंगात् । तस्माद्बन्धन एव स्थमेव कर्म । संकमतस्तु मिश्र-
[illegible] संगतिरपि प्रतिषिद्ध [illegible] न मलीमसबन्धरूपो न्यायात् । चतुर्थे तु पक्षे विशेषधर्मविप-
[illegible] विपक्षदोषापादननैव निरवद्यानुरक्ते कारणमागममिति योग्ये मार्गविशेषे च विविच्य
[illegible] कर्मकरादीनां निषेधोऽपि सूत्रेऽनुपपन्नः स्यात् । तथापि धारणाधारणयोर्वृत्तिविशेषमाणप्रधानु
[illegible] [illegible] । तस्माद्योग्यतयाऽनिषेधानुमतं जिनपूजादि नागमतेति व्यवस्थितम्
॥ २९ ॥ अथ [illegible] किंचान्यत् [illegible] विधिवज्जिनपूजाधारंभ सूत्रे अनिषेधोक्त्या न परिगणित । इदम
[illegible] [illegible] । तथोक्तं द्वितीयाङ्गे द्वितीयश्रुतस्कंधे द्वितीयाध्ययने—"पढमे
[illegible] [illegible] आयहेउं वा णायहेउं वा मित्तहेउं वा णागहेउं वा भूय
[illegible] [illegible] णिसिरइ अन्नेहिं वा णिसिरावेइ अन्नंपि णिसिरंतं सम
[illegible] [illegible] पढमे दण्डसमादाणे अहादण्डेत्ति आहिए" अत्र यदि जिनपूजा-
[illegible] [illegible] "णागहेउं" इत्यादिवत् "जिणपडिमाहेउं" इत्यप्यवक्ष्यत । तस्मादर्थदण्डक्रि-
[illegible] [illegible] नाऽर्थक्रियाकरणमिति न निषिद्धोऽयम् ॥ २६ ॥ एतेन जिनपूजादौ माया
[illegible] [illegible] पदं इति मिथ्यामतमपि परास्तम् । मिथ्यामाया साधूनामनन्तमायाया उप
[illegible] । [illegible] [illegible]" मतीचेन्मिथ्यावचनमुग्धं न स्यादत एव श्रुतप्रमाणतापि कृती

यत्नेदपरित्यागेन त्रिविधेय दशवैकालिकनिर्युक्त्युक्त। इतरं मिश्रस्य सूत्रकृतोक्त उचितत्वात् चेदस्तिथा एव। तत्र चिंताया पदद्वय एव पदत्रयस्यातर्जाभावात्। तथा च सूत्रम्-"अविरतिं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरतिं पडुच्च पंडिए आहिज्जइ विरताविरतिं पडुच्च बालपंडिए आहिज्जइ तत्थणं जा सा सव्वतो अविरती एस ठाणे आरंभठाणे अणारिए जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू तत्थणं जा सा सव्वतो विरती एस ठाणे अणारंभठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तत्थणं जा सा सव्वतो विरताविरती एस ठाणे आरंभाणारंभठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू एवमेव समणुगम्ममाणा समोगाहिज्जमाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअरंति तंजहा धम्मे चेव अधम्मे चेव उवसंते चेव अणुवसंते चेव तत्थणं जे से पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिज्जति तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवट्ठाइं पावाउयसयाइं भवंतीति अक्खायमित्यादि"। अत्र छन्दतीर्थिकाणां एवाधर्मरूपो जैनानां तु अविरतसम्यग्दृष्ट्यादि वीतरागचारित्रपर्यवसानो धर्मरूप एव वस्तुतो विरतिरूपधर्माप्रदानेऽप्यर्थतः सम्यक्त्वादिधर्मस्याप्यपरित्यागात् अन्यथा चतुर्थगुणस्थाने कस्मिन् पक्षेऽन्तर्भावनीयम्। ये तु देवानांप्रिया देशविरतेर्मिश्रपक्षतयैव कथञ्चिदेकान्तधर्मता न श्रद्दधते ते सूत्रपाशव क्रियाभेदनतः तापसादीनामपि मार्गं मिश्रपक्षतयोर्ध्वं जात्यन्तरमिति न श्रद्दधीरन्। तथा च सूत्रम्-"अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एवमाहिज्जति जे इमे भवंति आरण्णिया आवसहिया गामणिया कण्हुइ रहस्सिया जाव ततो विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति एस ठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू एस खलु तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एवमाहिएत्ति" तस्मात्परेषामधर्म एव विवादास्पदता मिश्रस्योऽपि धर्मे

पर्यंति ध्येयम् । अनेकांतात्मकारेणैव व्यवच्छेदनीय इति तत्त्वम् । ॥ २१ ॥ आस्तामन्यत् पर जिनपूजादिद्रव्यस्तवस्य धर्मकर्मत्वेऽन्युपगम्यमाने हिंसाया दूषणत्व क्व गतमिति चेत् कया विधया तस्या दूषणत्व-अविरतिविधया, प्रमादविधया, कषायविधया, योगविधया वा । नाद्योऽसयतानामविरति प्रतीत्यात्माधारंजकत्वस्य सदातनत्वेन तत्तद्धर्मक्रियाकालीनानुषगिकहिंसाया अविरतिविधया विशेष्यानानुप्रवेशात् । न द्वितीयो जक्तियतनानुबधशुद्धौ प्रवृत्तस्यापि धर्मकर्मणि प्रमादकषायानुत्पत्ते । अन्यथा प्रमत्तसयताना शुभाशुभयोगभेदेन आत्माधनारंभकत्वतदनारंभकत्वभेदभणनानुपपत्ते । अयमतिदेशो हि सयतासयतादावपि द्रष्टव्य पृथक् तत्र मिश्रयोगकार्यानुपदेशात् । अत एव तेजोलेश्यादिदण्डकत्रयेऽपि सयता सयतप्रमत्ताप्रमत्तभेदभिन्नान्येव सूत्राणि भगवत्यामतिदिष्टानीति दिक् । नापि तृतीयचतुर्थौ भक्तियतनाभ्यामेव कापायिकाणामध्यवसायाना योगाना च शुभानामेव जननात् । स्वरूपतो दोषत्वासंभवे "आसवा ते परिस्सवा" इत्यादिसूत्रन्यायेनैकांतिकत्वात् । तस्माद्विधिभक्तिशुद्धे धर्मकर्मण्यारंभो न दोषावह इति स्थितम् । यत्तु-"अकसिणपवत्तगाण विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । ससारपयणुकरणे दव्वथए कूवदिट्ठंतो ॥ १ ॥" इत्यनेनावश्यकनिर्युक्तौ महानिशीथे च द्रव्यस्तवे कूपखनन दृष्टांतीकृतम् । तत्कूपखनन यथा स्वपरोपकाराय भवत्येव स्नानपूजादिकं करणानुमोदनद्वारेण स्वपरयो पुण्यकारण स्यादित्येवपरतया व्याख्येयम् । ये तु प्राचो नैतद्व्याख्यानमागमानुपाति धर्मार्थप्रवृत्तावपि आरंभजनितस्य पापस्येष्टत्वात् । कथमन्यथा भगवत्यामुक्तम्-"तहारूव समण वा माहण वा पडिहयपच्चक्खायपावकम्म अफासुएण अणेसणिज्जेण असण ४ पडिलाभेमाणे भते किं कज्जइ गोयमा अप्पे पावकम्मे कज्जइ बहुतरिया से णिज्जरा कज्जइत्ति" तथा

ग्लानमतिचरणानंतर पचकल्याणकप्रायश्चित्तप्रतिपत्तिरपि कथ स्यात् । तस्माद्यथा कूपखनन श्रमतृष्णाकर्दमोपलेपादिदो षदुष्टमपि जलोत्पत्त्यनंतरोक्तदोषानपोह्य स्वोपकाराय परोपकाराय च जवति । एव स्नानादिकमप्यारंजदोषमपोह्य शुना ध्यवसायोत्पादनेन विशिष्टानुजकर्मनिर्जरणपुण्यबंधकारणं जवत्येव व्याख्येयमिति वदति तेषामाशय त एव जानति । पूर्वार्य स्नानादिकरणकालेऽपि निर्मलजलस्पर्शशुजाध्यवसायस्य विद्यमानत्वेन कर्दमलेपादिरूपपापाजावादित्यमुदाहरण वैषम्यापातात् । न चैदेव कथ क्रियमाण कृतमिति जगवद्वचनयोपमर्द । कथ वा तन्मूलक्रमापरिणतस्य गुरुसमीप प्रतिष्ठा गमनस्यापि तत्र कृतकाप्रस्याराधकत्ववचन जगवत्यादावुपपद्यते । यच्चाप्रासुकदानेऽल्पतरपापार्जनमुक्त तद्गुणकदृष्टांतेन दायकस्याव्युत्पन्नत्वात् द्रव्यदेवादिकारणविघ्नजिज्ञासाया तदादरस्य व्युत्पन्नाजिज्ञासादरजनितनिर्जरापेक्षया प्रकृष्टनिर्जराप ेक्ष्या वाऽन्यथा बहुतरनिर्जरानांतरीयकपुण्यबंधस्येऽल्पस्यापि पापस्य बंधहेतोर्वक्तुमशक्यत्वात् सक्रमापेक्षया तु यथोक्त । यद्वाऽप्रासुकदाने आरंजजनिताल्पतरोपार्जनमावश्यकम् । तदाह-"अहागमाइं जुजति अन्नमन्ने सकम्मुणा । उवलित्ते वियाणिज्जाणुवलित्तेत्ति वा पुणो ॥ १ ॥ एतेहिं दोहिं गणेहिं ववहारो न विज्जइ । एतेहिं दोहिं गणेहिं अणायार तु जाणए ॥ २ ॥" इति सूत्रकृतोक्तोऽप्रासुकदानजोऽल्पजेपानुपपत्त्यानैकांत कथकार सगमनीय । अत एवात्रापि किंचि दारंजगुण्य एव हि स्वस्यानुचितनिर्जरापकर्षा न तु सर्वथागुण्ये अनुबंधशुद्धौ च स्वल्पहिंसामात्रेण तस्या स्वकार्ये उपा दानतारतम्यपारतन्त्र्याच्च-"जा जयमाणस्स जवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स सा होइ णिज्जरफला अज्जत्थविसोहिजुत्तस्से" त्यत्राप्रमादपदमलयाया हिंसाया एव निर्जराहेतुत्व व्याख्यात मलयगिरिचरणै । यदपि ग्लानप्रतिचरणे पचकल्याणकप्रा

[illegible] अपि [illegible] सर्वदाऽनुष्ठेयत्वादनिषेधितोऽपि निदर्शित
[illegible] । [illegible] — "सीदव्वो उदगस्स कप्पोगी कालमि णिद्दोसे । एवेसि
[illegible]" ॥ १ ॥ तथा [illegible] पच्चग्गी गच्छयाइ अथिरे ठ । कप्पोगी नं णिएयइ
[illegible] ॥ २ ॥ अत्र [illegible] विशेषणमुक्तम् । न तु तेनाप-
[illegible] । अत्र कश्चित् "आयरिय पडिक्कनो गुरुो च गिलाण विउग" इत्युक्ते
[illegible] मा [illegible] वैयावृत्त्ये पराव्य
[illegible] उक्त से किंइ [illegible] इयम् । नन्वपवादेऽश्र-
[illegible] निधानमनुसृतमिति चेन्न "न हिंस्यात् सर्वाणि
[illegible] "सव्वे पाणा सव्वे भूया" इत्यादि ओघोत्सर्गनिषेधे
[illegible] दोषाभावात् । अन्यथा ओघानन्तादीनामपि स्वरूपतो दुष्टत्वा
[illegible] आचार्यादिवैयावृत्त्याधिकारे तदेषासद्भावात् । किं-
[illegible] । [illegible] निर्ज्ञातानामनुमतिरपि
[illegible] । एतेन [illegible] निरस्तं । महाव्रतिव इव नाशनुच्या पुण्यानापि
[illegible] । इत्थं च [illegible]

देवानामवर्णवाद यदेतो देवानामिया दुर्लभबोधिका भवेति श्रद्धेयम् । तदुक्तं स्थानांगे पंचमस्थानके—"पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पकरिंति तंजहा अरिहंताणं अवण्णं वयमाणे अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वयमाणे। चाउवण्णस्स समणसंघस्स अवण्णं वयमाणे। विवक्कतवबंभचेराणं देवाणं अवण्णं वयमाणेत्ति" अत्र पंचोपविशेषणेन सम्यग्दृष्टयो देवा उपात्तास्तेन पशुजननेतृदेवानामवर्णवादोऽनर्थहेतुत्वान्नोचित इत्यगात्। पंचोपविशेषणेनार्हदादिमध्यपाठेन च परमार्थहितदातरि तथा वैगुण्योत्पादनरूपावर्णवादस्यैव दुर्लभबोधिहेतुताया स्पष्टत्वात्। अत एव तद्वर्णवादस्य सुलभबोधिहेतुत्वमुक्तम्। पंचहिं ठाणेहिं सुलहबोहियत्ताए कम्मं करेइ अरिहंताणं वण्णं वयमाणे जाव विविक्कतवबंभचेराणं देवाणं वण्णं वयमाणेत्ति" ॥ ॥ ॥ ॥

॥ प्रकामविह्वलानर्नन्तुरदार्हदर्हुजैनैर्गत् किमु न वचित कृतकधार्मिकख्यातित ।

अनुमद्विधायत प्रगुणचेतसां सादरैर्यशोविजयपार्थकरयमकारि तत्त्वश्रमः ॥ १ ॥

प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् । सत्युणा पंचविंशत्या श्लोकानां नु चतु शती ॥ २ ॥

॥ इति न्यायविशारदोपाध्यायश्रीमद्यशोविजयकृतोऽयं
देवधर्मपरीक्षानाम ग्रंथः संपूर्णं ॥ श्रीरस्तु ॥

॥ श्रीवीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ न्यायविशारदोपाध्यायश्रीमद्यशोविजयप्रणीताध्यात्मोपनिषत् ॥

॥ ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा वीतरागं स्वयम्भुवम् ॥ अध्यात्मोपनिषन्नामा ग्रन्थोऽस्माभिर्विधीयते ॥ १ ॥ आत्मानमधिकृत्य स्याद्यः पञ्चाचारचारिमा ॥ शब्दयोगार्थनिपुणास्तदध्यात्मं प्रचक्षते ॥ २ ॥ रूढ्यर्थनिपुणास्त्वाहुश्चित्तं मैत्र्यादिवासितम् ॥ अध्यात्मं निर्मलं बाह्यव्यवहारोपबृंहितम् ॥ ३ ॥ एवम्भूतनये ज्ञेयः प्रथमोऽर्थोऽत्र कोविदैः ॥ यथायथं द्वितीयोऽर्थो व्यवहारर्जुसूत्रयोः ॥ ४ ॥ गमनयपृतत्रातियं स्याद्विश्रातिगमुग ॥ स्याद्वादविशदालोकः स एवाध्यात्मजागरम् ॥ ५ ॥ मनोवत्सो युक्तिगवीं मध्यस्थस्यानुधावति ॥ तामाकर्षति पुच्छेन तुच्छाग्रहमनः कपिः ॥ ६ ॥ अनर्थायैव नार्थाय जातिप्रायाश्च युक्तयः ॥ हस्ती हन्तीति वचने प्राप्ताप्राप्तविकल्पवत् ॥ ७ ॥ ज्ञायेरन् हेतुवादेन पदार्था यद्यतीन्द्रियाः ॥ कालेनैतावता प्राज्ञैः कृतः स्यात्तेषु निश्चयः ॥ ८ ॥ आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम् ॥ अतीन्द्रियाणामर्थानां सद्भावप्रतिपत्तये ॥ ९ ॥ अतश्च धर्मज्ञानं नान्यथा सर्वधर्मजुषः ॥ कृतसर्वाङ्गमं शास्त्रज्ञानं तद्व्यवहारकृत् ॥ १० ॥ शुद्धोञ्छाद्यपि शास्त्राज्ञानिरपेक्षस्य नो हितम् ॥ भौतहन्तुर्यथा तस्य पदस्पर्शनिषेधनम् ॥ ११ ॥ शासनात्त्राणशक्तेश्च बुधैः शास्त्रं निरुच्यते ॥ वचनं वीतरागस्य तच्च नान्यस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥ वीतरागोऽनृतं नैव ब्रूयात्तद्धेत्वभावतः ॥ यस्तद्वाक्येष्वनाश्वासस्तन्महामोहजृम्भितम् ॥ १३ ॥ शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद्वीतरागः पुरस्कृतः ॥ पुरस्कृते पुनस्तस्मिन्नियमात् सर्वसिद्धयः ॥ १४ ॥

[illegible] चित् [illegible] पुर्व पदम् ॥ [illegible] विज्ञानस्य परं ॥ १५ ॥ धर्माधर्मसुखैः सर्वे देयाश्चा
[illegible] ॥ [illegible] ॥ १६ ॥ परीक्ष्यं वचोवेदनार्थैः स्वर्णं यथा जना ॥ शास्त्रेऽपि
[illegible] परीक्ष्या तथा बुधा ॥ १७ ॥ विधयः प्रतिषेधाश्च न्यायो यत्र वर्णिता ॥ एकाधिकारा इष्यन्ते [illegible]
[illegible] ॥ १८ ॥ [illegible] यत्र [illegible] ॥ हिंसादीनां निषेधाश्च न्यायो मोक्षगोचराः ॥ १९ ॥
[illegible] ॥ [illegible] तत् [illegible] ॥ २० ॥ [illegible] च निषेधाना
[illegible] ॥ [illegible] तच्छुद्धिमत् ॥ २१ ॥ [illegible] गुणश्च गणितो मुनिः ॥ [illegible]
[illegible] ॥ २२ ॥ अन्यार्थं [illegible] यथान्यार्थमपोह्यते ॥ [illegible] तत्र शास्त्र
[illegible] ॥ २३ ॥ [illegible] हिंसादिविनिवारिणि ॥ [illegible] न [illegible] ॥ २४ ॥
[illegible] न [illegible] ॥ [illegible] कथं [illegible] ॥ २५ ॥ [illegible] शुद्धा
[illegible] ॥ [illegible] ॥ २६ ॥ [illegible] ॥
[illegible] ॥ २७ ॥ [illegible] परम् ॥ [illegible]
[illegible] ॥ २८ ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ २९ ॥
[illegible] ॥ [illegible] ॥ ३० ॥ [illegible]

१ [illegible]

प्रत्यार्थविनाशनः ॥ अविज्ञानतायामा पर्यायार्थप्रसङ्गात् ॥ ३१ ॥ द्वयोरेकत्वयुक्तानि यथा सिद्धं न गच्छति ॥ तथैं [illegible]नो न गच्छति ॥ ३२ ॥ [illegible] न मार्गे [illegible]गीया ॥ यथा वस्तुनि सर्वसाधुनिर्णया [illegible] ॥ ३३ ॥ [illegible] प्रमा ॥ तथा वस्तुनि सर्वसाधुनिर्णया [illegible] ॥ ३४ ॥ [illegible] परः ॥ [illegible] प्रत्यर्थे न [illegible] यत् ॥ ३५ ॥ [illegible] द्वयाद्यवच्छेदि- [illegible] ॥ विशेष [illegible] ॥ ३६ ॥ [illegible] न विशेषः [illegible] ॥ अन्या [illegible] ॥ ३७ ॥ [illegible] ॥ नित्यानित्यत्व[illegible] न विशे[illegible] ॥ ३८ ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ ३९ ॥ अन्या [illegible] ॥ [illegible] किं [illegible] ॥ ४० ॥ [illegible] ॥ ४१ ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ ४२ ॥ [illegible] न कश्चित् ॥ न हि प्रमाण[illegible] [illegible] ॥ ४३ ॥ [illegible] ॥ ४४ ॥ [illegible] ॥ [illegible] प्रतिज्ञितात् ॥ ४५ ॥ [illegible] ॥ [illegible] प्रतिज्ञितात् ॥ ४६ ॥ [illegible] ॥ योगा

१ हि

[illegible] प्रतिक्षिपेत् ॥ ४७ ॥ प्रत्यक्षमितिमात्रंशे मेयांशे तद्विलक्षणम् ॥ गुरुर्ज्ञानं वदन्नेकान्तानेकान्त
[illegible] ॥ ४८ ॥ [illegible] परं यदन्नु रसोचितम् ॥ [illegible] यानि मुरारिर्नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ४९ ॥
[illegible] ॥ गुणाणो मतमदान्ती नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ५० ॥ मुनाणा जिनजिज्ञास्याभियत्ने
[illegible] ॥ [illegible] यदा स्याद्वादे सार्वतान्त्रिकम् ॥ ५१ ॥ नित्यैकान्ते ममतिर्नापि घातकस्य न मृग्यते ॥ पूर्वो
[illegible] कुर्वति रागुणी ॥ ५२ ॥ तेन [illegible] पचधा सूत्र न्यात्मकम् ॥ तदेव तापशुद्धं स्यान्न तु कनयम
[illegible] ॥ ५३ ॥ [illegible] हिंसादि [illegible] ॥ मन मयोगतामादौ व्यापारा उपजनत ॥ ५४ ॥ बुद्धिलेपो-
[illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] धिकाल्येन यथमोऽपि हि गगनां ॥ ५५ ॥ अनित्यैकान्तपक्षेऽपि हिंसादि
[illegible] नाशोऽस्तु क ॥ ५६ ॥ आनन्तर्यं क्षणाना तु न हिंसादिनियामकम् ॥
[illegible] ॥ ५७ ॥ मनुमान [illegible] अनन्तर्यसमाधयकम् ॥ न हि तेनापि सदृशमध्ये भेदो
[illegible] ॥ ५८ ॥ [illegible] क्रियानिदा ॥ गमश्वर [illegible] अन्यत्र चर्चितम् ॥ ५९ ॥ नित्यानि-
[illegible] ॥ [illegible] हि माध्यस्थ्य गरिष्ठमुपपद्यते ॥ ६० ॥ यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनये-
[illegible] ॥ ६१ ॥ स्वनयाग्नु नयान्नस्य [illegible] किं नु प्रकटिता ॥ रागद्वेषा
[illegible] ॥ ६२ ॥ अथ [illegible] दूषितेऽपि च नर्पिते ॥ यथा [illegible] माध्यस्थ्य [illegible]
[illegible] ॥ ६३ ॥ [illegible] न तु शक्तिः ॥ अदनआर गुणाना न द्वेषः कर्णार नु ॥ ६४ ॥ त्रिविध

[illegible]

ज्ञानमाख्यातं श्रुतं चिन्ता च भावना ॥ आद्यं कोष्ठगधीतुल्यं वाक्यार्थविषयं मतम् ॥ ६५ ॥ महावाक्यार्थजं यत्तु सूक्ष्म
युक्तिशतान्वितम् ॥ तद्द्वितीयं जले तैलबिन्दुरीत्या प्रसृत्वरम् ॥ ६६ ॥ ऐदंपर्यगतं यच्च विध्यादौ यत्नवच्च यत् ॥ तृतीय
तदुक्तं जात्यरत्नविभानिभम् ॥ ६७ ॥ आद्ये ज्ञाने मनाक् पुंसस्तद्रागाद्दर्शनग्रहः ॥ द्वितीये न भवत्येव चिन्तायोगा
त्कदाचन ॥ ६८ ॥ चारिसंजीविनीचारकन्यायतोऽन्तिमे ॥ सर्वत्रैव हिता वृत्तिर्गाम्भीर्यात्समदर्शिनः ॥ ६९ ॥ तेन स्या
द्वादमालम्ब्य सर्वदर्शनतुल्यताम् ॥ मोक्षोद्देशाविशेषेण यः पश्यति स शास्त्रवित् ॥ ७० ॥ माध्यस्थ्यमेव शास्त्रार्थो येन
तच्चारु सिध्यति ॥ स एव धर्मवादः स्यादन्यद्बालिशवल्गनम् ॥ ७१ ॥ पुत्रदारादिसंसारो धनिनां मूढचेतसाम् ॥ पण्डि
तानां तु संसारः शास्त्रमध्यात्मवर्जितम् ॥ ७२ ॥ माध्यस्थ्यसहितं ह्येकपदज्ञानमपि प्रमा ॥ शास्त्रकोटिर्वृथैवान्या तथा
चोक्तं महात्मना ॥ ७३ ॥ वादांश्च प्रतिवादांश्च वदन्तोऽनिश्चितांस्तथा ॥ तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति तिलपीलकवद्गतौ ॥ ७४ ॥
इति यतिवदालापान् श्रुत्वा मलामयिरपर्यावरानिशानि ॥ मदन्धिताऽऽहितैः स्याद्विचिन्तातिशय जड विदशाम्य नाम
॥ ७५ ॥ नयानना गाथासमादृष्टिस्याम्य फलितं सर्वं माध्यस्थ्येन स्फुटमिति विधेयं प्रमपदम् ॥ ममात्रस्त्र्यपायदनि
दृशि धनगहनं सर्वं पापाभावा प्रशमनिनिरस विगलित ॥ ७६ ॥ चिद्रूपादोषाच्च मपदि तत्त्वमानन्तमय ममुन्मील
प्रतिनरति च स्वाध्यायविशदः ॥ नृणां धीरोन्मनिय गगुणाकागरम्नियंता श्रीरत्नम्याकं त्यजति न कदापि मणयिनी ७७
॥ इति श्री विजयविजयगणिशिष्यविनयविजयगणिवरो. उपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचितेऽध्यात्मोपनिषत्प्रकरणे
शास्त्रयोगशुद्धिनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

---

१ अथ हेतुद्धिघन ।

॥ अथ द्वितीयोऽधिकारः ॥

॥ दिशा दर्शितया शास्त्रैर्गच्छन्नच्छमतिः पथि ॥ ज्ञानयोगं प्रयुञ्जीत तद्विशेषोपलब्धये ॥ १ ॥ योगजादृष्टजनितः स तु प्रातिभसंज्ञितः ॥ सन्ध्येव दिनरात्रिभ्यां केवलश्रुतयोः पृथक् ॥ २ ॥ पदमात्रं हि नान्वेति शास्त्रं दिग्दर्शनोत्तरम् ॥ ज्ञानयोगो मुनेः पार्श्वमाकैवल्यं न मुञ्चति ॥ ३ ॥ तत्त्वतो ब्रह्मणः शास्त्रं लक्षकं न तु दर्शकम् ॥ न चादृष्टात्मतत्त्वस्य दृष्टब्रह्मसिद्धिः ॥ ४ ॥ नैरात्म्यदर्शनाकाङ्क्षी ज्ञानेनान्तर्मुखो भवेत् ॥ ऋजुर्दृगात्मता शुद्धिर्दृश्यकारस्य जनन्नम ॥ ५ ॥ आत्मज्ञाने मुनिर्मग्नः सर्वं पुद्गलविभ्रमम् ॥ महेन्द्रजालवद्वेत्ति नैव तत्रानुरज्यते ॥ ६ ॥ आस्वादिता सुमधुरा येन ज्ञानरतिसुधा ॥ न लगत्येव तच्चेतो विषयेषु विषेष्विव ॥ ७ ॥ सतत्त्वचिंतया यस्याभिसमन्वागता इमे ॥ आत्मवान् ज्ञानवान् वेदवान् धर्मवान् ब्रह्मवांश्च सः ॥ ८ ॥ विषयान् साधकः पूर्वमनिष्टत्वधिया त्यजेत् ॥ न त्यजेन्न च गृह्णीयात् सिद्धो विद्यात् स तत्त्वतः ॥ ९ ॥ योगारम्भदशास्थस्य दुःखमन्तर्बहिः सुखम् ॥ सुखमन्तर्बहिर्दुःखं सिद्धयोगस्य तु ध्रुवम् ॥ १० ॥ प्रकाशशक्त्या यद्रूपमात्मनो ज्ञानमुच्यते ॥ सुखं स्वरूपविश्रान्तिशक्त्या वाच्यं तदेव तु ॥ ११ ॥ सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥ एतदुक्तं समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म तद्वक्तुं नैव पार्यते ॥ नोपमेयं प्रियाश्लेषैर्नापि तच्चन्दनद्रवैः ॥ १३ ॥ तेजोलेश्याविवृद्धिर्या पर्यायक्रमवृद्धितः ॥ भाषिता भगवत्याद्यै सेत्थंभूतस्य युज्यते ॥ १४ ॥ चिन्मात्रलक्षणेनान्यव्यतिरिक्तत्वमात्मनः ॥ प्रतीयते यदश्रान्तं तदेव ज्ञानमुत्तमम् ॥ १५ ॥ शुद्धोपयोगरूपोऽयं समाधिः

[illegible] ॥ गुरोरयोगस्तम्तु निर्विकल्पसदक्षरम् ॥ १६ ॥ आद्य सार्वजनो नाम योगोऽनागवन पर ॥ गायाया [illegible] मुर्गविश्रामितिनि ॥ १७ ॥ यद्दृश्य यच्च निवाच्य मननीय च यत्नुति ॥ तद्रूपं परमश्रिष्ट न शुद्धरूप्यवद्
तम् ॥ १८ ॥ यदम्य पदं नाम्नीगुपकम्यागमे तन ॥ तमाधिमात्रव्याहृत्या मोर्क शुद्धात्मदर्पणम् ॥ १९ ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ इति श्रुतिरपि व्यक्तमेतदर्थानुनादिनी ॥ २० ॥ अतीन्द्रिय पर ब्रह्म विशुद्धानुभव विना ॥ शास्त्रयुक्तिशतेनापि नैव गम्य कदाचन ॥ २१ ॥ कर्तां न कल्पना दर्वी शास्त्रक्षीरावगाहिनी ॥ निरवालम्बगा [illegible] ॥ २२ ॥ [illegible] ब्रह्मनिर्द्वन्द्व निर्द्वन्द्वानुभव विना ॥ कथ लिपिमयी दृष्टि वाङ्मयी वा मनोमयी ॥ २३ ॥ न सुषुप्तिरमादरूपात्रापि च स्वापकल्पना ॥ कल्पनाशिल्पविश्रान्तस्तुर्येवानुभवो दशा ॥ २४ ॥ अधिगत्याखिल [illegible] मुनि ॥ स्वसवेद्य परं ब्रह्मानुभवैरधिगच्छति ॥ २५ ॥ ये पर्यायेषु निरतास्ते ह्यन्यसमयस्थिता ॥ आ[illegible]निश्चितौ ध्रुवा स्वसमयस्थिति ॥ २६ ॥ आत्माऽनात्मविश्रान्तिरवाप्तुत्वनयस्य तत् ॥ शुद्धानुभवसवेद्य स्वरूप [illegible]मनः ॥ २७ ॥ शुद्धध्यानानि यावन्ति यावन्त्यश्चापि मार्गणा ॥ तदन्यतरसंश्लेषो नैवात परमात्मन ॥ २८ ॥ कर्मो [illegible] च आत्म[illegible] ॥ तेन स्थानादिके रूप न शुद्धं परमात्मनः ॥ २९ ॥ यथा चूर्णैः कृत शुद्ध [illegible] ॥ [illegible] कर्मकृतानि तथा ॥ ३० ॥ मुषितत्व यथा पान्थगत पन्थुपचर्यते ॥ तथा [illegible] कर्माशविश्राम ॥ ३१ ॥ स्वा पर समयानि कर्म[illegible] ॥ एकोऽनवगाहन ज्ञानी तत्र न

[illegible]

दोषजाः ॥ ३२ ॥ दारयंत्रस्थपाञ्चालीनृत्यतुल्याः प्रवृत्तयः ॥ योगिनो नैव बाधायै ज्ञानिनो लोकवर्तिनः ॥ ३३ ॥ प्रारब्धादृष्टजनितात् सामायिकविवेकतः ॥ क्रियापि ज्ञानिनो व्यक्तामौचितीं नातिवर्तते ॥ ३४ ॥ संसारे निवसन् स्वार्थसज्जः कज्जलवेश्मनि ॥ लिप्यते निखिलो लोको ज्ञानसिद्धो न लिप्यते ॥ ३५ ॥ नाहं पुद्गलभावानां कर्ता कारयिता च न ॥ नानुमन्तापि चेत्यात्मज्ञानवान् लिप्यते कथम् ॥ ३६ ॥ लिप्यते पुद्गलस्कंधो न लिप्ये पुद्गलैरहम् ॥ चित्रव्योमाञ्जनेनेव ध्यायन्निति न लिप्यते ॥ ३७ ॥ लिप्तता ज्ञानसंपातप्रतिघाताय केवलम् ॥ निर्लेपज्ञानमग्नस्य क्रिया सर्वोपयुज्यते ॥ ३८ ॥ तपःश्रुतादिना मत्तः क्रियावानपि लिप्यते ॥ भावनाज्ञानसंपन्नो निष्क्रियोऽपि न लिप्यते ॥ ३९ ॥ समलं निर्मलं चेदमिति द्वैतं यदागतम् ॥ अद्वैतं निर्मलं ब्रह्म तदेकमवशिष्यते ॥ ४० ॥ महासामान्यरूपेऽस्मिन्मज्जति नयजा भिदाः ॥ समुद्र इव कल्लोलाः पवनोन्माथनिर्मिताः ॥ ४१ ॥ षड्द्रव्यैकात्म्यसंस्पर्शि सत्सामान्यं हि यद्यपि ॥ परस्यानुपयोगित्वात् स्वविश्रांतं तथापि तत् ॥ ४२ ॥ नयेन संग्रहेणैवमृजुसूत्रोपजीविना ॥ सच्चिदानंदरूपत्वं ब्रह्मणो व्यवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ सत्त्वचित्त्वादिधर्माणां भेदाभेदविचारणे ॥ न चार्थोऽयं विशीर्येत निर्विकल्पप्रसिद्धितः ॥ ४४ ॥ योगजानुभवारूढे सन्मात्रे निर्विकल्पके ॥ विकल्पौघासहिष्णुत्वं भूषणं न तु दूषणम् ॥ ४५ ॥ यो ह्याख्यातुमशक्योऽपि प्रत्याख्यातुं न शक्यते ॥ प्राज्ञैर्न दूषणीयोऽर्थः स माधुर्यविशेषवत् ॥ ४६ ॥ कुमारी न यथा वेत्ति सुखं दयितभोगजम् ॥ न जानाति तथा लोको योगिनां ज्ञानजं सुखम् ॥ ४७ ॥ अत्यंतपक्वबोधाय समाधिर्निर्विकल्पकः ॥ वाच्योऽयं नार्धविज्ञस्य तथा चोक्तं परैरपि ॥ ४८ ॥ आदौ शमदमप्रायैर्गुणैः शिष्यं प्रबोधयेत् ॥ पश्चात् सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमिति बोधयेत् ॥ ४९ ॥ अज्ञस्यार्धप्रबु-

कस्य गर्भं प्रवाति यो वदेत् ॥ महानरकनाकेषु स तत्र विनियोजितः ॥ ५० ॥ तेनादौ शोधयेच्चित्तं सद्विकल्पैर्मतादिभिः ॥
यथामात्मनिकारागां प्रतिगम्यानमात्मना ॥ ५१ ॥ विकल्परूपा मायेयं विकल्पेनैव नाश्यते ॥ अवस्थान्तरभेदेन तथा
भाति पंक्तिशः ॥ ५२ ॥ अविवर्णयोगमया स्वात्मनाशोधमोत्थया ॥ विधा समाप्यते राम सर्वलोकापहारिणी ॥ ५३ ॥
नास्ति मायासमं मत्रा माया मत्रः ॥ शाम विर्न विशति रिपुणा हन्यते रिपु ॥ ५४ ॥ इन्द्री जनमायेयं या
मनानां हरेद् ॥ न मदया व्यनाशोऽस्या मैत्र्यमाणैव नश्यति ॥ ५५ ॥ मतादि शुनककल्पो निर्नाश्याशुनरागताम् ॥
मातं विलं हनः स्वयमेव विनश्यति ॥ ५६ ॥ यं नैश्यथिनी शशिनं प्रवृत्तिन या प्रिया ॥ शुनककल्पनाशार्थं योगि
नामुपयुष्यते ॥ ५७ ॥ क्लीयाणुरमण मायोपशमिका गुणा ॥ माया अपि यास्यति स्यास्यति मायिका परम् ॥५८॥
अथ यथावश्रमनुयममुत्तम च कुर्वन् दशानुगुणमुत्तममान्तराय ॥ निर्मातनिर्तरनिरङ्कितपक्षपात प्रानसुरक्षमिव दीप्ति
मुपैति योगी ॥ ५९ ॥ अन्यस्य तु प्रविता व्यवहारमार्ग प्रकाशनीय उद्गम कुत्सास्वनिष्ठ ॥ चिद्वर्णणप्रतिफलत्रिजगद्वि
र्ता यदि न किं पुनरपि भगतामसत्य ॥ ६० ॥ ननु किमपि तत्त्वं यान्यमात्यंतर या हृदि वितरति माध्य निर्मलश्चिद्वि
लासः ॥ तदिह निखिलार्थपाचारगोचरत्वाव्यक्तिनिरसमनात पद्मगोऽधिको न ॥ ६१ ॥ स्फुरमपरमजाते रंगमस्तारत
स्यम् प्रवन्तु न तु हृयणावता हाणयोगी ॥ कविवारम्भनात्र विषम सर्गारम् गगनवयविपुरं चितमक प्रमाणम् ॥६२॥
हरिणजनयानां गतिर्नः पुरगणाणां सहजयिपितगमा निश्चयो ना चित्तनि ॥ अपि तु जयति लीलोऽजितृ जोन्मुखेऽभिर्
गणितमदनगम्य ॥मगंयर नीता ॥ ६३ ॥ कवितनिविभवाव्यापकोपाद्रर्षापत्पुरसमरस्मार्य नानापापतानाम् ॥

दृश्यं विनापि सौख्यं नास्ति नैवास्ति मोक्षे न च किमपि विधेयं नैव गेयं न देयम् ॥ ६४ ॥ इति सुपरिणतात्मख्याति-
भावुके [illegible] धृतिपतिर्विधिज्ञोऽवासिरीयं । दरहिमकरहारस्फारमंदारगंगारजतकरशशुभ्रा स्यात्तदीया यशःश्री ॥६५॥
[illegible] जसहोदरोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिकृतेऽध्यात्मोपनिषत्प्रकरणे ज्ञानयोगशुद्धिनामा ॥२॥

॥ अथ तृतीयोऽधिकारः ॥

॥ [illegible] ज्ञानसाधकः ॥ सिद्धयोगस्य तान्येव लक्षणानि स्वभावतः ॥ १ ॥ अत एव जगौ
[illegible] ॥ यत्नां सोमित्रयश्चे जगवान् भ्यस्य निश्चिनाम् ॥ २ ॥ अतश्चैव स्थितप्रज्ञा नासाधारलक्षणे ॥
[illegible] धार्थे योगरूढा परस्पि ॥ ३ ॥ नाज्ञानिनो विशेष्येत यथेच्छाचरणे पुनः ॥ ज्ञानी स्वलक्षणानानात्तथा
[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] यथेच्छाचरणं यदि ॥ शुना तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥ ५ ॥ अनु-
[illegible] दृश्यन्ते [illegible] ॥ तदपि योगमाहात्म्यमहिम्ना मा न मज्जतु ॥ ६ ॥ निवृत्तमशुभाचारात्शुभाचारप्रवृ-
[illegible] ॥ [illegible] मुने ॥ ७ ॥ विधयश्च निषेधाश्च नत्वज्ञाननियन्त्रिता ॥ यावत्संगागमे
[illegible] ॥ ८ ॥ न च सामर्थ्ययोगस्य युक्तं शास्त्रं नियामकम् ॥ कल्पातीतस्य मर्यादाप्यस्ति न ज्ञा-
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] सदाचिंविपन्नरी क्रिया ॥ ज्ञानमेव क्रियायुक्तं राजयोगस्तदिष्यताम् ॥ १० ॥
[illegible] ॥ [illegible] योगी चेन्नस्य निपता क्रिया ॥ ११ ॥ स्थैर्याधानाय सिद्धस्यापि-

वस्त्यानयनाय च ॥ भावस्यैव क्रिया शान्तचित्तानामुपयुज्यते ॥ १२ ॥ क्रियाविरहितं हन्त ज्ञानमात्रमनर्थकम् ॥ गतिं विना पथज्ञोऽपि नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥ १३ ॥ स्वानुकूलां क्रियां काले ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते ॥ प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि तैलपूर्त्यादिकं यथा ॥ १४ ॥ बाह्यभावं पुरस्कृत्य ये क्रिया व्यवहारत ॥ वदने कवलक्षेपं विना ते तृप्तिकाङ्क्षिण ॥ १५ ॥ गुणवद्बहुमानादेर्नित्यस्मृत्या च सत्क्रिया ॥ जातं न पातयेद्भावमजातं जनयेदपि ॥ १६ ॥ क्षायोपशमिके भावे या क्रिया क्रियते तया ॥ पतितस्यापि तद्भावप्रवृद्धिर्जायते पुन ॥ १७ ॥ गुणवृद्ध्यै तत कुर्यात् क्रियामस्खलनाय वा ॥ एकं तु संयमस्थानं जिनानामवतिष्ठते ॥ १८ ॥ अज्ञाननाशकत्वेन ननु ज्ञानं विशिष्यते ॥ न हि रज्जावहिभ्रान्तिर्गमनेन निवर्तते ॥ १९ ॥ सत्यं क्रियागमप्रोक्ता ज्ञानिनोऽप्युपयुज्यते ॥ संचितादृष्टनाशार्थं नासूरोऽपि यदभ्यधात् ॥ २० ॥ तदुत्पन्नस्य यथा नर्मे यथा तापस्य घातिका ॥ नश्यति क्रियया पुन गुरुस्य तथा मलम् ॥ २१ ॥ जीवस्य तण्डुलस्येव मल सहजमप्यलम् ॥ नश्यत्येव न सदहमस्माडुद्यमवान् जव ॥ २२ ॥ अविद्या च दिदृक्षा च भवबीज च वासना ॥ सहजं च मल चेति पर्याया कर्मणः स्मृता ॥ २३ ॥ ज्ञानिनो नास्त्यदृष्टं चेद्भस्मसात्कृतकर्मणः ॥ शरीरपातः किं न स्याज्जीवनादृष्टनाशतः ॥ २४ ॥ शरीरमीश्वरस्येव विभोरप्यवतिष्ठते ॥ अन्यादृष्टवशेनेति कश्चिदाह तदक्षमम् ॥ २५ ॥ शरीरं विभुः शिष्याद्यदृष्टाद्यदि तिष्ठति ॥ तदाऽसुहृददृष्टेन न नश्येदिति का प्रमा ॥ २६ ॥ न चोपादाननाशेऽपि क्षणं कार्यं यथाप्यते ॥ तार्किकैः स्थितिमत्त्वधिरं विभुत्वनुस्थितिः ॥ २७ ॥ निरुपादानकार्यस्य क्षणं यत्तार्किकैः स्थितिः ॥ नाशहेत्वन्तराजातादिष्टा न च स दुर्वचः ॥ २८ ॥ अन्यादृष्टस्य तत्पातप्रतिबन्धकता नयेत् ॥ म्रियमाणोऽपि जीव्येत शिष्यादृष्टवशाद्गुरु ॥ २९ ॥ स्वजा-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ २७ ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

॥ अथ चतुर्थोऽधिकारः ॥

॥ ज्ञानक्रियाश्वयुक्सात्म्यरथाधिरूढ शिवमार्गगामी ॥ न मामपू कष्ट भारतीना जनोऽनुगानक ख्यातिमति ॥ १ ॥
आत्मप्रवृत्तावतिजागरूक परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूक ॥ सदा चिदानन्दपदोपयोगी लोकोत्तर साम्यमुपैति योगी ॥ २ ॥
परीषहैश्च प्रबलोपसर्गयोगाच्चलत्येव न साम्ययुक्त ॥ स्थैर्याद्विपर्यासमुपैति जातु क्ष्मा न शैलैर्न च सिंधुनाथैः ॥ ३ ॥
इतस्ततो नारतिवह्नियोगादुड्डीय गच्छेद्यदि चित्तसूत ॥ साम्यैकसिद्धांतपमूर्छितः सन् कल्याणसिद्धेर्न तदा विलम्ब ॥ ४ ॥
अतनिमग्न समतासुखाब्धौ बाह्ये सुखे नो रतिमेति योगी ॥ अटत्यटव्या क इवार्थलुब्धो गृहे समुत्सर्पति कल्पवृक्षे ॥ ५ ॥
यस्मिन्नविद्यार्पितबाह्यवस्तुविस्तारजभ्रान्तिरुपैति शान्तिम् ॥ तस्मिन्श्चिदेकार्णवनिस्तरङ्गस्वभावसाम्ये रमते सुबुद्धि ॥ ६ ॥
शुद्धात्मतत्त्वप्रगुणा विमर्शाः स्पर्शाख्यसंवेदनमादधाना ॥ यदान्यबुद्धिं विनिवर्तयन्ति तदा समत्वं प्रथतेऽवशिष्टम् ॥ ७ ॥
विना समत्व प्रसरन्ममत्व सामायिकं मायिकमेव मन्ये ॥ आये समाना सति सद्गुणाना शुद्धं हि तच्छुद्धनया विदन्ति ॥ ८ ॥
निशानभोमन्दिररत्नदीपज्योतिर्भिरुद्योतितपूर्वमते ॥ विद्योतते तत्परमात्मतत्त्वं प्रसृत्वरे साम्यमणिप्रकाशे ॥ ९ ॥ एका
विवेकांकुरिता श्रिता या निर्वाणमापुर्भरतादिभूपा ॥ सैवर्जुमार्ग समता मुनीनामन्यस्तु तस्या निखिल प्रपञ्च ॥ १० ॥
अल्पेऽपि साधुर्न कषायवह्नावह्नाय विश्वासमुपैति भीत ॥ प्रवर्धमानः स दहेद्गुणौघं साम्याम्बुपूरैर्यदि नापनीत ॥ ११ ॥
प्रारब्धजा ज्ञानवता कषाया आभासिका इत्यभिमानमात्रम् ॥ नाशो हि भावप्रतिसंख्यया यो नाबोधवत्साम्यरती स तिष्ठेत् ॥ १२ ॥ साम्यं विना यस्य तपःक्रियादेर्निष्ठा प्रतिष्ठार्जनमात्र एव ॥ स्वर्धेनुचिन्तामणिकामकुम्भान् करोत्यसौ काण

[illegible] ॥ गा[illegible] नं [illegible] न [illegible]-
[illegible] ॥ [illegible] नदन [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] मेत्र [illegible]-
[illegible] ॥ [illegible]-
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ॥ २० ॥ [illegible]
[illegible] ॥ २१ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ २२ ॥ [illegible]-
[illegible]
॥ ॥ ॥

[illegible] । पु रा [illegible] कामितानि वाञ्छितानि तेषु कामदुं नमिरेरुपमान । कं यद्यपि शास्त्र माद- [illegible] तथाविधावयवरचनाविशेषो नेदेऽपि कुबुद्धिरचितान तस्य नेदं शास्त्रतुल्य वर्तते । अथ जाव । [illegible] इत्यं जिनस्येदं प्रवचनमपि सदसद्विवेकत्वेन मिथ्यात्वाभिनिवेशं निहन्ति निवर्तयति । न [illegible] मिथ्यात्वाभिनिवेशनिवर्तकत्वाभावेन जगदुद्धरणसामर्थ्यं शङ्कनीय, योग्यानुद्दिश्यैतदभिधा- [illegible] न तु वर्णमात्रान्तरेणेति ॥ १ ॥

यन्नोऽरपोहीरणतत्त्वदाऽप्यमुत्रोप कर्मेन्धनमिद्धतेजा ।
ध्यानानलेन प्रबलेन यो वः समग्रविद्यातु स वीरदेव ॥ २ ॥

[illegible] वीरदेव श्रीवर्धमानस्वामी वो युष्मान् पातु । कथंभूत । समग्रवित् समग्र [illegible] पर्यायात्मकं वस्तु वेत्ति पश्यति [illegible] जीवस्य [illegible] सामान्यप्रधानमुपसर्जनीकृतविशेषमर्थग्रहण दर्शनमुच्यते तथा [illegible] । स को यो ध्यानानलेन कर्मेन्धनमुपोषयाञ्चयत् ध्यानमेव निर्मलता [illegible] । कर्मेन्धनमिव यत्र आत्मनिरायणैकस्वभावम् । कथंभूत कर्मेन्धन । यथो [illegible] परमयोग्यगापापुरु

रात्मन क्षीरनीरवद्वह्न्यय पिण्डवदन्योन्यानुगमाभेदात्मकः संबंधो बंध (१) तेषां च यथास्वस्थितिबद्धानां कर्मपुद्गलानामपवर्तनादिकरणविशेषे कृते स्वाभाविके वा स्थितिक्षये सत्युदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदय (२) तेषामेव कर्मपुद्गलानामकालप्राप्तानां जीवसामर्थ्यविशेषादुदयावलिकायां प्रवेशनमुदीरणा (३) तेषामेव कर्मपुद्गलानां बंधसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता (४) मदिति भावप्रधानो निर्देशस्तथा बंधोदयोदीरणसत्ताभिधायकानि पदानि बंधादीनि तैराख्यायते व्यपदिश्यते यस्तद्बंधोदयोदीरणसत्तादाख्यम् । अथ भावः कर्मणामष्टौ मूलप्रकृतयः । तद्यथा-ज्ञानावरणं १ दर्शनावरणं २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयुष्कर्म ५ नामकर्म ६ गोत्रकर्म ७ अन्तराय इति ८ । उत्तरप्रकृतीनां चाष्टपंचाशदधिकशत भेदास्तद्यथा मतिज्ञानावरण १ श्रुतज्ञानावरण २ अवधिज्ञानावरण ३ मन पर्यायज्ञानावरण ४ केवलज्ञानावरण ५ इति ज्ञानावरणस्य पंच भेदाः । चक्षुर्दर्शनावरण १ अचक्षुर्दर्शनावरण २ अवधिदर्शनावरण ३ केवलदर्शनावरण ४ निद्रा ५ निद्रानिद्रा ६ प्रचला ७ प्रचलाप्रचला ८ स्त्यानर्धी ९ इति दर्शनावरणस्य नवैव भेदाः । वेदनीयकर्मणो द्वौ भेदौ सातावेदनीयमसातावेदनीय इति । सम्यक्त्वमोहनीय १ मिश्रमोहनीय २ मिथ्यात्वमोहनीय ३ अनन्तानुबंधिक्रोध ४ मान ५ माया ६ लोभाः ७ अप्रत्याख्यानक्रोध ८ मान ९ माया १० लोभाः ११ प्रत्याख्यानावरणक्रोध १२ मान १३ माया १४ लोभा १५ संज्वलनक्रोध १६ मान १७ माया १८ लोभाः १९ स्त्रीवेदः २० पुरुषवेदः २१ नपुंसकवेद २२ हास्य २३ रति २४ अरतिः २५ भय २६ शोक २७

---

१ बंधोदयोदीरणसत्तानि । २ प्रकृतिबाधकत्वात् नात्र संधिः कृतिः ।

[illegible] । नरकायु १ तिर्यगायु २ मनुष्यायु ३ देवायु ४ एति आयुःकर्म
[illegible] १ मनुष्यगति २ तिर्यग्गति ३ नरकगति ४ एकेन्द्रियजाति ५ द्वीन्द्रियजाति ६ त्रीन्द्रिय-
[illegible] ९ औदारिकशरीर १० वैक्रियशरीर ११ आहारकशरीर १२ तैजस-
[illegible] १६ आहारकांगोपांग १७ औदारिकौदारिकबंधन १८ वैक्रिय
[illegible] २२ औदारिकतैजसबं० २३ वैक्रियतै-
[illegible] २६ औदारिककार्मणबं० २७ वैक्रियकार्मणबं० २८ आहारककार्मण-
[illegible] ३१ आहारकतैजसकार्मणबं० ३२ औदारिकसंघातन ३३
[illegible] ३६ कार्मणसंघातन ३७ वज्रऋषभनाराच ३८ ऋषभनाराच ३९
[illegible] ४३ समचतुरस्र ४४ न्यग्रोध ४५ सादि ४६ वामन ४७ कुब्ज
[illegible] ५२ पीतवर्ण ५३ धवलवर्ण ५४ सुरभिगंध ५५ असुर-
[illegible] ६० मधुररस ६१ गुरु ६२ लघु ६३ मृदु ६४ खर
[illegible] ७१ तिर्यग् ७२ नरकानुपूर्वी ७३ शुभगति ७४
[illegible] ८० जिननाम ८१ निर्माण ८२ उप
[illegible] सुस्वर ... आदेय ... यशो-

नामानि ९३ स्थावर ९४ सूक्ष्म ९५ अपर्याप्त ९६ साधारण ९७ अस्थिर ९८ अशुभ ९९ दुर्भग १०० दुःस्वर १०१ अ-
नादेय १०२ अयशःकीर्ति १०३ चेति नामकर्मणस्त्र्युत्तरं शतं भेदाः। गोत्रकर्मण उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ चेति द्वौ भेदौ।
दानान्तरायं १ लाभान्तरायं २ भोगान्तरायं ३ उपभोगान्तरायं ४ वीर्यान्तरायं ५ चेति अंतरायकर्मणः पंच भेदाः।
अष्टपञ्चाशदधिकशतप्रकृतीनां मध्याद्बंधनसंघातयोर्विंशतिर्भेदास्तनुष्वेवान्तर्भावादपनीयन्ते । ततो वर्णगंधरसस्प
र्शानां चत्वारिंशद्भेदैर्निष्पन्ना विंशतिमपनीय तेषामेव सामान्यवर्णगन्धरसस्पर्शलक्षणं चतुष्कं गृह्यते । ततश्च
यमादि पञ्चदशबन्धनसंघातपञ्चकवर्णादिषोडशकरूपाणां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामपसारणेन द्वाविंशत्यधिकशतमवशिष्यते तत्रापि
सम्यक्त्वमिश्रे बंधे नाधिक्रियेते । यतो मिथ्यात्वपुद्गलानामेव जीवः सम्यक्त्वगुणेन मिथ्यात्वरूपतामपनीय केषांचि
च्छुद्धिमात्रमापादयति अपरेषां त्वर्द्धविशुद्धिं केचित्पुनर्मिथ्यात्वरूपा एवावतिष्ठन्ते तत्र येऽत्यन्तविशुद्धास्ते सम्यक्त्वव्यप
देशभाजः अर्द्धविशुद्धा मिश्रव्यपदेशभाजः शेषा मिथ्यात्वव्यपदेशभाज इति । उदयोदीरणायां तु पुनस्तयोरप्यधिकार ।
ततश्च बंधप्रायोग्या विंशत्यधिकशतप्रकृतयः उदयोदीरणाप्रायोग्याश्च द्वाविंशत्यधिकशतप्रकृतयः सत्ताप्रायोग्याश्च पूर्वो-
क्तानामपि प्रकृतीनां सद्भावादष्टपंचाशदधिकशतप्रकृतयः । तथा चोक्तम्-"बंधणसंघायगहो तणूसु सामन्नवन्नचउ ।
इय सत्तट्ठी बंधोदए य न य सम्ममीसया बंधे ॥ बंधुदए सत्ताए वीस दुवीसट्ठवन्नसयंति ॥' ताश्च यथोदीरणाप्रायोग्या
प्रकृतीः सयोगिकेवलिगुणस्थानावसाने एवं च यावत् तावत् स्थापयित्वा ततश्चायोगिकेवलिचरमसमये स्थापिता यो
ऽगमत्सिद्धिक्षेत्रनिरवशेषसकलकर्मावशेषनिमित्तकोऽवक्रः सिद्धिस्वरूपमनयोर्विनान्तराप्रतिकामभिलिख्यते । पुरः कर्मयंत्र

स्फुरदुरु तेजो वीर्यान्तरायकर्मसमूलकापकषणात् प्रकटितस्वरूपं तेजो वीर्यं यस्य स तथा । अत्र च श्लोकद्वये भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनश्चत्वारो मूलातिशया प्रतिपादिताः । तथाहि-समग्रविदित्यनेन लोकालोकालोकनप्रवणविमलकेवलालोकसंपत्प्रतिपादनाज्ज्ञानातिशयः, तथा जिनवर्धमानमित्यत्र 'जिन' इति विशेषणेन रागादिशत्रूणां जयप्रतिपादनादपायापगमातिशयः, तथा आकारभेदेऽपीत्यादिना प्रथमपद्योत्तरार्धेन मिथ्यात्ववासनानिर्मूलनक्षमजाह्नवीजलनिर्मलपरस्परविरोधदोषरहितसप्तनयविशुद्धस्याद्वादवागीप्रणयनलक्षणाद्वचनातिशयः तथा श्रीवर्धमानमित्यनेनाकृत्रिमभक्तिभाग्भारोद्भूतप्रत्यग्रोमाञ्चदन्तुरशरीरसकलसुरनिकायनायकविरचिताष्टमहाप्रातिहार्योदार्यसंपत्प्रतिपादनात्पूजातिशय इति ॥ २ ॥

अथ मेधावत्प्रवृत्तिप्रयोजकं स्वाभिधेयं प्रतिजानीते-

नत्वा श्रीवीरतीर्थेशं कुतीर्थिकमदापहम् । स्थाप्यते कवलाहारस्तत्प्रसादाज्जिनेशितुः ॥ ३ ॥

टीका-इह तावत्करालकलिकालप्रबलकरालविदलितमतयः कियच्चिद्दिगम्बरशास्त्राभ्युपगमात् कियच्चिच्च श्वेताम्बरशास्त्राभ्युपगमाच्च ममूत्रिमकल्पा उभयतो भ्रष्टा भागीरथीसलिलनिर्मलेऽपि पीयूषयूपातिशायिमाधुर्ये भगवद्वचसि कालुष्यं दधाना केचन निकाचितपापकर्मकलुषितात्मानः केवलिना कवलाहारं प्रति विप्रतिपद्यन्त इति तत्स्थापनमत्राभिधेयम् । श्लोकोऽयं स्पष्टार्थः । नवरं जिनेशितुरिति अन्येषामपि सामान्यकेवलिनामुपलक्षणम् । यद्वा जयन्ति रागादिशत्रूनिति जिना उपशान्तमोहगुणस्थानवर्तिनस्तेषामीशितोपशमापेक्षया क्षयस्य प्राधान्यात्केवली तस्य जिनेशितुरिति जात्यभिप्रायमेकवचनमिति ॥ ३ ॥ तत्र तावत्परपक्षमुत्थापयिष्यन् स्वमिच्छात् रूढयति-

अर्हतां यद्यतिशयाश्चतुस्त्रिंशत्ततो न किम्। विशेषसिद्धिः सामान्यसिद्धिमाक्षिपति स्फुटम् ॥ ४ ॥

टीका-अर्हतां तीर्थकृतां चेद्यदि चतुस्त्रिंशदतिशया अभ्युपगम्यन्त इति शेषस्तर्हि केवलिविशेषस्य तीर्थकृतः कवलाहारसिद्धिः सामान्यसिद्धिं सामान्यकेवलिनामपि कवलाहारसिद्धिं कथं न गमयतीत्यध्याहार्यं । तात्पर्यमिदम्-अर्हन्तश्चतुस्त्रिंशदतिशयविराजमाना जयन्तीत्युजयन्तादिसिद्धं तत्र सहजाश्चत्वारोऽतिशया एकादश कर्मक्षयोत्था एकोनविंशतिश्च देवकृता । तथा चाहु-"तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धो निरामयः स्वेदमलोज्झितश्च । श्वासोऽब्जगन्धो रुधिरामिषं तु गोक्षीरधाराधवलं ह्यविस्रम् ॥ १ ॥ आहारनीहारविधिस्त्वदृश्य चत्वार एतेऽतिशयाः सहोत्थाः । क्षेत्रे स्थितिर्योजनमात्रकेऽपि नृदेवतिर्यग्जनकोटिकोटेः ॥ २ ॥ वाणी नृतिर्यक्सुरलोकभाषा-संवादिनी योजनगामिनी च । भामण्डलं चारु च मौलिपृष्ठे विडम्बिताहर्पतिमण्डलश्रि ॥ ३ ॥ साग्रे च गव्यूतिशतद्वये रुजा वैरेतयो मार्यतिवृष्ट्यवृष्टयः । दुर्भिक्षमन्यस्वकचक्रतो भयं स्यान्नैत एकादश कर्मघातजाः ॥ ४ ॥ खे धर्मचक्रं चमराः सपादपीठं मृगेन्द्रासनमुज्ज्वलं च । छत्रत्रयं रत्नमयो ध्वजोऽङ्घ्रिन्यासे च चामीकरपंकजानि ॥ ५ ॥ वप्रत्रयं चारुचतुर्मुखाङ्गता चैत्यद्रुमोऽधोवदनाश्च कंटकाः । द्रुमानतिर्दुन्दुभिनाद उच्चकैर्वातोऽनुकूलः शकुनाः प्रदक्षिणाः ॥ ६ ॥ गन्धाम्बुवर्षं बहुवर्णपुष्पवृष्टिः कचश्मश्रुनखाप्रवृद्धिः । चतुर्विधामर्त्यनिकायकोटिर्जघन्यभावादपि पार्श्वदेशे ॥ ७ ॥ ऋतूनामिन्द्रियार्थानामनुकूलत्वमित्यमी । एकोनविंशतिर्दैव्याश्चतुस्त्रिंशच्च मीलिताः ॥ ८ ॥ इति" तत्र च चतुस्त्रिंशदतिशया केवलज्ञानोत्पत्तिमनन्तरमेव प्राप्यन्ते नान्यदा कारणान्तरं स्यात् । तथा चाहारनीहारविधेरदृश्यत्वं केवलिनां कवलाहाराभ्युपगममन्तरा कथं जाघटीति आहारशब्दस्य सामा

न्यायपरत्वेऽपि नीहारशब्दसमभिव्याहारस्य तत्र तात्पर्यख्यापकात् , न च नीहारशब्दस्तैजसशरीरेण पच्यमाने लोमाहार एव रूढः । यतः किमियं रूढिर्लौकिकी पारिभाषिकी वा नाद्योऽसत्त्वात् नापि द्वितीयस्तथा कुत्रचिदपि पूर्वसूरिभिरनाख्यातत्वात् । किं चैतदतिशयस्य सहोत्थत्वेन गार्हस्थ्येऽपि कवलाहारविलोपान्न लज्जसे सामान्यजनसाधारणत्वाच्च कथमतिशयत्वमप्येतस्येति पूर्वापरविचारचातुरीशून्यहृदय संवादयितुमप्यनर्होऽसि । ननु किं तदतिशयत्वम् न तावत्तीर्थंकरनामकर्मोदयजनितो लब्धिविशेष तीर्थंकरनामकर्मोदयस्य त्रयोदशगुणस्थान एवाभिहितत्वात्तथा चाहु:-"उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहिं च पूइओ होइ । तं तित्थयरनाम तस्स विवागो हु केवलिणो ॥ १ ॥ इति" । नाप्यर्हत्त्वसमानाधिकरणो विशेषगुण एवातिशय घातिकर्मक्षयोत्थानां केवलज्ञानादीनां सामान्यकेवलिसाधारणत्वात् । न चान्यव्यावृत्तिबुध्ध्युपधायकार्हत्त्वसमानाधिकरणो विशेषगुण एवातिशय लक्षणविशेषस्यापि तथात्वप्रसंगात् । नापि कश्चन शक्तिविशेषोऽनिर्वचनीयः तस्मादतिशयत्वमेवासिद्धमिति कश्चित् । अत्राभिदध्महे सहजदेवकृतक्षायिकत्वोपाधिभेदावच्छिन्नभेदप्रतियोग्यव्यासज्यवृत्तितीर्थंकरत्वसमानाधिकरणो विशेषगुण एवातिशय । नन्वेषां युगपदनुत्पत्तौ किं नियामकमिति चेच्छृणु सर्वत्र प्रतिबन्धकाभावस्तत्कारणमन्यथा तन्तुरूपं पटोत्पत्तिमनपेक्ष्यापि पटरूपं जनयेत्तस्माद्यथा तत्र प्रतिबन्धकाभाव कारणमेवमत्रापि प्रतिबन्धकं चात्र गर्भानन्तरज्ञानानुत्पादौ तौ च कारणीभूताभावप्रतियोगित्वेन कार्यकोन्नेयाविति प्रतिबन्धकापगम एव नियामक । चतुरादीनां च समकालोत्पत्तौ पञ्चाङ्गुलीनामिव प्रतिबन्धकाभाव एव नियामक इति सर्वमवदातम् । न तु सर्वमिदमनेनैव चतुस्त्रिंशदतिशयस्वाभित्वमेवार्हता मन्यामहे न तु केवलज्ञानोत्पत्तिसमनन्तरं चतुस्त्रिं-

न्देवातिशया प्राप्यन्त इति तस्माच्चतुर्थातिशयस्वामित्वमर्हतां छद्मस्थावस्थायामेव न तु सार्वकालिकमिति वाच्यम् । असत स्वामित्वायोगात् अतिशयानां चतुस्त्रिंशत्संख्याप्रतियोगित्वानुपपत्तेश्च सकलमेककालमवधाने तदभावात् तत्सत्त्वे च तदभावादिति । असतश्च स्वामित्वे गतदानवतो विगतिरवतप्राप्त्यैव चरितार्थं स्यात् । किं च कथं मेवं कदाचिदमहसलोऽपि यदेव प्रलेव इदः प्रवेशो नवतः अवरोध्यमानोऽपि किं नानुष्यमे श्रृणु जो "जम्मणमरण रित्ता चउतीस अइसए निसेविता । धम्मकहं च कहंता अरिहंता हुंतु मे सरणं" मित्यादौ चतुस्त्रिंशदतिशयवत्त्वं त्वया कथं व्यापनीयम् । तदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादिति चेत्तदत्यन्ताभाव एवातिप्रसंग । नावत्वे सतीति विशेषणादपि न साध्यसिद्धि गार्हस्थ्येऽपि चतुस्त्रिंशदतिशयवत्त्वव्यपदेश्यताप्रसंगात् । न चेष्टापत्ति तदानीमेव तीर्थंकरनामकर्मविपाक वदनप्रसंगात् व्यवहारविरोधित्वाच्च । व्यवहारानुरोधेन हि कल्पना न तु कल्पनानुगुण्येन व्यवहारस्तथा चार्षम्-"जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारनिच्छए मुयह । ववहारनउच्छेए तित्थुच्छेओ जओ भणिओ ॥ १ ॥" इति । सर्वं चैतत्सि द्धान्तपद्धत्यननुयायि पूर्वपक्षवचनमित्यग्रमुत्सूत्रप्ररूपणविसर्जितं । प्रमाणं चात्र अर्हन्त कवलाहारिणश्चतुस्त्रिंशदतिशय वत्त्वान्यथानुपपत्तेरिति । तदेवमर्हतां चतुस्त्रिंशदतिशयाभ्युपगमे कवलाहारित्वं मन्तव्यमेव । तथा च सामान्यकेवलि नामप्ययमनायासमाध्य एवेति प्रचिकटिषयोत्तरार्धं विभियत विशेषेति-सामान्यकेवलिनः कवलाहारिण तद्विशेषगतनि रूपाधिकतत्कर्मप्रतियोगित्वात् तत्कर्मश्च कवलाहारित्वम् न चाय भागासिद्धो हेतु पद्हेत्वोरेकावच्छेदकावच्छिन्नत्वात् एक चावच्छेदक सयोगिकेवलित्वमिति । ननु केवलिनो न कवलाहारिण सशरीरहितत्वादित्यनेन सत्प्रतिपक्षोऽयं हेतुरिति चेन्न

एतस्य क्षोभाद्याजावस्यापि साधकत्वेनाप्रयोजकत्वादिति सिद्धमेतेनानुमानेन केवलिनां कवलाहारित्वमिति ॥ ४ ॥ अमु-मेवार्थं पूर्वपक्षनिरासेन दृढयितुमिच्छु पूर्वपक्षमुपन्यस्यति–

व्यापकं कारणं कार्यं सार्वज्ञ्येन विरुध्यते । ननु तत्कवलाहारस्तेषां नाभ्युपगम्यते ॥ ५ ॥

टीका–व्याप्याधिकवृत्तिः व्यापकम् १ । अन्यथासिद्धिशून्येतरशाराधीनज्ञानकार्यप्रागभावावच्छिन्नसमयपरिमापित-नियतसमवधानप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्कारणम् २ । अनन्यथासिद्धनियतपश्चाद्भावि कार्यमित्येके ३ । एतदुपज्ञस्य स्वरूपसंबंधविशेष एव व्यापकत्व १ कारणत्व २ कार्यत्वं ३ च तत्प्रतियोगि व्यापकं १ कारणं २ कार्यं ३ चेति वस्तुगति । तथा च कवलाहारस्य व्यापकमाहारसंज्ञादि कारणं च बुभुक्षामोहनीयादि कार्यं च निद्रादि सार्वज्ञ्येन सह नावतिष्ठते । अय भाव.–यत्र खलु कवलाहार. समतिपन्नस्तत्र सातावेदनीयोदीरणमपि तथा च केवलिन सकाशात् सातावेदनीयोदी रणालक्षण व्यापक निवर्तमानं स्वव्याप्य कवलाहारमपि निवर्तयति व्याप्यनिवृत्तौ व्यापकनिवृत्ते रावश्यकत्वात् । न च वेदनीयो दयवत्केवलिना वेदनीयोदीरणापि भवत्येवेति वाच्यम् तस्या निषिद्धत्वात् तथा च कर्मस्तवे देवेन्द्रसूरय–“उदउदीरणया परमपमत्ताइ सगगुणेसु । एसा पयडि तिगुणा वेयणी आहारजुगल थीणतिगं । मणुयाउ पमत्तता अजोगि अणुदीरगो भयव ॥ १ ॥” सातासातमनुजायुषां हि प्रमादसहितेनैव योगेनोदीरणा भवति नान्येष्वेतरेषु न तदुदीरणेति सद्दी कायाम् । तथा नोकुभिक्षा क्षुत्क्षेति क्षुत्पाया इच्छारूपत्वेन तत्कर्मोदभंगयस्ययोगात्तत्कार्यमपि कवलाहारलक्षणं न

गच्छति । तथा यत्रात्मन्त्र निद्रा यत्राहारो न जवति तत्र निद्रादि न जवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां निद्रा आहार कार्यत्वात्तथारणातकेवलिनि कवलाहारानुपगम निद्राव्यापारो नास्तीत्यागम्य कवलाहारस्याकारणत्वानिर्णीतत्वात् केवलिनि कवलाहारो नानुपगम्य इति पूर्वपक्ष ॥ इति ॥ ५ ॥ अथैतदपि निरस्यति-

तदप्यसत्तस्य वेद्योदीरणं व्यापक न यत् । दर्शनावरणी निद्रा बुभुक्षा मोहजा न च ॥ ६ ॥

टीका–यदप्युक्त "सा दर्शन सह कवलाहारव्यापककारणकार्याणि निरस्यति ता न तथा कवलाहार" इति तच्च इत्यनुहरते नपुंसकादयस्प्रमत्तमनोरथम् । यतो यत्र कवलाहारस्तत्र सातावेदनीयाद्यस्तीति न व्याप्तिः निर्मिश्रिता दक्षत्वेन व्यभिचारात् । अथ यदि वेदनीयोदीरणेन व्याप्तिः स्यात्तदा कवलाहारिणां सामान्यया कार्यस्यात्ति पूर्णा तथापि ता कतिभिरितिनिवर्धोपदानादीनामपि निवृत्ति स्यात् । अथ कवलाहारकेवलिनो सातावेदनीयादीस्ता तत्र न स्यादिति यद्यज्ञान्यगुणानुत्तत्ते अत्र तदपि कथं नोत्पद्यत इति प्रश्नः मतिज्ञानावरणीयस्य केवलिनो न सद् भावादिति ब्रूम । ननु तर्हि कवलाहारेण कि कर्तव्यमिति चेत् क्षुद्वेदनोपशाम इति न व्यापकविरोध । नापि कारण विरोध यतो निद्रा दर्शनावरणस्य कार्यमिति जगति तदभावेनैव तदभाव बुभुक्षा वेदनीयस्य मोहजा न च न कवलाहारं प्रति कारण कि तन्निवारणमात्र प्रति तयोः कवलाहारकार्यकारणत्व स्वरूप मार्गाविरुद्धोऽस्तीति समाचारयैः । व्यागायस्तरयम्–जो नष्टाष्टमलानुयायिन् "कवलाहार सार्वज्ञ निरस्यत" इति यत्तत् गमत तत् निमाद्ल ? पार्

[illegible] न करोति २ [illegible]

[illegible] करणात् । न च [illegible]

[illegible] तथापि [illegible] तथा

[illegible] अन्यथा [illegible]

[illegible] । यथा [illegible] —"दिनस्य [illegible]

[illegible] ॥ यदि तृतीय [illegible] स्यात् ।

[illegible] । [illegible] सुन्दर [illegible] स्यात् ।

[illegible] । न च [illegible]

[illegible]

[illegible] । न [illegible]

[illegible]

[illegible] नाथ

[illegible] ।

[illegible]"

त्वाकुर्वं नदीपंक्तिनिर्वीरुद्गतोपरिनिर्वीरुच्छिन्नोपरिस्य [illegible]निरासात् । [illegible] गुह्य[illegible] [illegible]
गतोऽसार क्रुमाणोऽप्निरीक्ष्याण्णानासमरे [illegible]-"अत्र च विधा [illegible] [illegible]
निवृत्तिनिवृद्धिता पृथिव्यादय [illegible] [illegible]' । [illegible] [illegible] "[illegible] मोक्षग्निति [illegible]
पृथिव्यादीनामोषधीनां [illegible] पृथिव्याद्योऽग्नुपुनपृष्ठी[illegible]
मेव न गीर्वकाङ्क्षिणामिष्टायनमितय' इति [illegible] प्राङ्गिति न [illegible] नन्वे । [illegible]
धिहितीयस्यो[illegible] [illegible] प्रत्यासिद्ध । [illegible] प्रत्यक्षः कि [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]
अन्यथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
नापि [illegible] [illegible] किं वार्ता [illegible] [illegible] वा [illegible] [illegible] वा । [illegible]
[illegible] । अथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] । नापि [illegible]
निराकरिष्यमाणत्वात् । [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] । नापि [illegible] कि [illegible]
[illegible] वा नापि [illegible] [illegible] [illegible] । नापि [illegible]
करिष्यमाणत्वात् । अनायाति कर्म तत्कारणं [illegible] इति यदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पर्येण २ या । प्रथमपक्षेऽपि किं केवली कवलान् प्राप्नोति १ उत ग्रासानप्याहर्तुं न शक्नोति २ शक्तोऽपि वा विमलकेवलालोकपलायनशङ्कया नाहरति ३ । नाद्यद्वितीयौ अन्तरायकर्मण समूलकाष कषणात् । न च लाभान्तरायक्षयोपशम एव लाभप्रयोजक लाभान्तरायक्षयस्य तु शक्तिरूपमेव कार्यं न तु व्यक्तिरूपमिति तत्रापि योगक्षेमसाधारण्यात् तस्मा- यथा दानान्तरायक्षयेऽपि दान दातु शक्यते तद्वदत्रापीति न कोऽपि दोषावकाश अन्यथा त्वस्थसिद्धयोरन्तरासम्भवात् अन्तरायक्षयस्य तु दानादौ विघ्नाभाव एव फलम् । तथा चाहुर्जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणा –"दितस्स लभतस्स भुजतस्स व जिणस्स एस गुणो । खीणतरायगत्ते ज से विग्घ न सभवइ १ त्ति" ॥ नापि तृतीय तत्र हि कवलाहारविरोधि व्यापकं १ कारण २ कार्यं ३ सहचरादि ४ वेति पक्षचतुष्टयमुपतिष्ठते । तत्र नाद्य पक्ष सुन्दर कवलाहारस्य हि व्यापकं शक्तिविशेषाडुदरकन्दराकोणे क्षेप स च सार्वज्ञ्ये सुतरा सम्भवी वीर्यान्तरायकर्मण समूलमुन्मूलितत्वात् । न च वेदनी- योदीरणलक्षण व्यापक विरुध्यत इति वाच्यम् तस्या गतिस्थितिनिषद्योपदेशदानादीनामपि व्यापकत्वापत्तेर्दुष्परिहरत्वात् तस्माद्भस्थकवलाहारित्वस्यैव वेदनीयोदीरणाया व्यापकत्व युक्तिमत् । न चाहारसञ्ज्ञया सह विरोध प्रोष्णावनीय लोमा- हारस्याप्युच्छेदापत्ते । यतो यत्र कवलाहारित्व तत्राहारसञ्ज्ञेति व्याप्तिसद्भावात्कवलाहारव्यापकत्वमाहारसञ्ज्ञाया मन्यसे तत्र यय पृच्छाम किमर्थं कवलपदोपादान किमेकेन्द्रियादिषु व्यभिचाराद्वोध्भिज्जिनाना लोमाहारस्याप्युच्छेदापत्ते नाद्य- स्तेषामपि सूक्ष्मरूपसञ्ज्ञाभिधानात्तथा चार्षम्-"आहारभय परिग्गह मेहुण तह कोहमाणमाया य । लोभो लोगो ओहो दस सणा सव्वजीवाण १ त्ति" ॥ यत्तु भगवत्या-"तेसिण जीवाण णो एव तकाइ वा सणा इ वा पणाइ वा मणेइ वा वईइ वे"

त्यादुक्त तद्दीर्घकालिकीहेतुवादोपदेशिकीदृष्टिवादोपदेशिक्यन्यतमानिरधारम् । तथा च चतुश्चत्वारिंशत्तमद्वारे प्रवचनसा-
रोद्धारे हेतुवादोपदेशिकीव्याख्यानावसरे सिद्धसेनसूरय —"अत्र च निश्चेष्टा धर्माघर्मितारोऽपि तन्निराकरणप्रवृत्ति-
निवृत्तिनिरहिता पृथिव्यादय एकेन्द्रियो भवन्तीति" । तथा संग्रहणीवृत्तावपि "अत्र पञ्चाद्य मोहमपीति पञ्चाना
पृथिव्यादीनामोघसंज्ञा वृक्षारोहणाद्यभिप्रायरूपा संज्ञा पृथिव्यतेजोवायुवनस्पतीनामाहारादिसंज्ञोपलम्भः कर्मोपशमसामान्य
मात्र न दीर्घकालिक्यादिसंज्ञात्रयमित्यत्र" इति देवेन्द्रसूरयः प्राहुरिति बहु वक्तव्यमतद्विस्तरभयान्नेह तन्यते । अत्र क
श्चिद्द्वितीयपक्षोपन्यासी दिगम्बरो दिगम्बरमिति प्रत्यवतिष्ठते । स एव प्रष्टव्यः किं तव निरुक्तः कवलाहारेणापराद्धं यदा-
हारमदायास्तुच्छ्यमुक्त्यव्यापकत्वं कवलाहारमेव निषेधयामास । तस्मादेतत्सर्वं छद्मस्थकवलाहारित्वस्यैव व्यापकम्
अन्यथा सामान्यतः सर्वपदानुपादानेनाहारसंज्ञाया आहारित्वस्यैव व्यापकत्वसिद्धौ कवलिना क्षोमाहारस्याप्युच्छेदापत्ति ।
नापि कारणविरोधः यतस्तदपि किं बाह्यं निरुध्यते आभ्यन्तरं वा बाह्यमपि कवलनीयं वस्तु पात्रादिकं वा । नाद्य प्रमा-
णाभावात् । अथ सार्वज्ञ्यं कवलनीयवस्तुनिरूपणमसदादिज्ञानातिरिक्तज्ञानत्वादित्यस्त्येव प्रमाणं तत्र तज्ज्ञानेन व्यभि-
चारात् सार्वज्ञ्यं न कवलनीयवस्तुनिरूपणं ज्ञानत्वादस्मदादिज्ञानवदित्यनेन सत्प्रतिपक्षत्वाच्च । नापि द्वितीयमस्यानुपदर्शन
निराकरिष्यमाणत्वात् । आभ्यन्तरमपि न तावत्तैजसशरीरं निरुध्यते तत्राप्यननिमित्तत्वात् । नापि कर्म तदपि किं घात्य
घाति वा नाद्यो ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां ज्ञानदर्शनावरणदानाद्यपायमात्रचरितार्थत्वात् । नापि मोहोऽग्रे निरा-
करिष्यमाणत्वात् । अथाघाति कर्म तत्कारणं विरुध्यत इति यदि द्वितीयपक्षं कक्षीकुरुषे तदा वन्ध्यातनयके ...

[illegible] मदविगमात् । नापि कार्यं मात्स्यात् विरोधम-
[illegible] ३ पुरीतन्निगुणित वा ४ रिरंसा या ५ रस-
[illegible] ८ । [illegible] नगतीति नु तद
[illegible] । न द्वितीयो गमनाश्रयपि समानकर्म्यात् । न
[illegible] स्वस्य वा न द्यतो जुगुप्सामोहनीयकर्मणो निर्मूलितत्वात्
[illegible] तदनात् अन्यथा [illegible]
[illegible] युक्तो न [illegible] विनिष्टवे
[illegible] । अपि च [illegible] अनुदयादीर्ण [illegible]
[illegible] अनुदयादचक्षुर्दर्शनमेव
[illegible] ।
[illegible] हि [illegible] । [illegible] तथादर्शनात् [illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]
॥ ६ ॥ [illegible]

पात्रानानाद्धानविज्ञान्मोहानानादवृत्कित। परमौदारिकांगानां नु नाहारमंनत ॥ ७ ॥

टीका–ननु परमौदारिकांगानामस्मादादीनामपि विशिष्टशरीराणां कवलिनो "वणिगामान्यशास्त्रा अपि विशानापरं यत्ताविशेषवाचका" इति न्यायादाहारसंज्ञयः कवलाहारोपपत्ति जनति । तद्गतं नहं विशमं ना सर्वाज्ञिच्वारी रथारिपुरुतत्र तत्र कवलाहारमिति ब्याप्तिगतेऽपि कवलिसम्भवविरोधात्तथाप्यहो हेतुः गृहिता जराति । तथा यत्र वाहारकारणमदायौदारिकशरीरस्य गादयन मद विरोधर्थेनि कारणविरोधः । पुनः कस्मात्? पात्रानावात् पात्रमत्रा हि गृह्यात्तस्य जनितव्यमिति श्रीणमोहस्य जगतां धर्मं गणनीयमित्यपि कारणविरोध । पुन कस्मात्? ध्यानविज्ञात् न हि कवलनीयवस्तुप्रयोगसमये ध्यानं ध्यातुं पार्यते इति कार्यविरोधः । पुनः कस्मात्? मोहानाशात् आहारो हि तु ष्णापूरकः तुतुष्णा चाहारविषयमीत्यात्मिका मोहनीयप्रकृतिविशेष एव मोहश्च जगवता समूलकार्य कषित इति कारण विरोधः । पुन कस्मात्? अवृत्कितः वृत्त्वजारादित्यर्थः परमौदारिक हि शरीर न नीयते न शोषणीयत कवलाहारान्नु पगम स्वस्यसमेतन्तुपचय प्राप्नोतीति कार्यविरोध । तस्मात्कार्यकारणविरोधात् केवलिना कवलाहारो न प्रामाणिक इति श्वेतपटमतानुयायिनामाशय इति ॥ ७ ॥ अथैतमेव रचया निरस्यति–

अगनरपात्रधरणेऽप्यप्रमत्तस्य न क्षति । गतिरत् स न मोहोरथो न च ध्यान तदेष्यते ॥ ८ ॥

पुद्गलोपचयान्वृत्कित्सौदारिकशरीरिणाम् । जिनाना हि जवेत्तेन नम नमाटनाटकम्॥९॥युग्मम्॥

ममाज्ञामारोपय तथाविधाहारपर्याप्तिनामकर्मोदयवेदनीयोदययोस्तथापि सम्प्रतिपन्नत्वात् । नापि ज्ञायमानश्चायं दोषमधिरोहति यतस्तत् किं निद्रा वा १ ईर्यापथो वा २ विसूचिकादिव्याधिर्वा ३ पुरीषादिजुगुप्सा वा ४ रिरंसा वा ५ रसनेन्द्रियोद्भवमतिज्ञानं वा ६ परोपकारान्तरायो वा ७ अन्यद्वा ८ । नाद्यस्तस्या दर्शनावरणकार्यत्वात् भगवति तु तदभावादेव तदभाव कवलाहारस्तु घटं प्रति रासभ इवान्यथासिद्ध । न द्वितीयो गमनादावपि समानत्वात् । न तृतीयो हितमिताहारान्यवहारात् । नापि तुर्यस्तत्किं स्वस्यैव वा परस्य वा न प्रथमो जुगुप्सामोहनीयकर्मणो निर्मूलितत्वात् न द्वितीयोऽर्हतां हि आहारनीहारौ मांसचक्षुषामगोचराविति सहजातिशयप्रतिपादनात् अन्यथा सकलगुण सुरनरपरिवृढसहस्रसंकुलायामासीनस्य भगवतो नाल्पमपि युतो न जुगुप्साहेतुरिति सामान्यकेवलिनोऽपि निर्जनस्थाने तत्करणाद्दोषाभाव । नापि पञ्चमो मोहनीयकर्मणः समूलनिर्मूलनात् । नापि षष्ठो नानाविधकीलिकाविचकिलमन्दार-पुण्डरीकचम्पकप्रभृतिकुसुमप्रकरप्रसरपरिमलसम्बन्धेन घ्राणेन्द्रियज्ञानवत्तावन्मात्रेण रसनेन्द्रियज्ञानस्याप्युदयात्तत्कुतोऽत्र तत्र कारणमिति निष्टङ्कयाम । नापि सप्तमस्तृतीययाममुहूर्तमात्र एव भगवता भुक्तेः शेषसमयेऽपि परोपकारकरणात् । नाप्यष्टमोऽनिर्वचनात् । नापि सहचरादिविरोध यतस्तत् किं छद्मस्थत्वमन्यद्वा । नाद्योऽस्मदादौ तथादर्शनात् न साह-चर्यनियमाभ्युपगमेऽघातिकर्मणामपि तत्सहचरं स्यात् तथा च केवलिषु कवलाहाराभावसाधनायोपन्यस्तयुगपन्नस्या स्यात् । अन्यत्तु करचरणचालनादि भवति तत्सहचरं न तु केवलित्वेन विरुद्धमिति । सर्वमेतच्छ्रीरत्नाक-रावतारिकाया क्षुण्णधिया सुज्ञेयमिति ॥ ६ ॥ पुनरपि तत्कारणविशेषविरोधं शोधते—

पात्राज्ञानाद्ध्यानविघ्नान्मोहाभावादभुक्ति। परमौदारिकांगानां ननु नाहारसंज्ञन ॥ ७ ॥

टीका-ननु परमौदारिकांगानामस्मदाद्यपेक्षया विशिष्टशरीराणां केवलिनां "क्वचित्सामान्यशब्दा अपि विशेषतात्पर्यपराः भवन्ति" इति न्यायादाहारसंज्ञक कवलाहारोपपत्तिर्न भवति । हेतुगर्भं चेदं विशेषणं तेन यत्रौदारिकशरीरत्वं तत्र कवलाहारित्वमिति व्याप्तिभंजनेऽपि केवलिनस्तद्विपरीततत्साधको हेतुः सूचितो भवति । तथा कव लाहारकारणस्मदाद्यौदारिकशरीरस्य मानवेन सह विरोधश्चेति कारणविरोधः । पुनः कस्मात्? पात्राज्ञानात् पात्रसज्ञानं हि पूर्वोक्तमवश्यं भवितव्यमिति क्षीणमोहेन भगवता कथं तद्ग्रहणीयमित्यपि कारणविरोधः । पुनः कस्मात्? ध्यानविघ्नात् न हि कवलनीयसम्प्रदानसमये ध्यानं ध्यातुं पार्यते इति कार्यविरोधः । पुनः कस्मात्? मोहाभावात् आहारो हि क्षुत्पूर्वकः क्षुधा चाहारविषयशीलात्मिका मोहनीयप्रकृतिविशेष एव मोहश्च भगवता समूलकाषं कषित इति कारणविरोधः । पुनः कस्मात्? अभुक्तेः भुक्त्यभावादित्यर्थः परमौदारिकं हि शरीरं न क्षीयते न चोपचीयते कवलाहाराभ्युपगमे तदवश्यमेव भुक्तमपायं प्राप्नोतीति कार्यविरोधः । तस्मात्कार्यकारणविरोधात् केवलिनां कवलाहारो न प्रामाणिक इति स्याद्वादमतानुयायिनामाशय इति ॥ ७ ॥ अथान्तरोक्तदूषणं निरस्यति-

अगवत्याग्रधरणेऽप्यप्रमत्तस्य न क्षति । गतिवत् स न मोहोत्थो न च ध्यानं तदीर्यते ॥ ८ ॥

पुद्गलोपचयाद्वृद्धिस्तौदारिकशरीरिणाम् । जिनानां हि भवेत्तेन जन्म नष्टाटनाटकम् ॥९॥युग्मम् ॥

टीका–अप्रमत्तस्य मूर्छारहितस्य शरीरवस्त्रधरणेऽपि न कोऽपि दोषः । यथा पात्र मूर्छाजनकमेव शरीरमपि मूर्छाजनक गुमतीतमेव । ततश्च शरीरे यदि न मोहस्तर्हि पात्रादावपि कौतस्कुत इति न पात्रादिकारणविरोध । अथ मोहलक्षणकारणविरोध परिजिहीर्षन्नाह–गतीति स कवलाहारो मोहोत्थो मोहजन्यो न भवति गत्यादिवत्, कवलाहारो हि अस्मदादिषु मोहपूर्वक एव दृश्यत इति कृत्वा केवलिनि तदभावोऽभ्युपगम्यते । तथा च गत्यादीन्यपि अस्मदादिषु मोहसहकृतान्येवोपलभ्यन्त इति केवलिनो मोहाभावेन तदभावस्याप्यशक्यपरिहारत्वात्कुतस्तीर्थप्रवृत्ति । तथा यथा गत्यादिधर्मेष गत्यादीना कारण न मोहस्तथा तथाविधाहारपर्याप्तिनामकर्मोदयसहकृतो वेदनीयोदय एव कवलाहारस्य कारण न मोह इत्यपि प्रतिपद्यताम् । तथा च श्रीरत्नाकरावतारिकाया रत्नप्रभाचार्या –"तथाविधाहारपर्याप्तिनामकर्मोदयवेदनीयोदयप्रभवप्रभवदौदर्यज्वलनोपतप्यमानो हि पुमानाहारमाहारयतीति" न मोहलक्षणकारणविरोध । अथ ध्यानविघ्नलक्षण कार्यविरोध निरस्यति–न चेति । तदा शैलेशीकरणात्प्राक् ध्यान सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिसञ्ज्ञकं शुक्लध्यानतृतीयपादलक्षण नेष्यते नाभ्युपगम्यते सैद्धान्तिकैरिति शेष इति न ध्यानविघ्नलक्षणकार्यविरोध । अथ चतुर्थपञ्चमपक्षे दूषयति–पुष्टेति । शरीरस्य हि वृद्धि पुद्गलोपचयाद्भवति । न चाहाराभावादेव तदभावसिद्धिरिति अन्योऽन्याश्रयापातात् तस्मात्पुष्टिलक्षण कार्यविरोधोऽपि न भवति । तथौदारिकशरीरिणामित्येतेन तदभिमत परमौदारिकत्व निरस्त । तन्निरासस्त्वग्रे स्फुटीकरिष्यते । तदेव पूर्वोक्ता दिगम्बरविकल्पा श्वेताम्बरसिद्धान्तवचनैरत्यत कदर्थिता क्षणमप्युच्छ्वसितुमशक्ता स्वयमेव पचत्व

१ पक्षे

मात्रा इति । ननु गच्छतीति नग्नाटः क्षपणकस्तस्य नाटकमिव नाटकं प्रतिज्ञातत्यागादप्रतिज्ञातोपादानाच्च चापल्यानुरूप
पूर्वपक्षयन नग्नं रिक्तमिति श्लोकद्वयसमासार्थः व्याख्यार्थस्त्वयम्-यत्तावद्दिगम्बरा मन्यन्ते यद् पात्रादिविरोध प्रात्रा
भवन्ति तत् किं स्वरूपमात्रेण वा १ ममकारकारणत्वाद्वा २ त्रसस्थावरयतनाभावेन विरोधित्वाद्वा ३ जुगुप्साहेतुत्वाद्वा ४
आगमनिषेधाद्वा ५ तत्प्रमादे केवलानुत्पत्तौ ६ आत्मनो मद्यागमत्वाद्वा ७ अन्यस्माद्वा ८ इति । तत्राद्यो विकल्पो
नोपतिष्ठते । तत्र नाद्यः पक्षः सुन्दरः भगवतामहतां पाणिपात्रत्वेन केवलज्ञानोत्पत्त्यनन्तरमपि तत्तत्रान्यानयनादिव्यवि
यादानसद्भावात् । १ । नापि द्वितीयः शरीरसद्भावेऽपि तत्राभावात् । अथ क्षीणमोहस्य भगवतो न शरीरे ममत्वमन्तर
इति चेत्तदितरस्यापि तुल्यम् अस्मदादिषूत्पन्नत्वेऽपि तत्राप्रदर्शनात् तस्मात्सामान्यात्परिग्रहस्य ममकारकारणत्वे मानाज्ञा
या गृहीतद्रव्यस्येव तस्य ममकारकारणत्वम् । २ । नापि तृतीयः यतस्तेनापि किं स्वरूपमात्रेणैव विरोध १ ममकार
कारणत्वाद्वा २ निन्दानुपदिष्टत्वाद्वा ३ परिमदन्यत्वाद्वा ४ नाद्यस्तत्रानिमत्तस्य करपात्रित्वस्याप्यनुपपत्तेः । न द्वितीय
तस्य समनन्तरपक्षप्रकारेणैवोपक्षीणत्वात् । अथ पात्रस्यादानमोक्षयोर्मोहस्यादि उत्थानोपवेशनादावपि न तुल्य गत ।
नापि तृतीयः तस्य सिद्धान्तेऽनुज्ञातत्वादेव । तथा चागमः-"जं पि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुंछणं । तं पि संजमल-
ज्जट्ठा धारेंति परिहरंति य ॥ १ ॥" श्रीदशवैकालिके न च कारणिकमिदमसमर्थस्याहतास्मदादीनां धर्ममनुचितमिति
वाच्यम् आहारस्यापि कारणिकत्वेन सर्वेषामप्यनुचितत्वापत्तेः तथा चार्षम्-"छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारमा
हारमाणे नाइक्कमइ तंजहा-वेयणवेयावच्च इरियट्ठाए य संजमट्ठाए । तह पाणवत्तियाए छट्ठं पुण धम्मचिंताए त्ति ॥

दिति संगम । आहारग्रहणादिकमाहारयन्नपि न तद्रसादिकमत्याक्षीत् पुष्टाङ्गजननत्वात् अन्यथा त्वतिक्रामत्येव रागादि-
गाथा । यथा वेअण" गाहा क्षुद्वेदना १ वैयावृत्त्यमाचार्यादिकृत्यकरण २ वेदनवैयावृत्त्य भुञ्जीत वेदनोपशमनार्थं १
वैयावृत्त्यकरणार्थं २ चेति भावः । ईर्या गमनं तस्या विशुद्धिर्युगमात्रनिहितदृष्टित्वमीर्याविशुद्धिस्तस्यै ईर्याविशुद्ध्यर्थम् ।
... प्रेक्षाप्रमार्जनादिरूपसंयमार्थम् । बुभुक्षितो हीर्याशुद्धावशक्तः स्यादिति तदर्थमिति । च समुच्चये । संयम
... तदर्थं । तथेति कारणान्तरसमुच्चये । प्राणा उच्छ्वासादयो यद्वा ते तेषां तस्य वा वृत्ति पालन
... मित्यर्थः । षष्ठं पुनः कारणं धर्मचिन्तायै गुणनानुप्रेक्षार्थमित्यर्थः । इत्येतानि षट् कारणानीति । तस्मात्
... वेषादारम्भणं मुक्ते नहि पात्रादिग्रहणमपि यतीनां कथमयुक्तमिति मुधा शिवभूतिना विप्रतारितोऽसि ।
... निरवद्य ... एव वस्तुत परिग्रहरूपत्वात् अन्यस्य तु शरीरस्येवातथात्वात् । तथा
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा । मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इय वुत्तं महेसिणा ॥ १ ॥ इति" श्रीदशवै
... जं पि वत्थं व पायं वा कंबलं पायपुंछणं । तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति य ॥ १ ॥ तथाह
... । न ममत्वरिग्गहोचिअ परिग्गहो ज तहाचारी ॥ २ ॥" तस्मात् किं नाम तद्वस्त्वस्ति
... मूर्च्छा ... वा । ... नदित्यर्थः । ननु यत्र यत्र वस्त्रादौ देहादावपि मूर्च्छा समुत्पद्यते
... । यत्र तु सा नोत्पद्यते तदग्रन्थ इति । एतदेव ...

मित्यादि । किं च पात्रादिकं विना यतीनामादाननिक्षेपणासमितिपारिष्ठापनिकासमिती कथं भवत यतो नत्पात्रादि धर्मोपकरणमुपलभ्यत एव त भवत । यत उक्तम्–"उंहोरहोवग्गहियं नरुग डुविह मुणी । गिद्दतो निखितो या पउं जिज्ज इम विहिं ॥ १ ॥ चक्खुसा पडिलेहित्ता पमज्जिज्ज जय जई । आइज्ज निक्खिविज्जा वा दुहा वि समिए सिया ॥ २ ॥ इति" तथा–"उंच्चार पासवण खेल सिंघाणजल्लियं । आहार उवहिं देहं अण्णं वा वि तहाविहं ॥ १ ॥ विविक्ते दूरमोगाढे नासन्ने बिलवज्जिए । तसपाणबीयरहिए उच्चाराईणि वोसिरे ॥ २ ॥" इति श्रीउत्तराध्ययन २४ । तथा च समि त्यायुपयुक्तपात्रादिधर्मोपकरणधरणं संयतानामुचितमत्र । ननु तर्हि तीर्थकृतामपि पात्राद्यभावेऽस्यमितीनामभावेन समितिपञ्चकाद्यभाव आपद्यत इति चेन्न अच्छिद्रपाणित्वमनुत्तरधृतिमत्त्वान्न तथा पात्राद्यभावेऽस्यमितीनामभावेन तत्प्रतिपत्तिहेतुनां समितीनामत्र गत्रावात् अन्यथा तु पात्राभावे मौनं न क्रियमाणं स्निग्धदुग्धादिबिन्दूनामधःपातात् तद्गन्धाकृष्टानां समुदितानां पिपी- लिकादीनां कस्यचित्पादादिन्यासेन कृतान्तसदनप्रापणं कस्य न दुःखं कृतान्तं दुष्यतीत्यनुमतिप्रसङ्गेन । ३ । नापि चतुर्थः पञ्चमः शीलत्वाच । ४ । नापि पञ्चमः पात्रनियमलब्धिरहितानां यतो न जुगुप्साहेतु वर्तमानपर्यायात्मकत्वेन मामाणिक्यत्वाभावतो जुगुप्सामोहनी गत्यभावात्रय पात्रधारिणस्यास्माकमनिमित्तत्वात् । किं च वस्त्रमपि चेत् सांशयेन निरोधमधिरोहति तर्हि कस्यचिदाक-

१ मण्डलादीनि गोचरस्य प्रतिलिख्य च यतनः । गृहीतादिनिक्षिप्तश्च वस्त्रादानसमितिमता ॥ १ ॥ वस्त्रादिनिक्षेपमन्यस्य निर्गुणमनीतत्व । यत्रापि दुग्धेऽपाणौ गोचरगतमिति भवति ॥ २ ॥ इति योगशास्त्रे । २ न दुग्धारसप्रवरणादीनां पात्र विना परिष्ठापने असतीत्यनेनापि पात्रग्रहणमाक्षिप्यत एव

मिश्रचीवरमध्येऽपेलत्समपि केवलज्ञानं विलीयेत सहानवस्थायित्वस्यैव निरूढत्वग्रहणात् । यथा दूरीकृत्यापि तिमिर निकरं गगनमण्डलमखण्डं प्रकाशयन् मार्तण्डमण्डलप्रकाशो दुर्दिनेनाभ्रियत इति । न च छद्मस्थानामपि संयतानां वस्त्र धर्तुमनुचितमिति कुतो न केवलिनामपीति वाच्यम् एतस्य पात्रविरोधनिराकरणेनैव निराकृतकल्पत्वात् । न च "जिताचे लपरीषहो मुनि" रिति वचनश्रवणाचेल वस्त्रधरणं न युक्तिमत् एवं हि क्षुत्परीषहनिजयस्याप्याहाराभावेनैव साध्यत्वा-दीक्षाग्रहणानन्तरमेव यावज्जीवमनशनमायातम् । तस्माद्यथानेषणीयभक्तत्याग एषणीयोपभोगे च क्षुत्परीषह-विजय एवं [illegible] [illegible]विजयोऽप्येषणीयवस्त्रपरिभोगे न तु सर्वथा तदनुपभोगेनेति बहुवक्तव्यमेतद्विस्तरभयान्नेह

[illegible]र्पितं तत्राहि पात्रस्य केवलज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वं किं स्वरूपमात्रेण ममकारकारणाद्वा। [illegible]याद्यस्यदर्शनमिव सहृदयहृदयचमत्कारकारणम् अर्हतां पाणिपात्रत्वेन केवलज्ञानानुत्पत्ति-शरीरसद्भावेऽपि तदभावप्रसङ्गादित्याद्यूहितमपि किं न बुध्यसे । ५ । नापि सप्तम भामण्डलादी-

रोधित [illegible]नापि सह मयोग सम्बन्धो वर्तत एवेति चेदत्रापि धार्यधारकभावसंबन्ध कथं न

[illegible] बुध्यस्थित पात्रकेवलकारणविरोधनिराकरणस्थलम्। अथाहारस्य मोहकार्यत्व

[illegible]आहाराभावान्मोहाभाव तथा च क्षीणसकलघातिकर्मणा केवलिना विचार्य-

य राग-मोह किं बुभुक्षालक्षण कारण सामान्येन वा आद्येऽपि किं सर्वत्रापि

[illegible]नारात् । अथ क्रिया इच्छापूर्विका क्रियात्वात् सम्प्रतिपन्नभुजिक्रियावदित्यनुमानमेव

नत्याधकमन्नीति यत्र सुखमत्तमूर्छितादिक्रियानिव्यभिचारात् । न च स्वतंत्रेति विशेषणोपादानेऽपि साध्यसिद्धिः पक्ष
नावच्छेदकावच्छिन्नायां सुखमत्तमूर्छितादिक्रियाया स्वतन्त्रक्रियात्वस्यावृत्त्या हेतोर्भागासिद्धत्वात् । नन्वेवमनुमानमात्रोच्छेदा
पत्तिः पर्वतोऽयमग्निमान् धूमवत्त्वात् महानसवदित्यत्र धूमवत्त्वस्यापि हेतो पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वाभावेन भाग
सिद्धत्वात् । तत्र धूमवत्त्वस्य पक्षतावच्छेदकमिति चेदनापि स्वतन्त्रक्रियात्वमत्र पक्षतावच्छेदकमात्मत्वमिति चेत्तथापि
करचरणादिनिरोधादिनिव्यभिचार । अत्र कश्चित्कर्मा मूढमति कालानुशासनेनेन शक्ते—ननु गत्यादय कंत
त्रिनां न जनति मोहसहकृतत्वात् । किं तर्हि यत्रोपविष्टस्योर्ध्वदमस्य वा यदा केवलज्ञानमुत्पन्न तत प्रवृति स केवली
उपविष्ट ऊर्ध्वदमो वा स्यात् परिममासि यावच्चियति पूर्वकोट्यावतिष्ठत न चैव तस्य काचिद्वेदना सञ्जनति मोह
नाशात् वेदनीयोदयस्य नि मत्ताकत्वादिति स तावत्सम्भूतवादी सर्वनिन्दवादी सनादयितुमप्यनर्हं तीर्थंकृत्तरप्युक्तदा
नाशात् विहायोगतिनामकर्मोदयादिविषयव्याघाताच्च । यत्तु तेन वेदनीयोदयस्यनि मत्ताकत्वमुक्त तदपि मन्दम् अनाग
मिकत्वात् आगम हि अत्यन्तोदय सातस्य कदाचिन्यभिधीयते । तथा चोक्तम्—"ज च कामसुहं लोए ज च दिव्वं महा
सुहं । वीयरागसुहस्सेय णन्तभागंपि णग्घइ" ॥ १ ॥ इत्यादि । सातासातयोश्चान्तर्मुहूर्तमानतया यथा सातोदय एव
प्रमातोदयोऽपि । न चैवं भगवतामसुख मत्तानतः सममपि कदाचिन्नापतित सातोदयस्य प्रशामस्यपारपरतन्त्रत्वात् असातो
ऽपि पुनः क्षुदादि कवलाहारादिनिमित्तभाद्रा रोगादिश्चेयस्तु कालान्तिक । यत्तु कवलिनां वेदनीय शम जरद्वस्त्रप्रायमिति
सातासि यत् तदपि सातस्नीयबन्धमात्रपरमिति सूत्रकृताङ्गवृत्तिकृतोऽभिप्रायमनुसृत्य व्याख्येयं । द्वितीय तु सिद्ध न

॥ १२ ॥ ततः सूक्ष्मवपुर्योगं स्थितिं कृत्वा क्षणं हि सः । सूक्ष्मक्रियं निजात्मानं चिद्रूपं विदति स्वयम् ॥ १३ ॥ समुच्छिन्ना
क्रिया यत्र सूक्ष्मयोगात्मिकापि हि । समुच्छिन्नक्रियं प्रोक्तं तद्द्वारं मुक्तिवेश्मनः ॥ १४ ॥ इति गुणस्थानक्रमारोहः । तत्र च
पूर्वपादद्वये ध्याते सति अग्रेतनपादद्वयमप्राप्यैव केवलज्ञानमुत्पद्यते तृतीयपादध्यानं तु शैलेशीकरणारम्भ एव भवति
नारोहः । न च कवलाहारमनभ्युपगच्छद्भिरपि तृतीयपादध्यानं तदानीं सुसाधं बादरकाययोगनिरोधित्वात्तस्येति ध्यानविघ्न
लक्षणकार्यविरोधनिराकरणम् । अथ शरीरवृद्धिलक्षणकार्यविरोधं निराकरोति-पुष्टेति । तत्र शरीरवृद्धिः सार्वज्ञ्येन
विरुध्यत इत्यत्र किं प्रमाणम् औदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वादित्यनुमानमिति चेत्तर्हि "मम माता च वन्ध्या चेति" न्याय
मापन्नः । यतः किं नामौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वमौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठत्वं तद्वृत्तित्वे सति तदितरावृत्तित्वं वा ।
नाद्यः पक्षः सुन्दरो यत एतेन सार्वज्ञ्यानिरूपकत्वमेव साध्यते न तु तद्विपरीतत्वम् । यतस्तदौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठ
त्वेऽवच्छिन्नशरीरनिष्ठमपि कथं न भवतीति हेतोरनिर्वचनात् । न द्वितीयस्तस्याप्यतदर्थपर्यवसायित्वात् । न हि गोवृत्तित्वे
सति गवितरावृत्ति गोत्वं गोत्वावच्छिन्ननिष्ठं न भवतीति वक्तुं पार्यते । अथ परमौदारिकभिन्नौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वं
विवक्षितमिति चेत्तत्रापि भिन्नत्वं यदि सामान्यतोऽन्योऽन्याभावप्रतियोगित्वं तर्हि स्वरूपासिद्धिः । अथ स्वात्मवदभयो
ऽवच्छेदप्रतियोगित्वं भवत्यपि गत्यादिनिदर्शनन्यायादिभिश्च व्यभिचारः । अथौदारिकशरीरवृद्धिः सार्वज्ञ्यविरुद्धा आहार
महागमतालाधिकरणत्वाभिमति धर्मौदारिकशरीरेणैव व्यभिचारः । कवलाहारजन्यत्वादित्यपि न साधकम् एकेन्द्रियादिशरी
राणां कवलाहारजन्यवृद्ध्यदर्शनेन भागासिद्धः दृष्टान्तीकृतानां निजादीनां तज्जन्यत्वासिद्धेर्विपरीतसाधकत्वाज्ञाननामयो

[illegible] नत्रयात्मकस्य मिद्धत्वात् । न द्वितीय गत्यादीनामनुदयात् ।
[illegible] यथा स्त्रीवेदिकालिका तुलिनि प्रतिबद्धानिति
[illegible] निराकरोति न चेति । शुक्लध्यान तार
[illegible] २ सूक्ष्मक्रियमनिवृत्ति ३ समुच्छिन्नक्रि-
[illegible] । त्रियोगयोगिन साधोराद्य शुक्ल मुनि-
[illegible] । [illegible] त्रयात्मकम् ॥ २ ॥ स्वशुद्धा-
[illegible] सवितर्कम् ॥ ३ ॥ अर्थाद्यान्तरं शब्दानु-
[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] यानि गुणाद्यानि गुणान्तरम् ।
[illegible] सवितर्कगुणान्वितम् । स ध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यानं
[illegible] । निश्चलं चिन्तनं यत्र [illegible] विदुर्बुधा ॥ ७ ॥ सदसन्-
[illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] सूक्ष्मा क्रिया यथा
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] सूक्ष्मा [illegible] । सूक्ष्मी
[illegible] सूक्ष्मकायस्थितः [illegible] । सूक्ष्मा [illegible] सूक्ष्म
[illegible]

॥ १२ ॥ तत सूक्ष्मतनुयोगे स्थिति कृत्वा क्षणं हि स । सूक्ष्मक्रिय निजात्मानं चिद्रूपं विदति स्वयम् ॥ १३ ॥ समुच्छिन्ना
क्रिया यत्र सूक्ष्मयोगात्मिकापि हि । समुच्छिन्नक्रियं प्रोक्तं तद्द्वारं मुक्तिवेश्मनः ॥ १४ ॥ इति गुणस्थानक्रमारोहे । तत्र च
पूर्वगतश्रुत ज्ञात मति अपरत्वाद्द्रव्यमभ्यासम्यंत केवलज्ञानमुत्पद्यते तृतीयपादध्यानं तु शैलेशीकरणारम्भ एव जायते
नाशात् । न च कवलाहारमनन्तवीर्यवद्भिरपि तृतीयपादध्यानं तदानीं सूक्ष्म बादरकाययोगनिरोधित्वात्तस्येति ध्यानविघ्न
तत्पूर्वकार्यविरोधनिराकरणम् । अथ शरीरवृद्धिकारणकार्यविरोध निराकरोति-पुद्गलेति । तत्र शरीरवृद्धि सार्वत्र्येन
विकल्प्यन्त्र यत्र किं प्रमाणम् औदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वादित्यनुमानमिति चत्तर्हि "मम माता च वन्ध्या चेति" न्याय
गतः । यत किं नामौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वमौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठत्वं तद्वृत्तित्वे सति तदितरावृत्तित्वं वा ।
नाद्यः यतः मुक्तो यत्र ज्ञान सार्वज्ञ्यादिकल्पनमत्र साध्यते न तु तद्विपरीतत्वम् । यत्तदौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठ
त्वमौदारिकशरीरनिष्ठमपि कथं न भवतीति इत्यादिविकल्पनात् । न द्वितीयमस्याप्यतदर्थपर्यवसायित्वात् । न हि गोवृत्तित्वे
सति गविताराहृति गोत्व गोत्वावच्छिन्ननिष्ठं न भवतीति वस्तु पार्थत । अथ परमौदारिकनिरौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्व
विवक्षितमिति चेन्न तथापि विवक्षितं यदि सामान्यतोऽन्योन्याभावप्रतियोगित्वं तर्हि स्वरूपासिद्धिः । अवस्थाभेदभयो
न्यन्दप्रतियोगित्वं तथापि सत्यादिनिन्दाननत्वादिभिश्च व्यभिचार । अथौदारिकशरीरवृद्धि सार्वज्ञ्यविरुद्धा आहार
महानसानाधिकरणत्वादिति चेदौदारिकशरीराणां व्यभिचार । कवलाहारजन्यत्वादित्यपि न साधकम् एकेन्द्रियादिशरी
राणां कवलाहारजन्यत्वदर्शनात् नागामिकः इष्टा तीर्थकृतानां निगोदीनां तज्जन्यत्वासिद्धेर्विपरीतबाधकतर्काभावेनासयो

[illegible] मिद्धत्वात् । २ द्वितीय गत्यादीनामप्युच्छेदापत्ते ।
[illegible] श्रेणीयान्निकायिका तुरिगि प्रतिपद्यतामिति
[illegible] निराकरोति-न चेति । शुक्लध्यानं तार
[illegible] २ सूक्ष्मक्रियमनिवृत्ति ३ समुच्छिन्नक्रि-
[illegible] । त्रियोगयोगिन साधोराद्य शुक्लं मुनि-
[illegible] । [illegible] ॥ २ ॥ स्वशुक्ला
[illegible] ॥ ३ ॥ अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छ-
[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] यानि गुणात्याति गुणान्तरम् ।
[illegible] सवितर्कगुणान्वितम् । स ध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्याना
[illegible] । निश्चयं नियतं यत्र तदेकत्व [illegible] ॥ ७ ॥ यत्रांत
[illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] सूक्ष्मा क्रिया यत्रा-
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] स्थितिं कृत्वा [illegible] । सूक्ष्मी
[illegible] ॥ १० ॥ [illegible] विनिधम् । [illegible]
[illegible]

॥ १२ ॥ ता सूक्ष्मतनुयोग स्थिति कृत्वा क्षण हि स । सूक्ष्मक्रिय निजात्मान चिद्रूप विदति स्वयम् ॥ १३ ॥ समुच्छिन्ना क्रिया यत्र सूक्ष्मयोगात्मिकापि हि । समुच्छिन्नक्रिय प्रोक्त तद्द्वार मुक्तिवेश्मनः ॥ १४ ॥ इति गुणस्थानक्रमारोहे । तत्र च पूर्वपादद्वय ध्यात सति अप्रतनपादद्वयमप्राप्तस्यैव केवलज्ञानमुत्पद्यते तृतीयपादध्यान तु शैलेशीकरणारम्भ एव जवति नाशङ्क । न च कवलाहारमन युपगच्छद्भिरपि तृतीयपादध्यानं तदानीं सुसाध बादरकाययोगनिरोधितत्वात्तस्येति ध्यानविघ्नकवलाहारविरोधनिराकरणम् । अथ शारीरवृत्तिनिमित्तककार्यनिरोध निराकरोति-गुरुत्वेति । तत्र शारीरवृत्ति सार्वज्ञ्येन विरुध्यत इत्यत्र किं प्रमाणम् औदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वादित्यनुमानमिति चेत्तर्हि "मम माता च वन्ध्या चेति" न्यायप्रसङ्गः । यत किं नौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वमौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठत्व तद्वृत्तिमत्त्वे सति तदितरावृत्तित्व वा । नाद्यः पक्ष गुरुत्वे यत एतत सार्वज्ञ्यादिकत्वमेव साध्यते न तु तद्विपरीतत्वम् । यतस्तदौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठत्वं तद्भिन्नशरीरनिष्ठमपि कथं न भवतीति हेतोर्विरुद्धत्वात् । न द्वितीयस्तस्याप्येतदर्थपर्यवसायित्वात् । न हि गोवृत्तित्वे सति गोभिन्नावृत्ति गोत्व गोत्वावच्छिन्ननिष्ठ न भवतीति यत्तु चार्वत । अथ परमौदारिकभिन्नौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्व विवक्षितमिति चेन्न तथापि विवक्षत यदि सामान्यतोऽन्योऽन्याभावप्रतियोगित्व तर्हि स्वरूपासिद्धि । अवस्थान्तरभेदोऽन्यत्वप्रतियोगित्वं चेत्तथापि गत्यादिनिदर्शनतयाभिनिवेश व्यभिचार । अथौदारिकशरीरवृत्ति सार्वज्ञ्यविरुद्धा आहार सहायमात्राधिकरणत्वादिति चेदौदारिकशरीरवृत्त व्यभिचार । कवलाहारजन्यत्वादित्यपि न साधकम् एवमिन्द्रियादिशारीराणां कवलाहारजन्यत्वदर्शनेन नागासिद्ध दृष्टान्तीकृतानां निद्रादीनां तज्जन्यत्वासिद्धेर्विपरीतबाधकतर्काभावेनाप्रयो

[illegible] न वेदनीयाभावाय वेदनीयादि कारणकस्य कवलाहारस्य सिद्धत्वात् । न द्वितीय गत्यादीनामप्युच्छेदापत्ते । तथा च यथा गत्यादिकमभ्युपगत गत्यादिक केवलिन्यभ्युपगन्तव्य तथा वेदनीयादिकारणिका क्षुत्तिरपि प्रतिपद्यतामिति [illegible] भेदवार्तानिराकरणस्थलम् । अथ ध्यानविभक्त्यणकार्यविरोध निराकरोति--न चेति । शुक्लध्यान ताव [illegible] । तद्यदि । पृथक्त्ववितर्क सवीचारम् १ अपृथक्त्ववितर्कमवीचारम् २ सूक्ष्मक्रियमनिवृत्ति ३ समुच्छिन्नक्रि-[illegible] ४ । लक्षणानि चामूनि- सवितर्क सवीचार सपृथक्त्वमुदाहृतम् । त्रियोगयोगिन साधोराद्य शुक्ल सुनि-[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] वितर्क स्यात्सवीचार सक्रमो मत । पृथक्त्व स्यादनेकत्व जयत्येतत्त्रयात्मकम् ॥ २ ॥ स्वशुद्धा-[illegible] अवलम्बनात् । अन्तर्जल्पो वितर्क स्याद्यस्मिंस्तत् सवितर्कजम् ॥ ३ ॥ अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छ-[illegible] भेदस्य । योगाद्योगान्तरे यत्र सवीचार तदुच्यते ॥ ४ ॥ द्रव्याद्द्रव्यान्तर याति गुणाद्याति गुणान्तरम् । [illegible] ॥ ५ ॥ अपृथक्त्वमवीचार सवितर्कगुणान्वितम् । स ध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यान [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] वा पर्यायमथवा गुणम् । निश्चल चिन्त्यते यत्र तदेकत्व विदुर्बुधा ॥ ७ ॥ यद्व्यज-[illegible] । चिन्तन तदवीचार स्मृत सद्ध्यानकोविदै ॥ ८ ॥ आत्मस्पन्दात्मिका सूक्ष्मा क्रिया यत्रा-[illegible] । तृतीय [illegible] सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिकम् ॥ ९ ॥ बादरे काययोगेऽस्मिन् स्थिति कृत्वा स्वभावत । सूक्ष्मी-[illegible] ॥ १० ॥ [illegible] वपुर्योग [illegible] स्थितिम् । कृत्वा [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] स्थिति कृत्वा पुन [illegible] । [illegible]

क्रिया यत्र सूक्ष्मयोगाभिकारि हि । ... ।द मः । सूक्ष्मांक्य निजात्मानं चिद्रूपं विंदति स्वयम् ॥ १३ ॥ समुच्छिन्ना
पूर्वमादस्थे ध्याते सति अयमानन्दादसमभारार्थैव समुच्छिन्नक्रियं प्रोक्तं सहारं शुभिन्यदमनः ॥ १४ ॥ इति गुणस्थानक्रमारोह । तत्र च
नाभार । न च कवलाहारमन्युपगच्छन्निरपि तृतीयपादध्यानं कवलदानमुलयते तृतीयपादध्यानं तु शैलेशीकरणारंभ एव जयति
तत्त्वणकायविरोधनिराकरणम् । अथ शरीरवृद्धिलक्षणकार्यविरोधं तदानीं सुगमं बादरकाययोगविरोधित्वाभवति ध्यानाधिष्ठ
निरूपत इत्यत्र किं प्रमाणम् औदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वादित्यनुमानमिति निराकरोति-तुकरपति । तत्र शरीरवृद्धिः सार्वदया
संपद्यः । यतः किं तदौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्वमौदारिकशरीरत्वावच्छिन्ननिष्ठत्वं तदुष्टिमत्त्व सति तद्भिन्नावृत्तित्वं वा ।
गत्वाः यन्नः सुन्दरो यत एतेन ... "मम माता च वन्ध्या भाति" न्याय
मात्रवनितारीरनिष्ठमपि कथं न नयतीति इतोरिक्तत्वात् । न द्वितीयस्तस्याप्यतदर्थपर्यवसायित्वात् । न हि गोवृत्तित्व
मति गवितरावृत्ति गोत्व गोत्वावच्छिन्ननिष्ठं न नयतीति वक्तुं पार्यते । अथ परमौदारिकनिष्ठौदारिकशरीरमात्रनिष्ठत्व
मिम्रत्विनमिति चेत्तत्रापि नियतत्वं यदि सामान्यतोऽन्योऽन्याभावप्रतियोगित्वं तर्हि स्वरूपासिद्धिः । अन्यथानन्वयो
त्वन्तेदमतियोगित्वं चेत्यथापि गत्वादिनिर्देशरागादिभिश्च व्यभिचारः । अथौदारिकशरीरवृद्धिः सार्वद्यविशिष्टा आहार
मानमात्राधिकरणत्वादिति चेदौदारिकशरीरेणैव व्यभिचार । कवलाहारजन्यत्वादित्यपि न साधकम् एकेन्द्रियादिशरी
रणां कवलाहारजन्यवृद्धयदर्शनेन नागासिद्धः दृष्टान्तीकृतानां निद्रादीनां तज्जन्यत्वासिद्धेर्विपरीतबाधकतर्काभावेनाप्रयो-

[illegible] औदारिकशरीरविशेषत्वात् । न च [illegible]

[illegible] । मानसं नाम तथाविधयोगिविशेष [illegible]

[illegible] यदि केवलिना शरीरं न धार्यं तर्हि ते सर्वदा [illegible]

[illegible] । ननु केवलिनः [illegible] इति [illegible]

[illegible] केवलिना शरीरम् [illegible]

[illegible] औदारिकस्यविचारितरूप [illegible]

[illegible] तथापि [illegible]

[illegible] शरीरं न [illegible] परमौ [illegible]

[illegible] । न [illegible] अन्यथा [illegible]

[illegible] ॥ ८९ ॥ [illegible] तदनिमं [illegible]

[illegible] । [illegible] ॥ ९० ॥

[illegible]

न ननु गगनारविन्दस्य प्रतिकृतिकारीकाति... सारन्यमनुमिमीतेति विचारचतुरा इति परेषामाशयमभिरम्यति–तद्दिति।
तत्पूर्वांशे पूर्वपक्षनन केवलिना शरीरस्य सप्तधातुरहितत्वमित्थरेणाप्रामाणिकमिति समासार्थः । व्याख्यार्थस्त्वयम्–औ
दारिकशरीरं १ औदारिकोपाङ्ग २ अस्थिरनामा ३ शुभनाम ४ शुभविहायोगत्य ५ शुभविहायोगती ६ प्रत्येक ७ स्थिर
७ शुभनामानि ८ समचतुरस्रसंस्थानं १० न्यग्रोधसंस्थानं ११ सादिसंस्थान १२ वामनसंस्थान १३ कुब्जसंस्थान १४ हुण्ड
संस्थानं १५ अगुरुलघुनाम १६ उपघातनाम १७ पराघातनाम १८ वर्ण १९ गन्ध २० रस २१ स्पर्श २२ नामानि २३ निर्मा
णनाम २४ तैजस २५ कार्मण २६ प्रथमसंहनन २७ दुःस्वरनाम २८ सुस्वरनाम २९ शुभगनाम ३० यशोनाम ३१ आदेयनाम
३२ त्रस ३३ बादर ३४ पर्याप्तनामानि ३५ पञ्चेन्द्रियजाति ३६ मनुजगति ३७ जिननाम ३८ सातावेदनीय ३९ असातावेद
नीयं ४० मनुजायु ४१ उच्चैर्गोत्र ४२ मित्येता द्विचत्वारिंशत्प्रकृतय केवलिनामुदयमाश्रित्य प्राप्यन्ते । तत्र प्रथमाद्य
द्वाविंशतिप्रकृतयस्तोऽस्मात् एकोनचत्वारिंशतो वज्रर्षभनाराचसंहनन तत्प्रकारं च केवलिना शरीरं कथं धातुरहितमिति
यावत् पर्यन्त । अथ मत तदनादपि केवलिना तज्ञानस्याङ्गतरोदय प्रतिपादित इति तदप्यज्ञानविज्रम्भितं तस्यास्थि
द्विपादरूपत्वात् । अन्यथौदारिकशरीरमपि किं नापेक्षाति नन्वाह तत्रापि पूर्वाचार्युक्तत्वात् । किं च कदाचिन्मत
मस धातवः अपरस्य च मत दश धातव इति । तथा चाहुः श्रीहेमसूरय स्वोपज्ञयोगशास्त्र–रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्ज
शुक्राणि धातवः । मतान्तरे दश धातवः रोमत्वङ्स्नायुभिः सह ॥ १ ॥ इति । तत्र चान्यतरनिषेध त्रिनिगमकाभावाज्जनन
सामान्यस्वीकारे रसादीनामप्यत्र आपद्यते ह्यौदारिकशरीरस्यापि दशो जन्माजननि । किं च भगवता रुधिरामिष

[illegible] श्रौदारिकशरीरक्रियाक्रियमाणत्वात् । न च [illegible]

[illegible] । [illegible] यथा [illegible]

[illegible] न [illegible] ते [illegible]

[illegible] । ननु [illegible]

[illegible] शरीर-

[illegible] । [illegible]

[illegible] तथापि

[illegible] । [illegible]

[illegible] । न [illegible] अन्यथा

[illegible] । अथ [illegible]

[illegible] । [illegible] ॥ १० ॥

[illegible]

न सन्तु गगनादिन्द्रस्य प्रसिद्धकुशीकारानिनाथि मांगन्यमनुमिमीमति विचारचतुरा इति परेषामाशयस्तन्निरस्यति–तदिति ।
न पूर्वोक्त पूर्वाच्य तन कवलिना शरीरस्य ममत्वानुरक्तित्वामिद्धरेवाप्रामाणिकमिति समासार्थः । व्याख्यार्थस्त्वयम्–श्री
गतिनाम १ औदारिकशरीर २ अस्थिरनामा ३ शुभनाम ४ शुभविहायोगत्य ५ शुभविहायोगती ६ प्रत्येक ७ स्थिर
८ शुभनामानि ९ समचतुरस्रसंस्थानं १० न्यग्रोधमण्डलं ११ सादिसंस्थान १२ वामनसंस्थान १३ कुब्जसंस्थान १४ हुण्ड
संस्थानं १५ अगुरुलघुनाम १६ उपघातनाम १७ उच्छ्वासनाम १८ वर्ण १९ गन्ध २० रस २१ स्पर्श २२ नामानि २३ निर्मा
णनाम २४ तैजस २५ कार्मण २६ प्रथमसंहनन २७ दुःस्वरनाम २८ सुस्वरनाम २९ शुभगनाम ३० यशोनाम ३१ आदेयनाम
३२ त्रस ३३ बादर ३४ पर्याप्तनामानि ३५ पञ्चेन्द्रियजाति ३६ मनुजगति ३७ जिननाम ३८ सातावेदनीय ३९ असातावेद
नीयं ४० मनुजायु ४१ उच्चैर्गोत्र ४२ मित्येता द्विचत्वारिंशत्प्रकृतय: केवलिनामुदयमाश्रित्य प्राप्यन्ते । तत्र शयनप
र्यायविषयसर्वस्य प्रकृतेरन्यस्ता इदमनादिगतो वज्रऋषभनाराचसंहननं तत्सद्भाव च केवलिना शरीरं कथं धातुवर्जितमिति
सर्वं पारम् । अथ सा तदनादपि केवलिनां तज्जनकप्रकृतरोदयः प्रतिपादित इति तदप्यज्ञानविजृम्भित तस्मात
विचारयन्तार् । अन्यथौदारिकशरीरमपि किं नाम्नोति नया तत्रापि पूर्वाचार्योक्तत्वात् । किं च केषाञ्चिन्मते
सप्त धातवः स्वपरौ च मत्रान्त गात्र इति । तथा चाहुः श्रीहेमसूरय: स्वोपज्ञयोगशास्त्रे–रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जा
शुक्राणि धातवः । सप्त शुक्रा धार्या गेमत्वग्वातुरिति मद ॥ १ ॥ इति । तत्र चान्तरालित्व जिनिगमराजा गाद्धत्व
प्रामाण्यमीकार स्वाम्नायानुसारेण आगमा औदारिकशरीरस्यापि दृश्यन्ताकृति । किं च जगरता रुधिरमिति

मत् । ध्यानं प्रक्रमते साधुराद्यमंहननान्वितः ॥ १ ॥" इत्यत्र साधुरप्रमत्त गुणस्थानं शुक्लात्मक प्रधानध्यानमादिमं प्रथमं पृथक्त्ववितर्कसवीचाराख्यं शुक्लध्यानं ध्यानं प्रक्रमते कथयतः साधुराद्यसंहननान्वितो वज्रर्षभनाराचनामकप्रथम संहननयुत इति गुणस्थानक्रमारोहे । तस्मादाध्यात्मिकाभिमते परमौदारिकत्वे निरस्ते केवलिना शरीरं कवलाहारमपेक्षत एव स्यात् तथापि नान्यथा, प्रमाणं चात्र केवलिदेहस्थितिः कवलाहारपूर्विका, शरीरदेहस्थितित्वात्, छद्मस्थादिशरीरदेह-स्थितिवदिति । न च छद्मस्थस्याहारस्य कवलाहारेण सिद्धसाधनं छद्मस्थयतस्यातिशयदेहस्थितेरपि पृथक्त्वात्त्वाहारस्य तस्या-हारेण कवलाहारपूर्वकत्वसंगात् । न च घातिकर्मसहकृतत्वमुपाधिः, देवानां देहस्थितेर्घातिकर्मसहकृतत्वेऽपि कवलाहा-रपूर्वकत्वाभावात् साध्यसमव्याप्त्यभावात् । एवं केवलिनो देहस्थितिराहारपूर्विका देहस्थितित्वात् अस्मदादिदेहस्थितिव-दित्येताहारमात्रपूर्वकत्वसाधने कर्मनोकर्माहारेणानुगमात् सिद्धसाधनं कवलाहारपूर्वकत्वसाधने च देवदेहस्थित्यादिना व्यभिचारः । अथ मनुष्यदेहस्थितित्वादस्मदादिवत् सा तत्पूर्विका स्यात् तर्हि तद्देहवत् सर्वदा निःस्वेदत्वाद्यभावः स्यात् । अस्मदा-द्यनुपलब्धस्यापि तदतिशयस्य सत्त्वे तत्तुल्यतयाऽस्मदादिषु कवलाहाराभावोऽप्यतिशयः किं न स्यादित्यादिप्रथमनिरस्तुपासकाध्यय-नटीकादिषु द्रष्टव्यम् । सर्वज्ञसिद्धिविषयकदर्शनानुमानेनैव साध्यसिद्धौ प्रतिवादीष्टानुमानस्य विपक्षत्वा-त्वात् यथा नीचमूर्ते सिद्धसाध्यातिशयः सार्वदिकत्व तु दृश्यमानातिशयस्यापि सार्वदिकत्वाभावपूर्वकत्वासिद्धत्वात् परि-पार्श्व गुणेन इव नास्त्यत्र प्रतापि किं च बाधक इति निर्दूषणानुमानसिद्धि केवलिनां कवलाहारः प्रामाणिक एवेति ॥ १० ॥

अथ कवलाहारप्रतिषेधप्रतिवादिनं निरस्यति–

[illegible]

किञ्चिदूनपूर्वकोटिपर्यन्तं कथं तदभावे स्थातुं शक्यत इति चिन्त्यन्ति विपश्चिद्विचक्षणाः। तदपि न नश्चेतसि समायाति।
यतो यदि सप्तमगुणस्थानीयसंयतोऽपि सप्तमगुणस्थाने स्तोककालत्वेनाप्युत्कर्षाद्या कवलाहाराभाव कल्प्यते तर्हि समानकालत्वात्
ततोऽपि गुणस्थाने तदभाव आपतति । न च तत्र प्रमत्तत्वादाहार गुणाय षड्गुणीन्यायेनारम्भत्वेनान्तर्मुहूर्त श्रयणी
यत्वादिति पूर्वपक्षः। अत्र प्रागुक्तमपि भूयते । यथाऽऽहारेऽपि कवलाहारसाधकस्यानुमानस्यानैकान्तिकत्वमुक्तमिति
तन्मन्दं प्रधानध्यानविरहगर्हतरस्य हेतोर्निराकरणात् । न चाहारसंज्ञारूपकारणाभावादेव सप्तमगुणस्थाने कवलाहाराभाव
इति सयोगिकेवलिगुणस्थानेऽपि तदभावोऽभ्युपगम्यतामन्याहारसंज्ञापि प्रतिपत्तव्यामिति वाच्यम् । एतस्य मनोरथमा
त्रत्वात् तथाहि—आहारसंज्ञा किमाहारमात्रं प्रति कारणं कवलाहारमात्रं प्रति वा । नाद्यः केवलिनां लोमाहारस्याप्य
नाहारत्वः । द्वितीयेऽपि कवलाहारमात्रं प्रति आहारसंज्ञाया कारणता किमन्वयव्यतिरेकगम्या निधिगम्या वा । नाद्य
स्तत्रापि कवलाहार इत्यन्वयव्याप्त्यभावे । "दस सता मयनीआण" तिवचनादेकेन्द्रियादिष्वाहारसंज्ञाया
सद्भावेऽपि कवलाहाराभावात् । नापि द्वितीय तथाविधविधेरभावात् तस्मादाहारसंज्ञाया आहारनिमित्तमात्र प्रत्यय
त्वम् । न चानिवारः स्वल्पु प्रार्थना सा च यदीदमहं प्राप्नोमि तदा लभ्यमित्याद्यनुरागानुविद्धा । तथा चैकेन्द्रिया
दिषु असञ्ज्ञिनामपि व्याप्त्यसिद्धिः। तेषामप्यव्यक्तसंज्ञानभ्युपगमात् । तथा चागम —"मयनीआणुग्गियणं अस्स
राग अणेगासा आगा रिज्जुणाहिं निवड्ढमो नि अ जइ आहारेज्जा तेण जीवो अनीसरए पावेज्जा" इति नदीसूत्र ।

१ मैथुनपरिग्रहभय अ हारादिकसंज्ञा मा संज्ञा

[illegible]

किञ्चिदूनपूर्वकोटिपर्यन्तं कथं तदभावे स्थातुं शक्यत इति विलसन्ति विलक्षणविचक्षणाः तदपि न नश्चेतसि समायाति । यतो यदि समस्तसामग्रीसद्भावेऽपि सप्तमगुणस्थाने लोकान्तरविलम्ब्या कवलाहाराभावः कल्प्यते तर्हि समानकल्पत्वात् षष्ठेऽपि गुणस्थाने तदभाव आपतति । न च तत्र प्रमत्तत्वादाहार गृह्णाति षट्त्रिंशन्न्यायनास्पतिं स्वान्तस्थैर्य श्रवणी स्वाभाविकमिति धूर्तेन । एवं मासऽभिधीयत । यथानन्तरमनिना कवलाहारसाधकस्यानुमानस्यानैकान्तिकत्वमुद्भावित तत्सर्वं सयोगस्थानसिद्धमदृष्टतत्त्वस्य हेतोर्विशेषणात् । न चाहारसंज्ञारूपकारणाभावादेव सप्तमगुणस्थाने कवलाहाराभाव इति सयोगिकेवलिगुणस्थानेऽपि तदभावोऽभ्युपगम्यतामन्यथाहारसंज्ञापि प्रतिपद्यतामिति वाच्यम् । एतस्य मनोरथमात्रत्वात् तथाहि—आहारसंज्ञा किमाहारमात्रं प्रति कारणं कवलाहारमात्रं प्रति वा । नाद्य केवलिना लोमाहारस्याभ्युपगमात्ते । द्वितीयेऽपि कवलाहारमात्रं प्रति आहारसंज्ञाया कारणता किमन्वयव्यतिरेकगम्या विधिगम्या वा । नाद्य यत्राहारसंज्ञा तत्र कवलाहार इत्यन्वयव्याप्त्यसिद्धेः । "दस सना मयचीयाए" इति वचनादेकेन्द्रियादिष्वाहारसंज्ञायाः सत्त्वेऽपि कवलाहाराभावात् । नापि द्वितीय तथाविधविधेरभावात् तस्मादाहारसंज्ञाया आहाराभिलाषमात्र प्रत्ययत्वम् । न चाभिलाषः स्वतु प्रार्थना सा च यदीदमहं प्राप्नोमि तदा भव्यमित्याद्यन्तरानुरक्ता । तथा चैकेन्द्रियादिषु अभिलाषाभावेन व्याप्त्यसिद्धिः । तेषामप्यव्यक्तान्तःकरणस्यानुमानस्योक्तत्वात् । तथा चागम—"सचनीयाणपियाण अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ सो वि अ जइ आवरिज्जा तेण जीवो अजीवत्तण पावेज्जा" इति नन्दीसूत्र ।

१ नैयायिक धि° २१ अ दा विकमनया आ संज्ञा

तथा "[illegible] पुण [illegible] । नाणावरणुदएण नेदियमाई कमनिमोही ॥ १ ॥ व्याख्या–यथा-
[illegible] स्वादिमहितो ज्ञानावरणोदयेनाव्यक्त सुप्तमत्तमूर्च्छितादेरिवास्फुट ज्ञान वर्तते न सर्वथावृतम् ।
[illegible] तनोऽप्यप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकाना यथोत्तर क्रमेण विशुद्ध-
[illegible] विनिश्चितादि वस्तुवृत्तौ पीठिकायाम् । तस्मादाहारसंज्ञाया कवलाहार प्रति न कारणत्व
[illegible] केवलिना मैथुनसंज्ञाभावेऽपि कमनीयकामिनीसेवादिकमपि प्रसज्येतेति
[illegible] निर्ग्रन्थत्वात्, आहारकारणस्य तु वेदनीयोदयस्य प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात् । न चाप्र-
[illegible] न कुत्सित शरीर[illegible]ऽपि प्रमादप्रसगात् यत्पालनार्थं खलु प्रमादहेतु
[illegible] नेतत् । तस्मादियमाध्यात्मिकपरिकल्पिता प्रतिज्ञा अकिंचित्कर-
[illegible] दूषयति–

[illegible] । तद्धि निष्टमतेऽसत्यमसिद्धं चाप्रयोजकम् ॥ १२ ॥

[illegible] निकपरिकल्पितमनुमान प्रमत्तः प्रमत्तं प्रमत्तगुणस्था
[illegible] "[illegible] प्रमत्ती" निश्चनानिष्यात्मादरा
[illegible]

नानां मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियाणां सम्प्रतिपन्न केवलाहारित्व चापीति । तदेतदेवानुमानं विशिष्ट लेश्यान्तरासङ्करितत्वेनेति
नाम असिद्धमिदम् । यतो यदा मन योगपरिणामो लेश्या तन्मते निधिकोटि यदा च मतं कषायनिष्पन्दो लेश्या तन्मत
निरधकोटिरिति । अयदार्थं च केवलिनो न कवलाहारिण अवस्थत्वादित्यनुमानं लयषोनकं लोमाहाराजातस्यापि सा
पक्षव्याप्तिरिति । सहितरागमितृत्व च सूत्रे पञ्चस्वप्यवतरतीति बोध्यमित्यलम्यथाय । व्याख्यार्थस्त्वयम्-औदयिकनास्य
पारुष्करादिनिर्देश "अज्ञानमसिद्धत्वा सयम लेसा कषाय गइ वेया । मिच्छं तुरिअत्ति" इत्यनेनात्र त्रयोदशगुणस्थान
मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियादिकम्पनामकर्मा नाम प्राप्त्यैव । तथा च दक्षसूत्रम्-"चउगयाउ जाईसु मिच्छि साणे य हुंति नीअ
च । मिस्सा विणा मीस ज्जुगिममत्तविरहा ॥ १ ॥ एमर अविरयम्मि, सुरनारगगउ निच्छगउ दगे । सत्तरस हुंति त
विय निरिगइए मयमानाया ॥ २ ॥ पत्तरस पमत्तंमि अपमत्ते आहारतिगविरहे । ते चिय धारससुहेगहोगउ दस
अपुव्वंमि ॥ ३ ॥ इत्य अनियट्टिंमि नि सुहुम सराग्ग योनमणू अति अतिससमअसिरुणनाराउ जाए घउ नाना
॥ ४ ॥ सजोगम्मि निरिगइ उपसन्तखीणकसाईण तिग । उगाजाता जाणसु अजोगिणो नायउगमवेति" ॥ ५ ॥ एक
नीतिक । यथा पञ्चस्यामत्रारऽपि कवलाहार कथं सगच्छत । यतो निरावरनधर्मध्यानत्वारऽपि नायमिष्यत इति ।
अत्र निराकरणाम-ध्यानं यावत् धर्मध्यानपरम्य निष्पन्नं नाम कवलाहारेण । लेश्या तु योगपरिणतिरूपा कवला
नाम कथं निष्पन्न प्रत्युतापिर्यक्षेत्र । अन्यथा प्रमत्तगुणस्थानवर्तिनोऽप्याहारो न स्यात् लेश्यान्तरासङ्करितायास्त
स्यादिति तत्रे अप्रमत्तगुणस्थानेऽप्याहारः स्यात् । कथं पुनर्योगपरिणामो लेश्या यस्मात्सयोगिकेवलिनि गुणस्थानपरिणामेन

१ पत्रक नाथ नाऽई दर्शनम् ।

[illegible] योगशास्त्रे [illegible] । स

[illegible] शरीराणां [illegible]" ।

[illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible]

कवलाहाराभावयोरकाति । यदि च प्रतिबन्धकानामदृकृतमस्तकारणममवधानेऽपि जायरूपशुक्लेश्यावत्त्वेन कवला हारनाट गम्य नहिं ज्यतरेन हेतुना प्रमत्तगुणस्थानवर्तिनामपि तदभाव साध्यता गवोमा मड्डुकश्चतुष्पात्वे मत्यु त्प्लुत्य गमनात् मृगवत् । अत्रोमा या हरिण चतुष्पात्त्वे सत्युत्प्लुत्य गमनात् मड्डुकवदित्यादिहेतूना च प्रामाण्यमनुप- गम्यत्वामिति चक्रवत्प्रमाणाभिख्यिन केवलिना कवलाहार गुव्यवस्थित इति ॥ १२ ॥ अथ कवलाहारसाधकप्रमाण प्रमाणांतरम गत्यादयति-

क्षुदादय केवलिनामेकादश परीषहा । वेदनीयोदयोद्भूता कवलाहारसाक्षिण ॥ १३ ॥

टीका-अन्वयार्थ स्पष्ट एव । भावार्थस्त्वयम्-सयोगिकेवलिगुणस्थानवर्तिना क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशचर्यावधमलशय्या- रोगतृणस्पर्शलक्षणा एकादश परीषहा भवति । यदागम -"एगविहबंधगस्स ण भंते सजोगिभवत्थकेवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता । गोयमा एक्कारस परीसहा पण्णत्ता नव पुण वेदेतित्ति" । तथा "वेयणिज्जेण भंते कम्मे कइ परीसहा समोयरंति । गोयमा एक्कारस परीसहा समोयरंति पंचेव आणुपुव्वी चरिया सिज्जा वहे य रोगे य । तणफास जल्लमेव य एक्कारसमेव णिक्कमिति" भगवत्याम् । तथा-"बावीसं बादरसंपराए चउद्दसय सुहुमसरायमि । छउमत्थवीयरागे चउदस एक्कारस जिणमि ॥ १ ॥ "अत्र अयं द्वाविंशतिरपिशब्दस्य सुखनिर्दिष्टत्वात् द्वाविंशतिरपि परीषहा बादरसंपरायनाम्नि गुण स्थाने । यतोऽसौ निवृत्तिबादरसंपराय नवमगुणस्थाने यावत्सर्वेऽपि परीषहा संभवतीति । तथा चतुर्दश च शब्दस्येव

[illegible] द्वाविंशतिसंख्या एव च क्षुत् १ पिपासा २ शीत ३ उष्ण ४ दंशमशक ५ चर्या ६ शय्या ७ वध ८ अलाभ [illegible] रोग १० तृणस्पर्श ११ मल १२ प्रज्ञा १३ अज्ञान १४ रूपाः परीषहाः सूक्ष्मरागे सूक्ष्मसंपराये [illegible] दशमगुणस्थानक [illegible] मोहनीयस्य क्षपितत्वेनोपशमितत्वेन वा सत्ताया चारित्रमोहनीयप्रकृतिप्रतिनिवृत्तावा दर्शनमोहनीयप्रकृ [illegible] स्यासंभवादिति भावः । तथा छद्म आवरणं तत्र स्थितः छद्मस्थो वीतोऽपगतो रागो यस्य समस्तमोहो [illegible] छद्मस्थवीतरागस्तस्मिन्नुपशान्तमोहक्षीणमोहलक्षणे गुणस्थानकद्वय परि- [illegible] एव चतुर्दश परीषहा भवन्ति । तथा जिने सयोगिन्ययोगिनि चेतिलक्षणे त्रयोदशचतुर्दश [illegible] वेदनीयस्यैव सद्भावात्तन्निमित्ता एकादश परीषहा भवन्ति । उक्तं च-"क्षुत् [illegible] दशाद्याः सर्वे सन्ति । [illegible] जिने वेद्यस्य सद्भावात् ॥ १ ॥" इति प्रवचनसारो- [illegible] । अत्र [illegible] किं [illegible] समयतोऽन्वेषणीय परिहरतश्च [illegible] । आद्ये [illegible] । द्वितीये तु [illegible] गुणस्थाने [illegible] । अन्यथा [illegible] [illegible] । [illegible] ॥

व्यपदेश्यतानर्हत्वात् परीषहनाम्नव्यपदेशस्य तु तस्य कवलाहारचिकित्सामन्तरेण शरीरस्यापचायकत्वस्य सुप्रसिद्धत्वात् । न च नगरदाहमनन्तवीर्यत्वेनद्रूपाग्निमर्मजरीति वाच्यम् यतः शारीरं स्थाम वीर्य चान्तरं शक्तिविशेष इति तयोर्भिन्नत्वात् । तस्माज्जिनानां क्षुत्परीषहस्थितियोऽपि कवलाहारं निश्चाययत्येवेति ॥ १३ ॥ अथैतस्यार्याद्वयेन दिगम्बरकल्पितनि-श्शल्यनिराकरणनामयोनवत्यसंशा निरस्यति-

किं रागह्रान्यतिशयो यथा तथा नेपु जुत्पनाशस्य। आहारकथामात्रात् कथं च साधो प्रमत्तत्वम्॥ १४॥
वेदोदयेऽपि तीव्याशुक्तिकथायाश्च मोहजनकत्वात्प्रतिषेद्धव्य इति सप्तमुपासकाध्ययनटीकाकृत्॥१५

॥ युग्मम् ॥

टीका-ननु केवलिषु यथा रागह्रान्यतिशयो गगानादस्य परमप्रकर्ष आख्यायते तथा क्षुत्पनाशस्य कवलाहाराभाव-ख्यातिशय इति नाशः किं नाख्यायते । यदि केवलिनि रागाज्ञानातिशयोऽभ्युपगम्यते तर्हि क्षुत्पनाशातिशयोऽप्यभ्युपगम्यतां समानकल्पत्वादित्यर्थः । च पुनरर्थे । साधोरप्रमत्तस्यति ममत्विव्याहारगम्यम् । आहारकथामात्रात् प्रमत्तत्वं कथं नयतीत्यर्थः । तात्पर्यमत्रायम्-यथा कश्चित् पुरुषस्तीव्ररागमन्दरोम्या कश्चिन्मन्दरागः कश्चित्पुनर्मन्दतमराग इति विरागतारतम्यगादीनां ह्रान्यतिशयदर्शनात् परमप्रकर्षं क्वचित्ति प्रसिद्धतया जीवनानावसम्भवोऽपि तत्र किं न स्यात् यतस्तारो जीवनादपि ह्रान्यतिशयदर्शनातिशयात् । तथा हि-एकस्मिन् दिने योऽनेकवार भुङ्क्ते निपट

[illegible] त्मापर्णमपार्यनतिलोपा

[illegible] न यंति मद्विषयम्, तत्र-

[illegible] । इति यत्र पूर्वोक्त-

[illegible] अतिक्रम्य-

[illegible] । आग्रहिणां तेन

[illegible] । अ[illegible] मोक्षानन्दादेव

[illegible] नाकुलकरसामग्रीणां

[illegible] न [illegible] । यत्र पद्मम वेदाधीनतमीक्षण-

[illegible] केचिदिति तद्वाना-

[illegible] समर्थाश्रितम् । जाति-

[illegible] । तथा [illegible] एवं

[illegible]

ज्ञानिरमयविशादस्वेदा गृह्यन्ते । एतेऽष्टादशदोषा यस्य न सन्ति स आप्त प्रकीर्त्यते प्रतिपाद्यत इति । भगवतां क्षु-
त्पिपासयोरपहोतुमशक्यत्वा मोहनीयापगमेन तदजाय कल्पनीये औदारिकशरीरादिकमपि किं नापहोतुमीहग । वस्तुतस्तु
अष्टादश दोषा अज्ञानादिका । तथा चोक्तम्-"अन्नाणकोहमयमाण, माया लोभ रई अ अरई अ । निद्दासोगअलिअव
यण, चोरियामच्छरभया य ॥ १ ॥ पाणवहपेमकीलापसंगहासाइ जस्स इय दोसा । अट्ठारस वि पणट्ठा, नमामि देवाहिदेव
तं ॥ २ ॥" इति तत्र क्षुत्पिपासयोरनन्तर्भावेन केवलिनां तदभावसाधनप्रयासो हरिदम्बराणां व्यर्थ एवेति । यदुक्तम्-"आ
हारकथामात्रेणापि अप्रमत्तो यतिः पतति कवली त भुञ्जानोऽपि न तथेति कथं संगच्छते" तत्रेदमुत्तरम्-आहारकथा ता-
वदाहारविषयप्रीतिरूपमोहजनिकेति तस्या प्रमादहेतुत्वं न चैवमाहारस्यापि शरीरादेरिव मोहमकृतत्वेन तस्य तथा-
त्वानुपगमात् । न च बुभुक्षारूपमोहमन्तरा कवलाहारो न सम्भवतीति वाच्यम् एतस्य निरस्ततरत्वात् क्षुद् बुभुक्षे-
ति तादात्म्यप्रतीतिस्तु साम्यामेचकमा इतिवदुपचारमात्रनिबन्धनेति । तस्मादपारवचनाचातुरीतरङ्गिणी(?)ख्याप्यमानो ज्ञा-
तिजनानां उपागकाध्ययनटीकाकर्त्ता न्यायकुमुदचन्द्रचन्द्रशेखरगुप्तानयवहमानः कथमपि स्वात्मानं रक्षितु प्रभुरित्यार्या-
र्थः ॥ १५ ॥ अथैतस्य युक्तिजालस्य फलं प्रकटयति-

परम्परापरायातसजातमतिविप्लवा । तदेवं प्रतिपेदुर्व्या युक्तिभिर्दिगम्बरा ॥ १६ ॥

टीका-हरिदम्बर येषां ते हरिदम्बरा नग्नाटाः । अत्र च "क्वचित्शब्दसामान्यं विशेषतात्पर्यमहिम्ना विशेषवाचकत्व-
मिति" न्यायात्हरिदिव सूर्योदयावच्छिन्ना प्राचीवाम्बराणि येषां ते हरिदम्बरा रक्तपटा इत्यर्थः । एतेन परेऽन्योऽन्येऽपि चारि-

[illegible] स एव पुनरेकवार भुंक्ते यश्चिरपुनरेकदिनाद्यन्तरितभोजन अन्य पुन पक्षमाससंवत्सराद्यन्तरितभोजन इति । तथा [illegible] हि साधुराहारकथामात्रेणापि प्रमत्तो भवति, भुञ्जाना अपि केवलिनो न तथेति महच्चित्रम्, यत्क-[illegible] तदुपयोगे पुन किं निगाद्यमिति ॥ १४ ॥ अथैतन्निरस्यति-चेद्येति । इति जल्पन् पूर्वोक्त-[illegible] [illegible] तत्त्वार्थोपक्रमोपासकाध्ययनस्य टीकाकार प्रभाचन्द्रमहको दिगम्बर प्रतिपत्तव्य-[illegible] [illegible] [illegible] विकल्पद्वयस्यापि विकल्पत्वादित्यर्थः । तत्र हेतुद्वयमाह-चेद्येति । आद्यविकल्पस्य केव-[illegible] [illegible] वेदनीयोदयाभावपरमप्रकर्षस्यापि प्रसङ्गात् । आहारकथायाश्च मोहजनकत्वादेव [illegible] [illegible] । भावार्थस्त्वयम्-यत्तावदुक्तं रागहानिपरमप्रकर्षदर्शनात्क्षुत्पिपासापरमप्रकर्षोऽपि [illegible] [illegible] [illegible] स्यादिनुमपि न शक्नोति । यत एकस्य वेदनीयोदयस्तीव्रत-[illegible] [illegible] [illegible] इति विपरीत भावनावशाद्वेदनीयोदयाभावातिशयदर्शनात् केवलिनि तदभाव-[illegible] । न च शक्य वेदनीयोदयस्याहारादिदोषानन्तभावात्तदभावपरमप्रकर्षसाधनमयौक्तिकम् । क्षुत्पि-[illegible] [illegible] रागहानिवदभावपरमप्रकर्षसिद्धौ क्षुत्पिपासायामपि गजमत्येव । तथा चानुपदमेव व्या-[illegible] । [illegible] । न रागद्वेषमोहाश्च यस्यास न प्रकीर्त्यन्ते ॥ १ ॥ अस्यार्थ -क्षुच्च [illegible], पिपासा च तृष्णा, जरा च वृद्धत्व, आतङ्कश्च व्याधिः जन्म च कर्मवशाच्चतुर्गतिषूत्पत्तिः अन्तकश्च मृत्युः, भयं-[illegible] [illegible] रागद्वेषमोहाः प्रसिद्धाः । [illegible]

ज्ञाविस्मयविषादरोगदस्वेदा गृह्यन्ते । एतेऽष्टादशदोषा यस्य न सन्ति स आप्त प्रकीर्तित आगमेषु इति । नगरां
त्रिषामयोरपक्षोऽमनस्यता मोहनीयापगमेन तदन्तरे कल्पनीय औदारिकशरीरादिकमपि किं नामनो मीहते । यदुक्तन्तु
अष्टादश दोषा अज्ञानादिका । तथा चोक्तम्—"अन्नाणकोहमयमाण, माया लोभ रई अ अरई अ । निद्दासोगअलिअव
यण, चोरियामच्छरभया य ॥ १ ॥ पाणवहपेमकीलापसंगहासाइ जस्स इय दोसा । अट्ठारसवि पणट्ठा, नमामि देवाहिदेवं
तं ॥ २ ॥" इति तत्र क्षुत्पिपासयोरनन्तज्ञानिन केवलिनां तदन्तरसाधनप्रयासो हरिद्वराणा व्यर्थ एवेति। यदोक्तम्—"आ-
हारकथामात्रेणापि अप्रमत्तो यति पतति करकी त भुञ्जानोऽपि न तथति कथं संगतं" तत्रदमुत्तरम्—आहारकथा ता-
वदाहारविषयप्रीतिप्रदर्शनमोहनिकेति तस्याः प्रमादहेतुत्वं न चेत्प्रमादारम्यापि शरीरादरिव मोहगर्दहतस्येव तस्य तया-
त्वा युगमात् । न च प्रवृद्धाखण्डमोहमन्तरा कवलाहारो न भवत्यतिव्याप्यम् एतस्य निरन्तरत्वात् तुद् उदुन्ने
वि तादात्म्यप्रतीतिरु शाश्वमेवक्षमा इतिरुपचारमात्रनिबन्धनेति । तस्माद्घनरघनाचातुरीतरणिणीप्लाव्यमानो दुर्ग-
तिजनता उपासकाध्ययनटीकाकर्ता न्यायकुमुदचन्द्रवचनशीर्णवृत्तानवलम्बमान न कथमपि स्वात्मान रक्षितु प्रभुरित्यार्य
कृपार्थः ॥ १५ ॥ अथैतस्य युक्तिनाशस्य फल प्रकटयति—

परपरापराघातसजातमतिविप्लवा । तदेव प्रतिपेदुर्न्या युक्तिनिर्हरिद्वरा ॥ १६ ॥

टीका—हरिद्याश्वरं यथा त हरिद्वरा नमाटाः । अथ च "कचित्सूक्ष्मसामान्यं निशेषतात्पर्यमक्षाना विशेष...
मिति" न्यायाच्चरिदिव सूर्योदयावधिका प्राचीयावराणि येषा ते हरिद्वरा स्फुटा ...

यथार्थं प्ररूपयन्तः स्वयं च पिच्छिकाकमण्डल्वादीन्यन्यतीर्थिकचिह्नानि दधाना रक्तानि च वासांसि वसाना वृथैव महाव्र-
तिविरुद्धं विस्मयतो मातुः पितुः प्रसवमिवैवंविधादपि स्वधर्मात् सकृतिफलमभिलषतस्ते जगद्वञ्चनलम्पटाः कदाग्रहग्रहिला
एवम्भूता भवन्ति । तत्तस्मात् कारणात् केवलिनां कवलाहारं प्रति विप्रतिपद्यमाना इति शेषः । एवं पूर्वोक्ताभिर्युक्तिभि
र्निषेद्धव्या निराकरणीयाः तदर्थमेतत्स्थलमस्माभिः कृतमिति भावः । कथम्भूतास्ते परम्परापराघातसञ्जातमतिविप्लवा
परम्परायाः पराघात उच्छेदस्तेन सञ्जातो मतेर्बुद्धेर्विप्लवो भ्रमो येषां ते तथोक्ताः । अयं भावः—येषां मते सिद्धान्तः प्रमाणं
तैः परिपाटीप्रामाण्यं प्रथमत एवाभ्युपगन्तव्यं सिद्धान्तप्रामाण्यस्यापि तत्प्रामाण्याधीनत्वात् अन्यथात्मागमानन्त-
रागमपरम्परागमपरतन्त्र्याभावेन मौनशरण एव नग्नाटः स्यात् । तत्र च श्रीसुधर्मस्वामिनं प्रारभ्य श्रीविजयदेवसूरिश्रीवि-
जयसिंहसूरिभिः सावतमवच्छिन्नेयमविच्छिन्नेत्यङ्गीकर्तव्यम् । अन्येषां तु शिवभूत्यादेः समुच्छिन्नत्वेन तत्परिपाट्याऽच्छिन्नत्वा-
भावात् । तथा हि—इहैव भरतक्षेत्रे रथवीरपुरं नाम नगरम् । तद्बहिश्च दीपकाभिधानमुद्यानं तत्रार्यकृष्णनामान
सूरयः समागताः । तस्मिंश्च नगरे सहस्रमल्लो राजसेवकः । स च राजप्रसादाद्विलासान् कुर्वन्नगरमध्ये पर्यटति रात्रेश्च
बहुतरेऽपगते निशान्ते गृहमागच्छति । तदेतदीया भार्या तन्मातरं प्रति भणति स्म । "निर्वेदिताहं त्वत्पुत्रेण । न खल्वेष रात्रौ
वेलायां कदाचिदप्यागच्छति तत उज्जागरकेण बुभुक्षया च बाध्यमाना प्रतिदिनं तिष्ठामि ।" ततस्तया प्रोक्तं "वत्से यद्येवं
तर्हि त्वमद्य स्वपिहि । स्वयमेवाहं जागरिष्यामि" । ततो वध्वा तथैव कृतम् । तस्यास्तु जाग्रत्या रात्रिप्रहरद्वयेऽतिक्रान्ते
शिवभूतिना समागत्योक्तं "द्वारमुद्घाटयेति" ततश्च कोपाकुलया तया भणितं "रे दुःशील । अस्यां वेलायां यत्र द्वार-

१ [illegible]

मुहूर्तादिने जयति तत्र गम ।" ततश्च सोऽपि कोशार्द्धकारप्रतिहो निर्गतः । पर्यन्ता च तेनोत्पादितत्रासः साधूनामाश्रयो
दृष्ट । तत्र च तेन साधवः काश्यमदुर्ग पुरतो वदित्वा व्रतमहणं याचिताः । तैश्च साधुभिर्निरनुज्ञातोऽयमिति कृत्वा
व्रतं न दत्तं ततः सैवमबकाशमां गृहीत्वा स्वयमेव लोचमकरोत् । साधवश्च लिङ्गं समर्पयामासुः सहेऽपि च तैः साधवोऽ-
न्यत्र विहृताः । कालान्तरेण पुनरपि तत्रागताः । राज्ञा च शिवभूतये कम्बलरत्नमर्पितं गुरुभिश्च शिवभूतिः प्रत्युक्तः "साधू-
नामध्वादिष्वनर्थसार्थनिबन्धनं किमर्थमेतद्गृहीतमिति" । ततस्तेन गुरोराज्ञामनापृच्छ्यापि मूर्च्छया प्रच्छन्नतया तद्धृतम् । प्रत्यहं
च तदयं संस्थापयति न च कस्यचिदग्रे प्रदर्शयति । ततश्च "मूर्च्छितोऽयमिति" गुरुभिस्तदागत्य तमनापृच्छ्यैव तत्कम्बलस्य
निषद्यं साधूनां प्रोञ्छनकानि कृतानि । सोऽप्येतद्व्यतिकरं प्रज्ञप्तकषायकलुषितहृदयस्तिष्ठति । एकदा च सूरयो जिनक-
ल्पिकान् वर्णयति । तथा हि-"जिणकप्पिआ य दुविहा पाणीपाया पडिग्गहधरा य । पाउरणमपाउरणा इक्किक्का ते भवे
दुविहा ॥ १ ॥ दुग ति चउक्क पणगं नव दस इक्कारसेव बारसगं । एए अट्ठ विगप्पा जिणकप्पे हुंति उवहिम्मि ॥ २ ॥
इत्यादि" । तदेतन्निशम्य शिवभूतिराह-"हन्त यद्येवं तर्हि किमिदानीमेतावानुपधिः परिगृह्यते स एव जिनकल्पः किं
नाद्रियते" । गुरुभिरुक्त-"अस्माभिरिति व्युच्छिन्नोऽसौ साम्प्रतं तथाविधसंहननाद्यभावात्कर्तुं न शक्यते" । ततः शिवभूति-
रवादत्-"मयि जीवति कथमेष व्युच्छिद्यते नन्वहमेव तं करिष्यामि । परलोकार्थिना हि स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पो
ऽङ्गीकार्यः किमनेन मूर्च्छादिदोषहेतुना परिग्रहेणेति ।" सूरिभिरुक्त-"धर्मोपकरणमेवैतत् न तु परिग्रहः । तथा-"जन्तवो
बहवः सन्ति दुर्दर्शा मांसचक्षुषाम् । तेभ्यः स्मृतं दयार्थं तु रजोहरणधारणम् ॥ १ ॥ आसने शयने स्थाने निक्षेपे ग्रहणे

यथा । पात्रसंगुपने चेष्टं तेन पूर्वं प्रमार्जनम् ॥ २ ॥" तथा च-"सन्ति सपातिमा सत्वा सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे । तेषां रक्षानिमित्तं च विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥ १ ॥ किं च-भवन्ति जन्तवो यस्मादन्नपानेषु केषुचित् । तस्मात्तेषां परीक्षार्थं पात्रग्रहणमिष्यते ॥ १ ॥ अपरं च-सम्यक्त्वज्ञानशीलानि तपश्चेतीह सिद्धये । तेषामुपग्रहार्थाय स्मृतं चीवरधारणम् ॥ १ ॥ शीतवातातपैर्दंशैर्मशकैश्चापि खेदितः । मा सम्यक्त्वादिषु ध्यानं न सम्यक् संविधास्यति ॥ २ ॥ तथा वस्त्राभावे शीतातपदंशमशकादिभिरभ्याकुलितस्याग्निसेवादिभिर्ध्यानसंभवे संयमविराधना स्यात् । तथा पात्राभावे बालग्लानादीनां वैयावृत्त्यमपि कुतो भवेत् । यः पुनरतिसहिष्णुतया एतदन्तरेणापि न धर्मबाधकस्तस्य नैतदस्ति । तथा चाह-'य एतान् वर्जयेद्दोषान् धर्मोपकरणादृते । तस्य त्वग्रहणं युक्तं यः स्याज्जिन इव प्रभुः ॥ १ ॥' स च प्रथमसंहनन एव न चेदानीं तदस्तीति तादृशानामाचार्यस्याप्यभावः तस्माद्यथा संयमोपग्रहार्थं भैक्षादिकं गृह्यते एवं वस्त्रादिधारणमप्युचितमेव" इत्यादिरुक्त्या प्रज्ञाप्यमानोऽप्यसौ तथाविधकषायमोहनीयकर्मोदयान्न स्वकदाग्रहान्न्यवर्तत किं तु चीवरादिकं त्यक्त्वा निर्गतः । ततश्च बहिरुद्याने स्थितस्य तस्य वन्दनार्थमुत्तरानाम्नी भगिनी समागता । सा च तथाविधं स्वं भ्रातरमवलोक्य स्वयमपि चीवराणि त्यक्तवती । ततो भिक्षार्थं नगरमध्ये प्रविष्टा सा गणिकयाऽवलोकिता । ततः "एवंविधामपि बीभत्सामिमां दृष्ट्वा नागरिकलोको माऽस्मासु विरंसीदिति" विचिन्त्य तया परिधापिताऽसौ । ततश्च व्यतिकरोऽनया शिवभूतये निवेदितस्ततोऽनेन "विवस्त्रा योषिदतितरां बीभत्सा भवतीति" विचिन्त्य सा प्रत्युक्ता-"इत्थमेव त्वं तिष्ठ एतद्वस्त्रं त्वया न त्याज्यं, देवतया हि दत्तमिदम्" । ततः शिवभूतिना कौण्डिन्यकोट्टवीरौ द्वौ शिष्यौ तावाचार्यशिष्यलक्षणा-

परंपरा प्रवृत्तेत्यादि । तस्मात्सिद्धान्तप्रामाण्यमनुपगच्छद्भिः परंपराप्रामाण्यमेवानुगन्तव्यमिति मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदय-प्रादुर्भूतविपरीतप्ररूपणाप्रवणा दिगंबरा तन्मतानुयायिनश्चाध्यात्मिका दूरतः परिहरणीया इत्यस्माकं हितोपदेश इति ॥ १६ ॥

एवं साम्प्रतमुक्तवदाध्यात्मिकमतनिर्दलनदक्षम् । रचितमिदं स्वल्पममलं विकचयतु सतां हृदयकमलम् ॥ १७ ॥
समजनि यत्स्वल्पमेतत्सुकृतं सृजतोऽनुसृत्य सूत्रं च । मम तेन जन्यलोको बोधिमणे सुलभतां लभताम् ॥

टीका-सुगममिदमार्याद्वयम् ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

विबुधनिकरमुख्ये शोभते मौढिमाढ्ये तपगणगुरुगाने सूरिहीराभिराम । अजनि रजनिनाथस्पर्द्धिकीर्त्तिप्रतानो मतिजितसुरसूरिर्हीरसूरिर्मुनीशः ॥ १ ॥ अकबरनृपदत्तश्रीमत्पट्टोदयाद्रौ महति विजयसेन सूरिराज महान्तो । प्रसरति घनसारे यस्य कीर्त्तिप्रताने विधुरजनकदम्बा लक्ष्ममात्रोपलक्ष्य ॥ २ ॥ विजयिविजयदेव सूरिराट् तस्य पट्टे स जयति प्रतिकोटीमौलिकोटीरकल्पः । कलयति न सपत्नीभावमस्य गौरीकृता यद्विबुधवरयशोभिः शैलपुत्रीदिशः किम् ॥ ३ ॥ श्रीविजयसिंहसूरिस्तत्पट्टवियन्नभोमणिर्जयति । यस्य प्रतापपूरा कुर्वीदितमं तमः नयति ॥ ४ ॥ वाचकपरिवृत्तिश्रीमत्कल्याणविजयशिष्याणाम् । गणाब्धविमलधिया शिष्या बुधलाभविजयानाम् ॥ ५ ॥ श्रीजीतविजयविबुधास्तेषां गच्छे जयन्ति गुणधीप । राजति तत्सतीर्थ्यः श्रीनयविजयाभिधा विबुधा ॥ ६ ॥ तच्चरणकमलसेवामधुकरकल्पेन यशोविजयगणिना । स्वोपज्ञाध्यात्मिकमतखण्डनवृत्तिर्विरचितेयम् ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

[illegible] श्रीनयविजयगणिशिष्यगणिना [illegible]

[illegible] समाप्तम् ॥

॥ अथ यतिलक्षणसमुच्चयप्रकरणम् ॥

गिहवासपासमुक्कं जिणवरं पणमिऊण जत्तिए । सुत्तोवएसवीइए सम्मं जइलक्खणं वुच्छं ॥ १ ॥ उस्सग्गववायाणं जय णाजुत्तो जइ गुणं भणिओ । विहि अ पडियरिआ सत्तविहं लक्खणं तस्स ॥ २ ॥ मग्गाणुसारिकिरिया पन्नवणिज्जत्तमुत्तमा सद्धा । किरियासु अप्पमाओ आरंभो सक्कणुट्ठाणे ॥ ३ ॥ गरुओ गुणाणुराओ गुरुआणाराहणं तहा परमं । अक्खय चरणधणाणं सत्तविहं लक्खणं एयं ॥ ४ ॥ सुत्तायरणाणुगया मग्गो मग्गणुसारिणी किरिया । सुत्तायरणपुव्वा ज जणिआ धम्मरयणम्मि ॥ ५ ॥ मग्गो आगमणीई अहवा संविग्गबहुजणाइन्नं । उभयाणुसारिणी जा सा मग्गणुसारिणी किरिया ॥ ६ ॥ अवलंबिअ ति गुरु किंची कायाइ कारणाविक्ख । आडम्बमहिय दीसइ संविग्गगीएहिं ॥ ७ ॥ कप्पाणं पावरणं अग्गोयरचाओ झोलिआभिक्खा । उवग्गहियकडाहय तुंबयमुहदाणदोराई ॥ ८ ॥ सिक्किगनिक्खिवणाई पज्जोसवणाइ तिहिपरावत्तो । भोयणविहिअन्नत्तं एमाई विविहमन्नं पि ॥ ९ ॥ जं सव्वहा न सुत्ते पडिसिद्धं नेव जीववहहेऊ । तं सव्वं पि पमाणं चारित्तधणाण भणिअं च ॥ १० ॥ अवलंबिऊण कज्जं जं किंचि समायरंति गीयत्था । थोवावराहबहुगुणं सव्वेसिं तं पमाणं तु ॥ ११ ॥ न य गुण पमायक्ख सुत्थावरचिनविरहिय मग्गं । सुहसीलमढाउल चरित्तिणो तं न सरंति ॥ १२ ॥ जह सड्ढेसु ममत्तं राढाइ असुद्धउवहिभत्ताइ । निद्दिज्जवसहि तूली मसूरगाईण परिभोगो ॥ १३ ॥ इच्चाइ असमंजसमणेगहा खुद्दचिट्ठिअं लोए । बहुएहिं वि आयरिअं न पमाणं सुद्धचरणाणं ॥ १४ ॥ सारमिओ परिणामो

चरवा ऋणमणुण्णएयवलो । इदि घुनणमनत्रिआयामनमाणो मउ मग्गो ॥ १५ ॥ इत्थ सुहोदनाणा सुत्तायरणा य नन्दधिरेद वि । गुरपरततमरेण जुत्त मग्गाणुमारित्त ॥ १६ ॥ एयारिमस्स जमिह गमणमणाजोगउ वि मग्गमि । अअप्प-भिनर्दीद मरेधरीउं उपदेठ ॥ १७ ॥ छक्केडरचक्कजोए गब्रिए अ अमग्गहमि चनमूले । पुमखाणुनधजुत्त एअ एमाइ गनवइ ॥ १८ ॥ एयमि नाणपवउं हेमपरूमा मया परेहिंपि । किरिया ज जग्गा वि हु एसा मुचइ ण तआव ॥ १९ ॥ रगु जावचरएर्डिग वद मग्गणुसारिणी नवे किरिया । ज अपुणवधगाण दवजइण पि सा इत्ता ॥ २० ॥ जायइ य जणवाणं गुभाअगहे रवएवसायाए । मग्गणुमारित्त पुण हविज्ज तम्मदयाए वि ॥२१॥ दहुअत्ते कम्माण तीए जणिअ नवे च गुणदीअं । वसदोसु गण्डइ नाणाइजुअ च लिङ्गयउं ॥ २२ ॥ नाणाइविमेसजुअ णय त ङिग तु जानचरणस्स । नवनाचे तआवा मागणुसारेण जं जलिय ॥२३॥ गुरपारततनाए सद्दहणपयमगय चेव । इत्तो ठ चरित्तीण मासतुसाईण लिरिउ ॥ २४ ॥ तेर्नि वि दवनाउ एय इवमिचार्ड दवदंमणउ । गीयउणिस्सिआण चरणाजानप्पसगाउ ॥२५॥ दुविहो इणे विहारो जाववरित्तीण नगवया नणिउ । एगो गीयत्थाए वितिउ तणिस्सिआण च ॥ २६ ॥ सलेनाविरकाए इवइ दमत्तं व दवतं । जगइ डेगुनगिज्जइ अयाणमाणे वि मम्मत्त ॥२७॥ सवरपमा जइह लिगे अप्रत्तरस्स चरणस्स । य दउके दव कमारस च अ नाणो ॥ २८ ॥ ए उक्करूवमरिम नावचिरहीए नयानिणदीए । अदन वह पि त्रिसिउ लिंगमा आरचरस्स ॥ २९ ॥ दुक्कुरणगुरुदेण मयुष्णे अह पुण विनिवाण । तह अपुणर्वंधयरणाइनायगेहें वि [illegible] ॥ ३० ॥ मग्गणुसारिकिरिया [illegible] । विहियनिसेहसु [illegible] ॥३१॥

॥ ३१

निच्छयमयववहारनयउस्सग्गअववायतदुभयगयाइं । सुत्ताइं बहुविहाइं समए गंभीरभावाइं ॥ ३२ ॥ पिंडिमणछुमपसयरि
क्खिमियाऊनयसममाइं । उज्जीवेगविहारा वाहिविगिज्जा य णायाइं ॥ ३३ ॥ तेसिं विसयविभागं मुज्झइ मुग्गहरवं अया
णतो । थेवेइ तं च णाउ पण्णवणिज्जा सुगीयगुरू ॥ ३४ ॥ अवसिट्ठं णाचित्ता विंतिय अणवरयरक्कजायं से । परिणामउ म
णम्म जं जणिय कण्णजागमि ॥ ३५ ॥ सविग्गजाणियाण सुवयदिट्ठंतभाविआण य । मुत्तूण निवत्तगाहं जायं च पहुति
गुरुतं ॥ ३६ ॥ सो वि य मग्गं जाणइ गुरुदिन्नं निरवसेसपज्जायं । णय उत्ताणमईए पच्छयमित्ते हवइ ज्जो ॥ ३७ ॥
जह थोडिआयरयण सोउ आयायरम्ममूढाय । परद्दाराइपदाणा त कोइ मुया विसेसेइ ॥ ३८ ॥ ए य जाणइ अज्ञ
रिणइ अपरिणइनया कयम्मि मूढनए । कालियसुअम्मि पायं उवरंग तिण्ह ज जणिय ॥ ३९ ॥ मूढनइअ सुअं कालिअ
तु न णया समोअरंति इह । अपुहत्ते समोआरो णत्थि पुहत्ते समोआरो ॥ ४० ॥ तया । एएहिं दिट्ठिवाए परूवणा सुत्त
अत्थकहणाय । इह पुण अणुयोगो अहिगारो तीहिँ उसस ॥ ४१ ॥ पाय पगिज्झमग्गो अपरिणई नाइपरिणई वा वि ।
आगमिक्के तआवो पुरेहिं ता गुरुदिट्ठमिण ॥ ४२ ॥ पवयणाइदिगाए अगेसु वि एवमागमत्थेसु । पक्किज्जइ जायत्थ
निउणं पन्नविज्जाउ ॥ ४३ ॥ जो नय पन्नवणिज्जो गुरुवयण तस्स पगाइमहुरंपि । पित्तज्जरगहियस्स व गुलसक्करदुद्धमा
जाउ ॥ ४४ ॥ पन्नवणिज्जस्स पुणो उत्तमसद्धा हवे फल जीसे । निद्दिसेणा य अनघा गुरुसेवणा सव्विअपरिसुद्धी ॥
॥ ४५ ॥ गच्छाए मणिजुत्ते निद्दिसारं घेव सेवए किरियं । तप्परकसायहीणो ण हवे दव्वाइदोसे वि ॥ ४६ ॥ जह
सम्मसुविद्धावं समरे पच्चाइणा नमाइण्णं । जायो न पराभवइ एमेव महाणुभावस्स ॥ ४७ ॥ माउइगुणगुणोमहुअरस्स तप्प

रुकषायहीणत्त । पडिनधे वि न कइश्रा एमेव मुणिस्स सुहजोगे ॥ ४० ॥ अपयटो वि पयटो नारण एग नेण तस्सगी । अरुखिश्रा निमित्ताउ कम्मरुउवसमजोगाउ ॥ ४ए ॥ निरउ मुजारमग्र क्रिचि अनत्थगउ असुहमण । पुण नम्मि न रजाइ सुहजोअणाढसो धणिश्र ॥ ५० ॥ इय सुद्धचरणसहिउ सेवतो दवउ निरुद्ध पि । मगुणेण एमो न गारचरण अइक्कमइ ॥ ५१ ॥ अवहपश्नाजणिश्र नाव पाखेउमायररकाए । तीए चेन ण हाणी सुयकेवलिणा नउ नणिश्र ॥ ५२ ॥ चिरिकिश्नवालमायसरेणुकटगतणे वहुअजखे श्र। लोगो वि निनइ पहे को णु विसेसो नयतस्म ॥ ५३ ॥ जयणाजयण च गिही सचित्तमीसे परित्तणते श्र । न निजाणति णयासि अनदपश्ना अह विसेसो ॥ ५४ ॥ अत्थि नाले मरणनया परिस्समनयाउ ते विनजेइ । ते गुणदयापरिणया मुरकधमिसी परिहरति ॥ ५५ ॥ अनिलिउमि वि जोगमि वाहिरे होइ निहुरया इहरा । सिद्धस्स उ सपत्ती अफला ज देसिश्रा समए ॥ ५६ ॥ इक्कमि वि पाणिवहमि देसिश्र मुमहतर समए । एमेन णिज्जरफला परिणामवसा वहुविहीश्रा ॥ ५७ ॥ जे जत्तिश्रा य हेऊ नवस्स ते चेव तत्तिश्रा मुरके । गणणाईश्रा लोगा दुण्हवि पुन्ना नवे तुल्ला ॥ ५० ॥ इरिश्रावहिश्राईश्रा जे चेव हवति कम्मवधाय । अजयाण ते चेव उ जयाण णिवाणगमणाय ॥ ५ए ॥ एगतेण णिसेहो जोगे स ण देसिउ विही वा वि । दलिश्रं पप्प णिसेहो हुज्ज विही वा जहा रोगे ॥ ६० ॥ जमि णिसेविज्जते अइआरो हुज्ज कस्सइ कया वि । तेणेव य तस्स पुणो कयाइ सोही हविज्जाहि ॥ ६१ ॥ अणुमित्तो वि न कस्सइ बधो परवत्थुपच्चउ नणिउ । तह वि खलु जयति जई परिणामविसोहिमिछता ॥ ६२ ॥ जो पुण हिंसाययणाइएसु वट्टइ तस्स नणु परिणामो । दुट्ठो ण य त लिंग होइ विसुद्धस्स जोगस्स ॥ ६३ ॥

तम्हा सया विसुद्धं परिणामं इच्छया सुविहिएण । हिगायव्वणा सये परिहरिअव्वा पयत्तेणं ॥ ६४ ॥ एएण पवंचेणं निदि-
गवाविक्खणाइसवाए । नायव्वं भणिअं अइप्पसंगो फुडो इहरा ॥ ६५ ॥ पाउणइ एव तित्थं मच्चाएं नाणचरण-
वज्जाणं । वेयावच्चाइसु अणुवगरणे य उक्कासइ ॥ ६६ ॥ कुणयवच्चरसणाइसु धम्मत्थि ति । अहिआहिय
गुणअत्थी अणुसरइमो इवइ तम्मि ॥ ६७ ॥ तुच्छस्स जहा गणमवि विजिज्जइ णेव जोग्गणो इया । एव मोक्खस्सीण
विज्जइ इमा ण करोमि ॥६८॥ इत्तो चेव अणाण इवइ अणुजाणमो पहाणयर । तम्भवगुणकाई गयो तिसीड एगत्थ ॥६९॥
गुणविसिअणागमत्थो गढंगयगुणगुणअणुणाउ । मगवत्थो विवयंगी सुविसुद्ध दंसण गुणइ ॥ ७० ॥ ए परिच्चिआ जेण
गुणा गमयत्था तस्स णत्थि अणुजोगो । सो गरूयणिज्जो जं भणिअ समईइ इम ॥ ७१ ॥ जह जह बहुस्सुओ सम्मओ
अ सीसगणसंपरिवुडो । अविणिच्छिओ अ समए तह तह सिद्धंतपडिणीओ ॥ ७२ ॥ नाणाइ जो विसेसं न जाणए इयर
गम्मयणो वि । मिच्छा तस्सुवएसो महाणिसीहंमि जं भणिअं ॥ ७३ ॥ सावज्जणवज्जाणं वयणाणं जो न जाणइ विसेसं ।
वुत्तुं पि तस्स ण खम किमंग पुण देसणं काउं ॥ ७४ ॥ दाणपसंसणिसेहे नह किर दुहओ वि नासण वियम । भणइ
सीयत्थिहि सुत्ताणुस्सं सु दोण्ह वि ॥ ७५ ॥ पत्तमि न पडिसं अणुवपागयं च न दाण । जं च गुणंतरहेऊ पत्तमणिओ
गयं हाउ ॥ ७६ ॥ अगरस य पडिसेहे गुणविरोहो ण खमउंपि जओ । जेण परिणामवसा निसिद्धओ वहित्ता य ॥७७॥पत्तं
च होइ निविद्धं दसणपत्ता य अणयगुहिडी । पडमिहसुत्थं च धम्मिय महिगिह वयडिते डिसी ॥७८॥तस्सारणएण गुणो
पत्तमपत्तं च होइ पविसत्तो । णिच्छयओ पुण सव पत्तमपत्तं च णो विसय ॥७९॥ जं पुण अपत्तदाणे पावं भणिअ धुवं नगरईए।

त खलु फुम अपत्ते पत्ताजिणिवेसमहिगिच्चा ॥ ७० ॥ इहरा उ दाणधम्मे सकुइए होइ पवयणुड्डाहो । मिछत्तमोहजणउ इय एसा देसणासुद्धा ॥ ७१ ॥ इयरेसु वि विसएसु जासा गुणदोसजाणउ एव । जासइ सव सम्म जह जणिअ खीणदोसेहिं ॥ ७२ ॥ गुरणा य अणुसाउ गुरजाव देसउ दहुं जम्हा । सीसस्स हुति सीसा ण हुति सीसा असीसस्स ॥ ७३ ॥ सत्थणुणा वि तीरइ मग्गत्थेणेव सासिउ सव । सछद नो जपइ जमेस आहच्च जणिअ च ॥ ७४ ॥ ज च ण सुत्ते विहिअ ण य पडिसिद्ध जणमि चिररूढ । समइविगप्पियदोसा त पि ण दूसति गीयत्था ॥ ७५ ॥ सविग्गा गीयतमा विहिरसिआ पुवसूरिणो आसी । तददूसिअमायरिअ अणइसई को णिवारेइ ॥ ७६ ॥ अइसाहसमेअ ज उस्सुत्तपरूवणाकडुविवाग । जाणतेहि विहिज्जइ णिद्दोसा सुत्तवअत्थे ॥ ७७ ॥ णिययावासाईअ गारवरसिआ गहित्तु मुद्धजण । आसनण अपुठ पारूति पमायगत्तमि ॥ ७८ ॥ आवणाए जरिउ लोगो जीवस्स अजयकामस्स । ज ज पिछइ लोए त त आवनण गुणइ ॥ ७९ ॥ जो ज सेवइ दोस सणिहिपमुह तु सो अजिणिविट्ठो । ठवेइ गुणमहेउ अववायपय पुरो काउ ॥ ९० ॥ परिहरइ ज च दोस सछदविहारउ अजिणिविट्ठो । कप्पियसेवाए नि हु लुपइ त कोइ पडिणीउ ॥ ९१ ॥ त पुण विसुद्धसद्धा सुअसवाय विणा ण ससति । अवहीरिऊण नवर सुआणुरूव परूविति ॥ ९२ ॥ उवइसइ धम्मगुरु हिअकखी अप्पणो परेसि च । पत्तापत्तविवेगो हिअकसित्त च णिघहइ ॥ ९३ ॥ पत्तमि देसणा खलु णियमा कल्लाणसाहणं होइ । कुणइ अ अपत्तपत्ता विणिवायसहस्सकोडीउ ॥ ९४ ॥ निफला इमा अपत्ते उस्सणप्पा तउ जउ जणिआ । पढमे कुठे बितिए मूढे वुग्गाहिए तइए ॥ ९५ ॥ आमे घडे णिहत्त जहा जल त घडं विणासेइ । इय सिद्धतरहस्सं अप्पाहारं

॥ ९६ ॥ गिय एय मकोए ण जुआए नउ पुण पुव्वं । न तं मयव्वं अगिकगाउ मागुव्वं ॥ ९७ ॥ क य पु-
रिगेइयाइ वयणाउचिय ववठियं एवं । इय दगाणा विपुवा ज्ञाग मिउगगमणाउ ॥ ९८ ॥ आउट्टियाउजणियं कयाउ पार
गुस्स पहुवि अउआर । णाउण विअरुणाण गोहुंति मुणी निमझगका ॥ ९९ ॥ आउट्टिया उणिया दगो पुण होउ
वग्गणाउंउ । विगहाइउं पमाउं कणो पुण कागण कराण ॥ १०० ॥ गवाइ अगगतो हविग्न किग्यिापु नेण नांर ।
किरियाणं गापउ जं नणिय धम्मरयणमि ॥ १०१ ॥ पयञ्च विञ्च वि य गाहगो होउ नो पमाञ्झो । तस्स ण निग्रउ गगा
फरेइ गहचं प अययारं ॥ १०२ ॥ पमिउहणाउ विचा ञ्जायविघाउणी पमत्तरग । नणिया गुञ्यंमि नम्हा अगमाउं
गुणिहिउं हुञ्चा ॥ १०३ ॥ रग्गइ यगगु मविअं उरउगो होउ गमिउगुत्तीगु । यञ्ञउ अरञ्चइउ पमायगग्झं गुणिर-
धिसो ॥ १०४ ॥ काउंमि अणूणहिअं किरियतरविरहिउं जहा गुत्तं । आयरउ मग्रकिग्यि अगमाउ नो उह पाम्ती
॥ १०५ ॥ जह विविग्गं निग्य गमां मग्गगुणो णगग्गान । हञ तह मिरञान णिच्चं अगमायगग्गुद्धी ॥ १०६ ॥
कम्माणं अपमाया अणुबंधावणयण प होञ्चाइ । तत्तो अकरणणियमो उक्कग्गयकारणं होउ ॥ १०७ ॥ पमिनंधाउवि
यउ वंदगजरमोक्खमनिनाउअ । इयइ अणुबंधविगमा पयाणनगो ण दीहयरो ॥ १०८ ॥ गाउंयगमिगनाव दढगगय
गुदं अणुचाणं । परिवमिअं पि य हुञ्चा पुणो वि तञ्चारयुद्धिकर ॥ १०९ ॥ अञ्चमहागिम्यिश्रं जानंतो माणसंमि उञ्चा
मइ । अणिगूहिय णियथामं अपमायसगेन कगवहो ॥ ११० ॥ गनमनोगयु मया न पुण मंतनिग्या वि मीअंति । पइन वि
गुवगरणा पाहिरकरणाग्गगा हुंति ॥ १११ ॥ अणुबंधजुअ गुमञो णियोडु अणागो अ अपमायं । आयगुरुविगणयसुउ

सकं चिय कुणतो ॥ ११२ ॥ सहसा असक्कचारी पवरपमायमि जो पमइ पच्छा । खलमित्तिय ण किरिया सलाहणिज्जा हवे तस्स ॥ ११३ ॥ दयाइनाणनिउण अपमत्तो गुरु असक्कचारि जो । सिवचूडय कुणतो हिरूइ ससारम्मि ॥११४॥ दवइ असक्कारत्तो अनुक्करिसजणएण कम्मेण । निउणेण साणुवध णज्जइ पुण एसणिज्जं च ॥ ११५ ॥ सघयणादणुरूवे गकारजे अ माहए वट्टुअ । चरण निवरुइ न पुणो असजमो तेणिमो गरुउ ॥ ११६ ॥ सघयणाईआलवण तु सिढिला ए जं चरणघाई । सक्कारजाए तय तनुक्किकर जउ जणिय ॥ ११७ ॥ सघयणकालबलदूसमारयालवणाइ चित्तूण । सय चिय णियमधुर णिरज्जमाउ पमुचति ॥ ११८ ॥ कालस्स य परिहाणी सजमजुग्गाइ णत्थि खित्ताइ । जयणाइ वट्टिअव्व ण उ जयणा जजए अग ॥ ११९ ॥ जायइ गुणेसु रागो पढम सपत्तदसणस्सेव । किं पुण सजमगुणउ अहिए ता तमि यत्तव ॥ १२० ॥ गुणवुड्ढिइ परगयगुणरत्तो गुणलव पि ससेइ । त चेव पुरो काउ तग्गयदोस उवेहेइ ॥ १२१ ॥ जइ अइमुत्तयमुणिणो पुरो क्य आगमेसिजइत्त । थेराण पुरो न पुणो वयखलिअ वीरणाहेण ॥ १२२ ॥ एत्तोच्चिय किइकम्मे अहिगिच्चाउवण सुअपुदय । गुणलेसो वि अहिगउ ज जणिअ कप्पजाममि ॥ १२३ ॥ दसणनाणचरित्त तवविणय जत्थ जत्तिअ पासे । जिणपन्नत्त जत्तिइ पूअए त तहि जाव ॥ १२४ ॥ परगुणमसा उचिया असाहसाहारणत्तणेव तहा । जह निद्दिट्ठा जिणवरणा गुणनिहिणा गोअमाईण ॥ १२५ ॥ परगुणगहणावेसो जावचरित्तिस्स जइ जरे पवरो । दोसलवेसु वि निअण जहा गुणे निग्गुणे गुणइ ॥ १२६ ॥ पक्खिवस्स न हेउ णियमा पयस्स होइ गुणहीणो । सयणो वा मीसो वा गणिवउ वा अन्नं जणिअ ॥१२७॥ मीसो सज्झिलउ वा गणिवउ वा न गोगइ गोइ । जे तत्थ नाणदसणचरणा ते

गुणाईमग्गो ॥ १२८ ॥ कम्मारम्भा जय गारव मग्गेमि न वि गुणहीण । अप्पत्तागुणं पुण अप्पत्ताणुचो उवेइ ॥ १२९॥
गुणरागी य ववहइ गुणग्गाणनिम्मीण पाग्गंतमि । सयपु वि पञ्चेसु मामाणमाणिसमिद्दरा उ ॥ १३० ॥ तेण समागममाणाणं
दुल्लंति य नाणि समयणिम्म । अविअपडजिव्णा मयाथ वि गुणमज्जाया ॥ १३१ ॥ ण धद्दइ जो गुणगय दोसलय
कड्डिय गुणे वि । तस्स णियमा परित्त नत्थि त्ति चलति समयणू ॥ १३२ ॥ गुणदोसाण य नणिय मग्गस्स वि निणि
दमणिय्य । गुणदोसो पुण दीसा मोहमहारायआणाए ॥ १३३ ॥ सयणप्पमुहेहिं ता जस्स गुणम्मि णाहिउं रागो ।
तस्स न दंसणसुद्धी कत्तो चरणं च निवाण ॥ १३४ ॥ उत्तमगुणाणुराया कालाईदोसउ अपत्ता वि । गुणगणया
परय वि न दुल्लहा होउ नरालं ॥ १३५ ॥ गुणरत्तस्स य मुणिणो गुरुआणारहणं हवे णियमा । बहुगुणरयणनिहाणा
एउ न अहिउं पउ को वि ॥ १३६ ॥ निउ दुण्णिवारं अम्मापिउणो तहेव उदहिस्स । धम्मायरियस्स पुणो नणिअ
गुणो विसगउं ॥ १३७ ॥ आपरवाउ दाना गुरुआणाराहणे जहा दूति । दूति य कयगुणआए गुणा गरुला जउ
नणिया ॥ १३८ ॥ तारस्स होउ नाणी विरयउ दसणं चरित्त य । धन्ना आराहणाए गुरुगुरुयस्स न मुचति ॥ १३९ ॥
पवगुणधम्मनउ नणिउं आयारदसगुणमि । गुरुगुणरागो तस्स य दोसा वि गुणा जउ नणिअ ॥ १४० ॥ एयस्स
परिभासा गुरुगुरुक्ख पाव हियवालि । कम्माउ वि पगिट्ठ गुरुआणारहिणो त्ति ॥ १४१ ॥ आयसवा मणागुण कालो
किसासो नरपवा भाणा । आउगिनमल वि गहाय नणिअं पकप्पमि ॥ १४२ ॥ गुरुआणाए चाए जिणवरआणा न
होउ नियमा । सउन्दिमाणालं हरिभद्दा पउ नणिअ ॥ १४३ ॥ एअम्मि परिचत्ते आणा सन्तु नगयउ परिचत्ता ।

सीए व्व परिचाए तुच्छा वि लोगाण पाउे त्ति ॥ १४४ ॥ नणु एत्र कह जणिउं दिट्ठतो गामजोइनरयणो । जम्हइ अप-माणिाए गुरुणो जगा न नायाणा ॥ १४५ ॥ तित्थयरवयणकरणे आयरिआणं पए कय होइ । एसोच्चिय जणिअमिण इत्थ्वराायसंवहा ॥ १४६ ॥ जिणकप्पाइपवित्ती गुरुआणाए विरोहिणी न जहा । तह कज्ञतरगमणे विसेसकज्ञस्स पडिवओ ॥ १४७ ॥ नायस्स उ णिरंके जिएगुरुआणाए होउ तुच्छ । मरिस णासा जणिय महाणिसीहम्मि फुरुमेय ॥ १४० ॥ गुणपुण्णस्स वि युधो गोअमणाएण गुरुकुले वासो । तिणयगुदमणरागा किमग पुण चच्चमिअररस ॥ १४९ ॥ एव भोत्थो एसो पुत्रयपुराएण समयजणिएण । चयानावे वि डह सरेगो देसणाइहि ॥ १५० ॥ सताइगुणफरिसो मुनि-हियसंगण वेजगुत्ती य । गुरवेयावच्चेण य होइ महाणिञ्जराआहो ॥१५१॥ मूढो इमस्स चाए एएहि गुणेहिं वचिउ होइ । स्सागिलिखिदाराण य एमउ जणिअं च ठेहमि ॥१५२॥ जह सागरम्मि मीणा मखोह सागरस्स असहता । निति तउ सुह-कामी णिग्गयमित्ता विणस्सति ॥ १५३ ॥ एव गच्छसमुद्दे सारणमाईहि चोइया सता । निति तउ सुहकामी मीणा व जहा विणस्सति ॥ १५४ ॥ नणिया आयारम्मि वि दुहा दोसेय णायरियन्ति । तहिठीए इचाइयणउ गुरुउल गरुअ ॥ १५५ ॥ जं पुण गणा पविक्का इच्चाइसुत्तमेगचारित्ते । त पुण विसेसविसय गुणिवणुद्विहि दव्वं ॥ १५६ ॥ पाव विरज्जणो पालेसु तहा धम्मकामाणो अ । सम्मुणो एगो पुण गीयत्थो चेय नजयउ ॥ १५७ ॥ णागीठे अणाणी किं का हिआरयणाए ठेउ । छविहरस्स विहारो खविय लिणिञ्जो पुठ्ठे गणए ॥ १५८ ॥ गीयत्थो अ विहारो बीउ गीयत्थनी सिउ भणिओ । एत्तो तइअविहारो नाणुन्नाओ जिणवरेहिं ॥ १५९ ॥ पमाणियस्स दोसा इत्थी साणे सवत्त पडिणीए ।

जिणवयणमोहिं महयव तम्हा मविइज्जाए गमणं ॥ १६० ॥ जाउ अ अजाउ य दुविहो कप्पो य होइ विन्नेउ । इक्किक्को पुण दुविहो समत्तकप्पो असमत्तो ॥ १६१ ॥ गीयत्थजायकप्पो अगीउ पुण भवे अजाउ अ । पणगं समत्तकप्पो तदूणगो होइ असमत्तो ॥ १६२ ॥ उउबद्धे वासासु अ सत्त समत्तो तदूणगो इयरो । असमत्ताजायाणं उहेण न होइ आभव्वं ॥ १६३ ॥ ता गीयमि इम खलु वयणं कालंतरायनिमयत्ति । सुत्त अत्थगत्थ गिउणर्हि ततणीईए ॥ १६४ ॥ उस्सन्न पुणो तस्स वि विमले काल तहा वि ण विहारे । जणवत्तायजयाउ वज्जिउ एग तंतमि ॥ १६५ ॥ कालंमि संकिलिट्ठे छक्कायदयावरो वि संविग्गो । जयजोगीणमलंभे पणगन्नयरेण संवसउ ॥ १६६ ॥ इय एगागिविहारे अउदयसत्थउ सुणि गुरू । गुरुकुलवासच्चाउ लेसेण वि नारउ णत्थि ॥१६७॥ गुणव य गुरू सुत्ते जहुत्थगुरुसहनायण उत्तो। इयरो पुण विवरीउ गच्छायारंमि ज भणिअ ॥१६८॥ तित्थयरसमो सूरी सम्मं जो जिणमय पयासेइ। आण य अइक्कंतो सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥ १६९ ॥ भट्ठायारो सूरी भट्ठायाराणुविक्खउ सूरी । उम्मग्गठिउ सूरी तिन्नि वि मग्ग पणासंति ॥ १७० ॥ एए गुणो अगुणा पवज्जारिहगुणेहिं पवज्जा । गुरुउवरागो अ सया अणुक्कयमीलत्तमवि सम्म ॥ १७१ ॥ खंती समो दमो वि अ तवागुत्तं च सुत्तत्थआगो । सत्तहिअमि रयत्त पवयणवच्छलया गरुई ॥ १७२ ॥ जयाणुवत्तयत्त परमं धीरत्तमविय सोहग । णियगुरुणाणुणाए पयंमि सम्मं अवठाण ॥ १७३ ॥ अनिमाउ परलोए थिरहत्थोनगरणोवसमसज्जी । निउण धम्मकहित्त गंभीरत्त च इयाइं ॥ १७४ ॥ उनयमूचियकिरियापरो उमो पवयणाणुरागी य । सगमयपण्णवउ परिणउ अ पत्तोय अघत्थं ॥ १७५ ॥ जो हठवायपक्खंमि हठउ आगमे अ आगमिउ । सो ससमयपण्णवउ सिद्धंतविराहगो अन्नो

॥ ९६ ॥ [illegible] मा गुणुम्मिज्जइ वि होइ गुरू । गउगुणगणा जइ आगमिया होइ नं नत्थि
॥ ९७ ॥ [illegible] गुरु [illegible] दढो आगुणविहूणो वो । न उ गुणभिज्जिइणोवि भगवओ उदाहरणं ॥ ९८ ॥ मू
[illegible] वि य गुणगणा जुया । होमउय वि य निच्छा तस्सुणिज्ञा तयरि नं नत्थि ॥ ९९ ॥ मूल
[illegible] होउ गुणो [illegible] । मूलुत्तरगुणे उच पडम्मिछओ वत्तुमवि ॥ १०० ॥ जत्तो सुगीमणहो एव
[illegible] वि य [illegible] मीनयु ॥ १०१ ॥ नणु गउगणमयाए जइ तहं गउगणम गीमत्त ।
[illegible] ॥ १०२ ॥ नन्न य मूलगुणेसु मनेमु गणवुवागाइ । तेमि तम्म य गुणिक्कमाइ
[illegible] ॥ १०३ ॥ गउगुणगणुकम्म य होने वि घरकारु उवहणिउ । धम्मायणमि नत्थि पयणणायति
[illegible] ॥ १०४ ॥ [illegible] गुरु च पवगम्मा वि । अइगिय उ गुणगाय विमेमिउं पयउं तहवि ॥१०५॥
[illegible] वि जइ वि गुरुगउं । तह गिय परिणामरमा उक्किटो पयगम्मंगो ॥ १०६ ॥ एय पच्च
[illegible] । [illegible] मुढं जइ रत्तो सुवन्नो ॥ १०७ ॥ वत्थुगुणेण मणा मण गीहेण मा-
[illegible] मरुविउं च रत्तो ॥ १०८ ॥ कम्म वि वज्जइ पीइं धम्मोपायमि दढयरा होइ । एय
[illegible] ॥ १०९ ॥ [illegible] उ गुणगुणरिमउं ण मंगावो । गुणगयाइ ग रत्तो आवो
[illegible] ॥ ११० ॥ [illegible] पयणो य [illegible] । गुणेगणगयकर विहरेमाण [illegible] गोमो ॥ १११ ॥

[illegible]

गम्मे वि धम्मविणय जत्थुत्तरिय दलिज्ज अगत्थ । आणुमिय विहारो तस्स जत्थ जाणिज्ज कम्मे ॥ १९२ ॥ गणिणमिहारीणं किं पुण तेसिं महाणुजाणाए । अह उवमपयाए कणियअन्नोन्नयाराए ॥ १९३ ॥ धम्मविणयं वि तम्मि आणुत्तिय पडिक्खाए जह परमो । तह तेहिं तानिअसणि णायवो पंचगमुणिस्स ॥ १९४ ॥ एगो वि अ मिहिओत्ति य पडिमारिमयं हुय हवइ इत्तो । जं साहूहि ण मिहिओ तकज्जं अणुमज्जं होइ ॥ १९५ ॥ कणिअसरालवायगामदपेण मेञ्चगस्साति । गिहिवत्त ण उ जग मूलपडजाइ ज जणिअ ॥ १९६ ॥ मिहिणिअसजमस्साति होउ उजामति जइ पन्ना । मरेगाउं तो मेञ्चउ व आराहया होंति ॥ १९७ ॥ पामत्थपाउदोसा मिञ्चायरपिञ्जोअणाहि । उवमाइया य इणो णायअयणस्स वि सीय ॥ १९८ ॥ अणुजाउ विहारो पञ्जोचिय मुत्तु तेण पडिबंध । पडिअयो मूनाइं नयनगो पुण जउं जणिअ ॥ १९९ ॥ आयस्स जाव दाए तावपमेण वि णो अइक्कमइ । एग थउकमंतो अइकमे पच मूलगण ॥ २०० ॥ उवरआइ उत्तरगुण विराहणाए अहीअणिज्जस्स । जइ उ गुरुभासिआए ईमाणुरायजोग्गाए ॥ २०१ ॥ णिकारणपडिमया चरणगुण णासंति जं जणिअ । अप्परमायविसेसा पडिनयो तस्स पड़ित्ते ॥ २०२ ॥ इय गुणगुयस्स गुरुणो हुवमरत्य कयाउ पत्तस्स । मया पयगणाया णिद्दोसा होइ णायवा ॥ २०३ ॥ जे पुण गुणेहि हीणा मिच्छद्दिट्ठी य सपपासत्था । पयगणाया मुद्धं मीम चोअति ते पावा ॥ २०४ ॥ चरणचरणागमो वि अ सुद्धं मग्ग पस्वए जो सो । तेण गुणेण गुरुचिय गच्छायारंमि न जणिय ॥ २०५ ॥ गुद्ध गुणाहुमग्ग कहमाणो जनइ तइअपरकंमि । अप्पाण इयरे पुण गिहत्थधम्माउ चुर्कति ॥ २०६ ॥
न न सद्ध काउ सम्म जिणजाभिअ अणुट्ठाए । तो सम्म जासिज्जा जह जणिअ सीणरागेहिं ॥ २०७ ॥ जंसस्सो य-

विहारो धम्मं सोहइ सुअदयोहीअ । चरणकरण विसुद्ध उवबूहतो परूवतो ॥ २०८ ॥ सम्मग्गमग्गसपट्ठिआण साहूण कुणइ वच्छलं । ओसहभेसज्जेण य सयमन्नेण तु कारेई ॥ २०९ ॥ एयारिसो ण पावो असजउ सजउ त्ति जंपतो । जणिउं णियपणं जं पावो पावसमणिज्जे ॥ २१० ॥ किं पुण तित्थपभावणवसेण एसो पसंसणिज्जगुणो । सण्णाणुमोअणाए रखाजोगा य ज जणियं ॥ २११ ॥ नाणाहिउ वरतरो हीणो वि हु पवयण पभावतो । ण य दुक्कर करतो सुट्ठु वि अप्पागमो पुरिसो ॥ २१२ ॥ हीणस्स वि सुद्धपरूवगस्स नाणाहिअस्स कायवा । इय वयणाउ तस्स वि सेवा उचिया सुसाहूण ॥ २१३ ॥ तम्हा सुद्धपरूवगमासज्जगुरुं ण चेव मुचति । तस्साणाइ सुनिहिआ सविसेस उज्जमंति पुणो ॥ २१४ ॥ एअं अवमयंतो वुत्तो सुत्तमि पावसमणुत्ति । महमोहबंधगो वि अ खिसतो अपरितप्पतो ॥ २१५ ॥ सविसेसं पि जयतो तेसिमवन्न विवज्जए सम्मं । तो दसणसोहीउ सुद्ध चरण लहइ साहू ॥ २१६ ॥ इय सत्तलक्खणधरा आणाजोगेण गलियपावमला । पत्ता अणतजीवा सासयसुक्खं अणाबाहं ॥ २१७ ॥ सिज्झिस्सति अणंता सिज्झति अपरिमिआ विदेहंमि । सम्म पसंसणिज्जो तम्हा एयारिसो साहू ॥ २१८ ॥ एयारिसो अ साहू महासउ होइ दूसमाए वि । गीयत्थपारतंते दुप्पसहंत जउ चरण ॥ २१९ ॥ जो पुण अउविरवत्त दहु साहूण जणइ वुच्छेअ । तस्स उ पायच्छित्त एय समयंमि उवइट्ठं ॥ २२० ॥ जो जपइ णत्थि धम्मो ण य सामइअं ण चेव य वयाइ । सो समणसघअो कायवो सवसंघेण ॥२२१॥ बहुमुण्डरयवडुउं आणाजुत्तेसु गहिअपडिबंधो । विहरंतो वि मुणिच्चिय अगहिअगहिअस्स णीईए ॥२२२॥ अत्थपय जाणणाए अरत्तदुट्ठस्स सुद्धचित्तस्स । दोसलवे वि विणस्सइ ण नाणचरणं जउ जणियं ॥२२३॥ बहुगुणजीवेहि निव्व दोसलवा तेसु णियम

गननिणो । जइ तेहिं नजाणिओ अयजाणिओ तओ णत्थि॥२२४॥आगयगुज्झिउ तओ गुरुपरंतरग गुरुत्थिगरग नायजजरा गुत्तं यायप्पयाणणिरयस्स ॥ २२५ ॥ इय सचाखग्कणत्थो गंगहिउं गुयकुततनकत्थं । फुरुनिश्चओ नि य नणिउं मयरंगिमणु गणहराए ॥२२६॥ तयगणरोहणगुरुगिरिसिरिणयजिनयानिहाणगिउहाण । मीणेण पि अ रज्य नगरणमेयं गुरु देउ॥२२७॥

॥ इति श्रीयतिलक्षणसमुच्चयप्रकरणम् ॥

॥ इति श्रीयतिलक्षणसमुच्चयप्रकरणम् ॥

॥ अथ नयरहस्यप्रकरणम् ॥

ऐन्द्रश्रेणिनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ॥ परोपकृतये ब्रूमो रहस्यं नयगोचरम् ॥

प्रकृतवस्त्वंशग्राही तदितरांशाप्रतिक्षेपी अध्यवसायविशेषो नयः । दुर्नयस्याप्यधिकृतांशाप्रतिक्षेपित्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रकृतवस्त्वंशग्राहीति । एवं च तत्पदे तद्भिन्नप्रतियोगिधर्मोपस्थिते न दोषः । प्रकृतवस्त्वंशग्राहित्वमपि दुर्नयेऽतिव्याप्तमतः तदितरांशाप्रतिक्षेपीति । सप्तभङ्गात्मकशब्दप्रमाणप्रदीर्घमन्तर्गताध्यवसायैकदेशेऽतिव्याप्तिवारणायाध्यवसायपदम् । स्यादित्यादिग्राहिणि रूपाद्यप्रतिक्षेपिण्यपायादिप्रत्यक्षप्रमाणेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेषपदम् । नयाः प्रापकाः साधकाः निर्वर्तकाः निर्भासकाः उपलम्भकाः व्यञ्जकाः इत्यनर्थान्तरमिति भाष्यम् । अत्र प्रापकत्वं प्रमाणप्रतिपन्नप्रतियोगिप्रतियोगिप्रकारकनानाधर्मान्तरभानप्रकारकत्वम् । साधकत्वं तथाविधप्रतिपत्तिजनकत्वम् । निर्वर्तकत्वमनिवर्तमाननिश्चितस्वाभिप्रायकत्वम् । निर्भासकत्वं श्रुतग्राहिक्रया वस्त्वंशज्ञापकत्वम् । उपलम्भकत्वं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमापेक्षसूक्ष्मार्थावगाहित्वम् । व्यञ्जकत्वं च प्राधान्येन स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् । एवं च पदार्थं प्रतिपादयन्नपि भाष्यकारस्तत्त्वतो लक्षणान्येन सूचितवान् । यद्यपि नयानामध्यवसायरूपता, कथं तर्हि "उवएसो सो णओ णाम त्ति" सत्यं, नयजन्योपदेशे नयपदोपचारात् । तथाप्येते तन्त्रान्तरीयाः, स्वतन्त्रा वा चोदकपक्षग्राहिणो मतिभेदेन विप्रधाविताः, तज्जयथापि मिथ्यात्वमिति चेन्न, प्रमाणैकदेशतयानुवर्तमानत्वात् । स्वविषयप्राधान्यरूपस्वतन्त्रतायाश्च मिथ्यात्वाप्रयोजकत्वात् । गौणत्वमुख्यत्वयोर्हि स्वतन्त्रदी

पेक्षयोरिवापेक्षिकवस्तुधर्मत्वात् । प्रपञ्चितं चेदमन्यत्रेति नेह प्रतन्यते । अत एव नैकस्मिन्नर्थे नानाध्यवसायरूपाणामेतेषां विप्रतिपत्तित्वमप्याशङ्कनीयम्, सत्त्वजीवाजीवात्मकत्वद्रव्यगुणपर्यायात्मकत्वचतुर्दर्शनविषयत्वपञ्चास्तिकायावरुद्धत्वषड्द्रव्यमेकीकृतत्वधर्मैरेकत्वद्वित्वत्रित्वचतुष्ट्वपञ्चत्वषट्त्वाध्यवसायानामिव पर्यायविशुद्धिवशात् पृथगर्थग्राहिणा मतिज्ञानादीनामिवैकत्रार्थे प्रतिनियतविषयविभागशालिना प्रत्यक्षादीनामिव वा नैगमाद्यध्यवसायानामविरुद्धनानाधर्मग्राहित्वेऽप्यविप्रतिपत्तिरूपत्वादिति सम्प्रदायः । अत्र च त्रित्वनिदर्शनविरुद्धधर्मग्राहित्वाशग्राहित्वप्रमितिविलक्षणत्वाना विप्रतिपत्तित्वसाधकहेतूनामसिद्धिव्यभिचारप्रदर्शनादिष्टसिद्धिरिति विभावनीयम् । स्यादेतत्, एकत्वादिकं न वास्तवसङ्ख्यारूपं, किं तु विभिन्नधर्मप्रकारकबुद्धिविषयत्वरूपं, तच्च मिथो न विरुद्धं, नयविषयीभूतं भेदाभेदादिकं तु विरुद्धमेवेति । मैवम् । सतामेकत्वादीनां बुद्धिविशेषेणाभिव्यक्तेः, अन्यथा तद्विषयत्वायोगादेकत्रप्रमीयमाणत्वेन चाविरोधात्, तद्वदेव भेदादीनामविरोध इति भावनीयम् । एकैकपदोक्तदोषापत्तिस्तु जात्यन्तरत्वाभ्युपगमान्निरसनीया । दृष्टा हि वैकल्यपरिहारेण तत्प्रयुक्ताया परस्परानुवेधेन जात्यन्तरमापन्नस्य गुडशुण्ठीद्रव्यस्य कफपित्तदोषकारिताया निवृत्तिः । नेयं जात्यन्तरनिमित्ता, किं तु मिथो माधुर्यकटुकत्वोत्कर्षहानिप्रयुक्तेति चेन्न, द्वयोरेकतरबलवत्त्व एवान्यापकर्षसम्भवात्, तन्मन्दतायामपि मन्दपित्तादिदोषापत्तेश्च । एतेनेतरेतरप्रवेशादेकतरगुणपरित्यागोऽपि निरस्तः अन्यतरदोषापत्तेरनुभवबाधाच्च । अथ समुदितगुडशुण्ठीद्रव्यं प्रत्येकगुडशुण्ठीभ्यां विभिन्नमेकस्वभावमेव द्रव्यान्तरं, न तु मिथोऽभिव्याप्यावस्थितोभयस्वभावं जात्यन्तरमिति चेन्न तस्य द्रव्यान्तरत्वे विलक्षणमाधुर्यकटुकस्वादानुभवप्रसङ्गात् एकस्वभावत्वे दोषद्वयोपशमाहेतुत्व-

प्रमाणात्, उभयजननैकस्वभावस्य चार्थिकत्वगर्भितेन सर्वथैकत्वायोगादेकया शक्त्योभयकार्यजननेऽतिप्रसङ्गादिति निरस्तम्वा यानुपपत्तेश्च। तस्मात् माधुर्यकटुकत्वयोः परस्परानुवेधनिमित्तमेवोभयदोषनिवर्तकत्वमित्यादरणीयम्। ननु जात्यन्तरत्वेऽपि प्रत्येकदोषनिवृत्तिरिति नैकान्तः, पृथक् स्निग्धोष्णयोः कफपित्तकारित्ववत् समुदितस्निग्धोष्णस्यापि सामान्य तथात्वापत्तेरिति चेन्न, मात्र स्निग्धोष्णत्वयोर्नास्ति तदात्मकत्वाभावादन्योन्यानुवेधेन स्वभावान्तरभावनिबन्धनत्वेन तत्त्वात्, अत्र च स्निग्धोष्णत्वयोर्गुडशुण्ठ्योः रक्तकृष्णत्वयोरिव संकीर्णव्याप्त्याऽवस्थानात्, जात्यन्तरात्मकस्निग्धोष्णत्वशालिनि च दाडिमे श्लेष्मपित्तोभयदोषाकारित्वमिष्टमेव, "स्निग्धोष्णं दाडिमं रम्यं श्लेष्मपित्ताविरोधि च" इति वचनादिति सम्प्रदायः। यद्यपि जात्यन्तरत्वं न प्रत्येकपर्यायापरित्वेन नियतं, भेदाभेदौ भेदाभेदव्यवहारात्, तथापि विविक्तधर्मयोरविव्याप्य समावेशप्रयोजकनिदर्शनमप्यवोचम्। नृसिंहनिदर्शने तु समावेशमात्र एव, तत्र नृत्वसिंहत्वयोरन्योन्यभागावच्छेदेनैव समावेशात्। न च भेदाभेदाद्यसमावेश एव, अनुपपन्नत्वात्। न च सामान्यतोऽसमावेशव्याप्तिकल्पनादनुपपन्नत्वान्तरम्, प्रतियोग्यादिगततया विशिष्यैव भेदाभेदाद्यसमावेशव्याप्तिकल्पनादिति तु तत्त्वम्। द्रव्यपर्याययोर्मिथोऽभेद एव सत्यामद्धाऽवगकार्यभेदात्त्वस्मात्तारिको भेद इति तु न रमणीयम्, भेदस्याव्याप्यवृत्तित्वे सत्त्वादीनां निराकर्तुमशक्यत्वात्। कथं तर्ह्येकत्रैव कदाचिद्गुणरित्येकवचनं, कदाचिच्च गुणा इति बहुवचनम्। उच्यते। द्रव्यपर्याययोर्यथाक्रमं मुख्यतानुख्यत्वविवक्षणात्तदन्यायानुसरणात्। यदा गुणयोरप्युपयुक्तत्वं विवक्ष्यते, तदा भवतु। नन्वेवं पर्यायनयोपयुक्तत्वप्रयुक्तविवक्षयैकत्रापि घटे "घटाः" इति प्रयोगापत्तिः, द्रव्यनयोपयुक्तत्वप्रयुक्तविवक्षया च "आपो दाराः" इत्यादावप्येकवचनापत्तिः, उभयविवक्षया च "मनुष्यो

गच्छन्ती"त्यादिप्रयोगापत्तिः । एकत्वधर्मितावच्छेदकत्ववहुत्वप्रकारकप्रत्यये इच्छाहेतुत्वेऽप्येकत्ववदित्यन्यायेनैकत्वबहुत्वबोध-
स्यासत्त्वादेतादृशशब्दासाधुत्वान्नैता आपत्तय इति चेत्तथापि साधुत्वभ्रान्त्या जायमानेदृशज्ञानप्रामाण्योपपत्तिरिति चे-
द्व वदन्ति-नयविवक्षाया यद्धर्मप्रकारेणैकत्वबहुत्वविषयत्वं, तज्जन्यशाब्दबोधेऽपि तद्धर्मप्रकारेणैवेति नोक्तदोषः । घटरू-
पादय एवेति द्रव्यार्थिकविवक्षया तथैवशाब्दबोधाद् घटो रूपादय एवेति पर्यायार्थविवक्षया च तथैव शाब्दबोधात् ।
यदा तु द्रव्यपर्यायनययोरेकत्वबहुत्वाभ्यां नोद्देशो, न वा विधानं, किं तु तदुपरागेण सत्त्वाद्येव प्रतिपिपादयिषितम्, तदा
ता वा "घटोऽस्ति" "रूपादयः सन्ति" इत्येवाभिलापः । यदा तूभयगोचरयोर्धर्मधर्मिभावेन प्रतिपिपादयिषा, तदा घटस्य
रूपादय इत्येवाभिलापः । अवच्छेदकविनिर्मोकेनैकत्र बहुत्वं त्वनुशासनोपग्रहेणैव नयः प्रकाशयतीति नैकघटादौ "घटा"
इत्यादिप्रयोगापत्तिः । साधुत्वभ्रान्त्या जायमानज्ञाने च विषयाबाधरूपप्रामाण्यसत्त्वेऽपि स्वावच्छेदकधर्मानवधारणेन स्वपर-
व्यवसायित्वरूपेण न प्रामाण्यं । घटस्य रूपादय इत्येकदैकवचनबहुवचनप्रयोगः, अत एव शबलरूपत्वे कथमेकतरप्रति-
पत्तिरिति परास्तम् । सन्निकर्षविप्रकर्षादिवशात् यथाक्षयोपशमं द्रव्यपर्यायप्रधानभावेनार्थन्यायात्, भावेनाप्रधान-
गुणभूतेऽपि वस्तुनि सत्त्वघटत्वादिप्रतिपत्ते, तदिदमुक्तमर्पितानर्पितसिद्धेरित्यधिकं त्रिसूत्र्यालोके । द्वौ मूलभेदौ द्रव्या-
र्थिकः पर्यायार्थिकश्च । तत्र द्रव्यमात्रग्राही नयो द्रव्यार्थिकः, अयं हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभ्युपैति, उत्पादविनाशौ पुन-
रतात्त्विकौ आविर्भावतिरोभावमात्रत्वात् । पर्यायमात्रग्राही पर्यायार्थिकः, अयं ह्युत्पादविनाशपर्यायमात्राभ्युपगमप्रवणः,
द्रव्यं तु सजातीयक्षणपरम्परातिरिक्तं न मन्यते, तत एव प्रत्यभिज्ञाद्युत्पत्तेः । न चैवमितरांशप्रतिक्षेपित्वाद्दुर्नयत्वम्,

---

१ घट एव रूपादय इति ।

तत्प्रतिपन्नस्य प्राधान्यमात्र एवोपयोगात्, एतद्विषयविस्तरस्तु तत्त्वार्थटीकायां मन्थान्तरमवगन्तव्यः । आगम्य भरणे नैतत् "नैगमः संग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रश्चेति" जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः । ऋजुसूत्रो यदि द्रव्यं नाभ्युपगच्छेत् "उज्जुसु अस्स एगे अणुवउत्ते एगं दव्वावस्सयं पुहत्तं णेच्छइ त्ति" सूत्रं विरुध्येत । "ऋजुसूत्रनयाभिप्राय एव द्रव्यार्थिकनयेन" इति तु वादिनि सिद्धसेनस्य मतम् । अतीतानागतपरकीयभेदपृथक्त्वपरित्यागादृजुसूत्रेण स्वकार्यसाधकत्वेन स्वकीयवर्तमान वस्तुन एवोपयोगमात्रस्य तुल्यांशधुवांशलक्षणद्रव्यस्याभ्युपगमः, अत एव नास्यागमतः पृथक्त्वाभ्युपगमविषयीकरणत्वमप्यनुपपन्नं चान्यदुपगमोऽपि । उत्सूत्र एवानुयोगांशमादाय वर्तमानात्मकपर्याये द्रव्यपदोपचारात्समाधेयम् । पर्यायार्थिकेन मुख्यत्र यथार्थत्वैन प्रतिपादयितुमधाधारांशद्रव्यमपि नास्य विषयः शब्दनयप्रतिपन्नगादित्येतत्परिष्कारः । पर्यायार्थिकस्य त्रयो भेदाः "शब्दः समभिरूढ एवंभूतश्चेति" समुदायः । ऋजुसूत्राद्याश्चत्वार इति तु वादी सिद्धसेन । तदयं मतोत्त-नेन । शब्दपदेनैव साम्प्रतसमभिरूढैवंभूतात्मकनयत्रयोपग्रहाल्लाघवादेतान्तरम् । ते च सप्तापि नयाः स्वस्वगतिविषयतः ते यथाक्रमं शुद्धिमन्तः । तथाहि—नैगमनयस्तावद्धर्मधर्मिणोरेकाकारेऽपि भेदं तदुपरोधं बहूनां प्रदेशमाह । देशप्रदेशो नातिरिच्यते, "दासेन मे" इत्यादिन्यायादेशस्य स्वीयत्वेन तत्प्रदेशस्यापि स्वीयत्वाव्यभिचारात्पञ्चानामेव प्रदेश इति संग्रहः । व्यवहारस्त्वाह—पञ्चानां प्रदेशस्तदा स्याद्यदि साधारणः स्यात्, यथा "पञ्चानां गोष्ठिकानां हिरण्यमिति" प्रकृत तु प्रत्येकवृत्ति प्रदेश इति पञ्चविधः प्रदेश इति वक्तव्यम् । नन्वेवं घटपटयो रूपमित्यपि न स्यात्, द्वित्वाश्रयवृत्ति त्वयोध तयोर्घटरूपमित्यस्यापि आपत्तेः द्वित्वविरोधे च प्रकृतप्रयोगस्याप्यनापत्तेरिति चेन्न स्याद्यैतादृ

तद्विनावबोध एव व्यवहारसामर्थ्यात्, संग्रहाश्रयणात्तु सामान्यत एव साकारत्वात् स्यादपि। ऋजुसूत्रस्तु ब्रूते—पञ्चविध
प्रदेश इत्युक्ते प्रतिस्वं पञ्चविधत्वाश्रयणात् पञ्चविंशतिविधत्वप्रसङ्ग । न च सामान्यतस्तदन्वयान्न बाध इति वाच्यम्, विशे
षविनिर्मोकेण तदसिद्धेः। किं च, किमत्र पञ्चविधत्वम्, पञ्चप्रकारत्वमिति चेत् क प्रकार , संख्या वा, बुद्धिविशेषविषयत्व
वा, भेदो वा। नाद्य , अनन्तेषु प्रदेशेषु पञ्चसंख्यावधारणासिद्धेः। न द्वितीय , पञ्चप्रकारकबुद्धिविषयत्वस्य प्रत्येकमज्ञा-
[illegible] पञ्चत्व[illegible]गयात्। न च गेहेषु शतमस्तीतिवत्प्रत्येकं प्रत्येकधर्मप्रकारकबुद्धिविषयत्व, तत्सामान्यविश्रामेऽनन्वयात्,
विशेषविश्रामे च भजनाया अनन्तरत्वात्। न तृतीय , अतिरिक्तभेदानिरुक्तेः। ततो भाज्य प्रदेश स्याद्धर्मास्तिकायस्य,
स्यादधर्मास्तिकायस्येत्यादि। शब्दनयस्तु प्रतिजानीते—भाज्य इत्युक्तमेतदृजुसूत्रेण, भजनाया विकल्परूपत्वेनैकतरमादाय विनिग-
मकाभावात्, धर्मास्तिकायप्रदेशस्यापि अधर्मास्तिकायत्वेन भजनीयत्वप्रसङ्गात्। तदेवमभिधेय—धर्मे धर्म इति वा प्रदेशो
धर्मः, अधर्मेऽधर्म इति वा प्रदेशोऽधर्मः, आकाशे आकाश इति वा प्रदेश आकाश , जीवे जीव इति वा प्रदेशो नोजीव ,
स्कन्धे स्कन्ध इति वा प्रदेशो नोस्कन्ध इति। अत्र धर्माधर्मास्तिकायादेः स्वाधप्रदेशस्य धर्मास्तिकायादिरूपतातिप्रसक्तेति
[illegible]। जीवस्कन्धयोस्तु प्रतिस्वमनन्तत्वात् कथमपि कृत्स्नप्रदेशस्य [illegible] इति विवक्षितप्रदेशो [illegible]-
[illegible] नोजीव नोस्कन्ध [illegible] ध्येयम्। समभिरूढस्त्वाह—शब्देनापि
[illegible] "धर्मे प्रदेश" इत्यादिवाक्यात् "कुण्डे बदरमित्यादि" [illegible]। [illegible] प्रयोगोऽन्यत्रैव प्रकार-
[illegible] इति। [illegible] प्रकारेण [illegible]-

निधानीयम्, दलप्रदेशयोरतत्त्वात्, भेदे संबन्धानुपपत्तेः, अभेदे गवोक्त्यनुपपत्तेः। न च व्यक्तिमदादिनाया नायाच्छेदक-
तयाकाशादिदशसिद्धिः, परेण समं संबन्धस्यैवानुपगमात् तादात्म्यतदुत्पत्त्योरतरानुपपत्तेरिति दिक्॥ प्रस्थको मगधदेशप्र-
सिद्धो धान्यमानविशेषः, तदर्थं वनगमनदारुच्छेदनतक्षणोत्किरणलेखनप्रस्थकपर्यायान्निर्दिशेषु यथोत्तरशुद्धा नैगमभेदाः।
अतिशुद्धनैगमस्तूत्कीर्णनामानं प्रस्थकमाह। व्यवहारेऽप्ययमेव पन्थाः। संग्रहस्तु त्रिभुवनाकारणं धार्यमाणाकारं कार्यं
परिणतं च प्रस्थकं नाङ्गीकुरुते। न च तदा घटाद्यात्मकत्वप्रसङ्गः, तदर्थक्रिया विना तत्त्वायोगात्। घटादिशब्दार्थ-
क्रिया तथाप्यस्त्विति चेन्न, असाधारणतदर्थक्रियाकारित्वस्यैव तदात्मकत्वप्रयोजकत्वात्। तथापि प्रस्थकक्रियाविरहे-
णाय प्रस्थको घटघटात्मकत्वाद्य नाप्रस्थक इत्यनुनयरूपः स्यात्। न स्यात्, प्रतियोगिकोटौ स्वस्यापि प्रवेशेन यावद्घटा-
घटात्मकत्वासिद्धेः। अर्थक्रियाजात्याजात्यान्या क्वचिदा गुणमे ऋजुसूत्रमतानुप्रवेश इति चेन्न, नैगमोपगतसंग्रहणाय
स्यात्कृतयोपगमेन तदननुप्रवेशात्। इत्थं च व्यक्तिभेदात्तद्व्यक्तिगतं प्रस्थकत्वसामान्यमपि नास्तीति नात्र कश्चिद्दोषो
विना व्यवहारबाधमिति दिक्। ऋजुसूत्रस्तु निष्पन्नस्वरूपोऽर्थक्रियाहेतुः प्रस्थकः, तत्परिच्छिन्नं च धान्यमपि प्रस्थक
इत्याह, उभयप्रमाणादेव मानोपपत्तेरेकतरविनाशाये परिच्छेदासम्भवात्। कथं तर्हि प्रस्थकेन धान्यं मीयत इति करण-
तानुप्रविष्टस्य क्रियात्मप्रवेशादिति चेत्, सत्यम्, निरूपकभेदात्तदुभयरूपानुप्रवेशोपपत्तेरिति दिक्। शब्दसमभिरूढैव-
म्भूतास्तु प्रस्थकाधिकारज्ञतात् प्रस्थककर्तृगताद्धा प्रस्थकोपयोगादतिरिक्तं प्रस्थकं न सहन्ते। निश्चयमानात्मकप्रस्थकस्य
बहिर्नित्यायोगात्, बाह्यप्रस्थकस्याप्युपलंभकालेऽभ्यस्तेनोपयोगानतिरेकाश्रयणात्, अन्ततो ज्ञानाद्वैतनयानुप्रवेशाच्च।

न च [illegible]नयविषयसमावेशविरोधात् प्रत्येकमसत्यत्वमाशङ्कनीयम्, तादात्म्येनोभयरूपासमावेशेऽपि
विषय[illegible] [illegible]समावेशात्। विषयत्वमपि यथार्थनिष्ठतादात्म्यमिति तु नयान्तराकूतम्, यदाश्रयणेनार्थाभिधा-
[illegible] [illegible]मिति दिक्॥ वसतिदृष्टान्तस्तु, स च यथोत्तरशुद्धा नैगमभेदाना लोके तिर्यग्लोके जंबूद्वीपे भरत-
[illegible] [illegible] पाटलिपुत्रे देवदत्तगृहे तन्मध्यगृहे वा[illegible]। अतिशुद्धनैगमस्तु वसन् वसतीत्याह। न चाभारताधारस्य
[illegible] [illegible] वा, तन्मध्यापि गृहकोण इव लोकेऽप्येकदेशतया तदविशेषात् किं विशुद्धितारतम्य न च
[illegible] [illegible] [illegible]विषयकृतो विशेषोऽस्तीति चेत् सत्यम्, देवदत्तसंयोगपर्यायपरिणतगृहकोणान्यस्यैकदेशत्वं
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भेदोपचारेण विशुद्ध[illegible]नयात्, अन्यथा लोके वसामीत्यनयस्यैवानु-
[illegible]। न हि गृहे [illegible] देवदत्तस्तिष्ठति, न च विशेषार्थं गृहकोण[illegible]शोपस्थितिरस्ति। कृत्स्नं
[illegible] [illegible] [illegible] स्यादिति चेत्, न विभाग, स्यादेवम्। कात्स्न्येन विनिर्माणान्यथोपपत्तौ विभुत्वारोपेति
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] एव [illegible]। [illegible]नुपपदादिति चेत्, स्वरूपतस्य गृहपदस्यैकस्थलपरिणतिरूपस्य[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इति [illegible] तथाश्रयणायोगादिति दिक्। प्रयोगे
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]विशेषम्। [illegible] एव वसन् वसतीति प्रयोगस्य [illegible]नि
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]रणीयः सम्यक्। न चात्र [illegible] वसन् वसतीति [illegible], [illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]

ग्रामित्वपदोपचारेण तथाप्रयोगात्। वस्तुतो वसन्नेव वसतीति व्यवहारेणाभ्युपगमात्, अन्यथा नाद्य गोऽत्र वसतीति
व्यवहारो न स्यात्। व्यवहारनयस्यानवस्थत्वेऽन्यागमनस्यासाधीने इति नात्र निर्बन्धनाशङ्कापि युक्तेति दिक्। सङ्ग्रहस्तु
संस्तारकारूढ एव वसतीत्यभ्युपैति, अन्यत्र हि चालनार्थ एव तस्य न घटते। न चाथ प्राग्वदुपचारमप्याश्रयते। अत एव
सूत्रे पुनः वसतियोगीत्यत्राप्येतन्मते मूलाभिप्रायो गृह्य वसतियोगीत्येतदर्थ इति दिक्। ऋजुसूत्रस्तु येष्वाकाशप्रदेशेषु देव-
दत्तोऽवगाढस्तेष्वेव तद्गमनमुपैति। संस्तारके तदभ्युपगमे तु गृहकोणादावपि तदुपगमप्रसङ्ग। संस्तारकावच्छिन्नव्योम
प्रदेशेषु तु संस्तारक एवावगाढो न तु देवदत्तोऽपीति न तत्रापि तद्वसतिज्ञप्तिः। संस्तारकगृहकोणादौ देवदत्तवसति
व्यवहारस्तु प्रत्यासत्तिदोषाद्भ्रान्तिमूलकः। निरभ्रिताकाशप्रदेशेष्वपि च वर्तमानसमय एव देवदत्तवसति नातीतानाग-
तयोः, तयोरसत्त्वात्, प्रतिसमयं चान्योपकरणतया तावदाकाशप्रदेशमात्रावगाहनासत्त्वाच्चेति दिक्। शब्दसमभिरूढैवम्भू-
तास्तु स्वात्मन्येव वसतिमभीप्सन्ते। न ह्यन्यस्यान्यत्र वसतिस्तत्र, संबन्धाभावात्, असंबद्धयोराधाराधेयभावे चाति-
प्रसङ्गादिति दिक्।

एवमभिः श्रुतोपदर्शितनिदर्शनैरेतेषां यथाक्रमं विशुद्धत्वमवसेयम्। अथैतेषां लक्षणानि वदामः। निगमेषु भवोऽध्य-
वसायविशेषो नैगमः, तत्त्वं च लोकप्रसिद्धार्थोपगन्तृत्वम्, लोकप्रसिद्धिश्च सामान्यविशेषाद्युभयोपगमेन निर्वहति।
अथ व्यक्तसामान्यविशेषोभयाभ्युपगमे कणादस्य नैगमत्वम्, शबलतदभ्युपगमे च प्रमाणत्वमेव, यथास्थानं प्रत्येकं गौण-
मुख्यभावेन तदुपगमे च संग्रहव्यवहारान्यतरप्रवेश इति चेन्न, तृतीयपक्षाश्रयणे दोषाभावात्, उपधेयसाङ्कर्येऽप्युपाध्योरसा-

वर्षात् । श्राह अतिरिक्तसामान्यविशेषानन्भ्युपगमे कथमनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धी, नहि ते अहेतुके, न वैकहेतूद्भवे, न वा निर्विषय एव दोषजे इति चेन्न, वस्तुत एव मृदादितुल्यपरिणामेनानुवृत्तिबुद्धेरूर्ध्वतायतुल्यपरिणामेन च व्यावृत्तिबुद्धेरुपपत्तेरतिरिक्तद्वये मानाभावात् । तदुक्तम्-" वस्तुत एव समान , परिणामोऽय स एव सामान्यम् । असमानस्तु विशेषो, वस्त्वेकमनेकरूप तु " ॥ १ ॥ इति । अतिरिक्त तु सामान्य व्यक्तिष्वेकदेशेन समवेयात्, कार्त्स्न्येन वा । आद्ये सावयवत्वप्रसंग, अन्त्ये च प्रतिव्यक्ति नानात्वापत्ति । न च व्यक्तिवृत्तित्व सामान्यस्योपगम्यत एव, देशकार्त्स्न्ययोस्त्वनुपगमादनुक्तोपालम्भ इति वाच्यम्, उभयान्यतरप्रकारव्यतिरेकेणान्यत्र वृत्त्यदर्शनात्, अत्रान्यतरप्रकाराश्रयणेऽन्यतरदोषापत्तेर्वज्रलेपत्वादिति संक्षिप्तटीकाकृतामभिप्राय । प्रतिव्यक्तिपर्याप्तत्वे प्रतिव्यक्ति परिसमाप्त्यापत्ति, अन्यथा तु द्वित्वादितुल्यतापत्तिरिति स्याद्वादाद्यैक समर्थितमस्माभि । समानपरिणामरूपसामान्याभ्युपगमेऽपि प्रतिविशेष तदन्यत्वाद्विशेषादविशेष इति चेन्न, स्वजात्यभेदेन सविशेषात्, अत एव समानत्व सामान्यगर्भम्, तच्च तद्भेदे दुर्वचमिति परास्तम् । तथाप्यनुवृत्तिधीजननस्वभावपरिणामत्वेनानुवृत्तिधीजनकतास्वाश्रयादिति चेन्न, वस्तुनस्तत्स्वभावस्य मृत्परिमाणत्वादिना जनकत्वेऽदोषात्, जनकत्वापि परिणामरूपत्वेन नानात्वस्य दोषानावहत्वादेकत्वमजरेन कार्यानुमानानुच्छेदाद्विति दिक् । अविषय एवाय सामान्याकार इत्यपि न युक्तम्, बीजाभावात् । अनादिवासनादोषो बीजमिति चेन्न, वासनाया बोधरूपत्वे समनन्तरप्रत्ययेऽपि तत्प्रसङ्गात् । विशिष्टबोधरूपत्वेन च किं वैशिष्टयमिति वाच्यम्, अनादिहेतुपरंपराजन्यत्वमिति चेन्न, तत्रापि स्वसमानव्यभिचार ...

: विना वक्तुमशक्यत्वादिति विवेचितमन्यत्र । विशे-

तिरिक्तेऽपि न प्रमाणमस्ति, विशेषाणामिव नित्यद्रव्याणामपि स्वत एव व्यावृत्तत्वात्, अन्यथा नित्यगुणेष्वपि तत्कल्प नप्रसङ्गात्। आश्रयविशेषेणाश्रितव्यावृत्तेनायं दोष इति चदाश्रितविशेषेणाश्रयव्यावृत्तिरित्येव किमिति नाद्रियते, तद् विनिगमक सर्वं तद्भिन्नियोगित्वानुयोगित्वादेः स्वरूपसंबन्धात्मकत्वेनाप्यन्ततो जगद्भ्यपर्यवसानात्, भेदस्याविशेषक त्वेनत्वात्, एवं श्रुतिस्थरूपादित्यद्वैतवादिश्रीहर्षमतमपि न रमणीयम्, भेदस्यावास्तवत्वे तद्‌नानारूपाभेदस्यापि तथात्वात्, सामान्यस्यापि नयतः पौनरुक्त्याधायकत्वा सर्वथा वस्तुमत्वस्यत्वाद्धेत्यन्यत्र विस्तरः। "एगेहिं माणेहिं मिणइत्ति य णेगमस्स य निरुत्ति त्ति" सूत्रम्। नैकमानमेयविषयोऽध्यवसायो नैगम इत्येतदर्थः। नैगमेष्वभिहिता शब्दास्तेषामर्थः शब्दार्थपरिज्ञानं च देशसमग्रग्राही नैगम इति तत्त्वार्थभाष्यम्। अत्र पूर्वदलं महासत्सामान्यवचनाभिप्रायम्, उत्तरदलं च विषयविभागविधानिरूपणाभिप्रायमात्रं। देशग्राहित्वं विशेषप्रधानत्वं, समग्रग्राहित्वं च सामान्यप्रधानत्वं पारिभाषिकम्। अन्यथा सामान्यविशेषयोर्द्वयोरपि वस्त्वेकदेशत्वात् किं द्वैरूप्यं स्यात्। एवमस्य प्रमाणत्वं स्यात्, न स्यादस्यैक नैदश [illegible] विशेष [illegible] मनयोर्नयविषयत्वायोगात्। अस्य च चत्वारोऽपि निक्षेपा अभिमता नाम स्थापना द्रव्य भाव ध्वनि। घट इत्यभिधानमपि घट एव "अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेया" इति वचनात्, वाच्यवाचकयोरत्यन्तभेदे प्रतिनियत [illegible] योगेश्च। घटाकारोऽपि घट एव, तुल्यपरिणामत्वात्। अन्यथा तत्त्वायोगात्, मुख्यार्थमात्रानाशादेव सप्रतिपक्षविशेषणः। मृत्पिण्डादिद्रव्यघटोऽपि घट एवान्यथा परिणामपरिणामिभावानुपपत्तेः। भावघटपदं चासंदिग्धमेव निक्षेप। ननु नामादीनां नयानामुत्थापिनामुपगम्यते, न वा। आद्ये व्यभिचार, अनभिलाप्यभावेषु नामनिक्षेपाप्रवृत्ते,

द्रव्यजीवद्रव्यद्रव्यायनिक्षाजिवाप्यनावव्यापितया अपि वक्तुमशक्यत्वाच्च । अन्ये " जत्थवि य ण जाणिज्जा चउक्कय निक्खिवे तत्थ त्ति " सूत्रविरोध, अत्र यत्तत्पदाभ्यां व्याप्त्युपस्थितेरिति चेदत्र वदन्ति, तत्तद्व्यभिचारस्थानान्यत्वविशेषणाद्दोषः । तदिदमधुरम्, यद्येकस्मिन् सम्भवति, नैतावता नयत्वव्यापितेति । अपरे त्वाहुः, केवलिप्रज्ञारूपमेव नामान्निवाप्यनावेऽप्यस्ति, द्रव्यजीवश्च मनुष्यादिरेव, नाविदेवादिजीवपर्यायहेतुत्वात् । द्रव्यद्रव्यमपि मृदादिरेव, आदिद्रव्यत्वेनाऽघटादिपर्यायाणां हेतुत्वादिति । एतच्च मतं नातिरमणीयम्, द्रव्यार्थिकेन शब्दपुद्गलरूपस्यैव नाम्नोऽभ्युपगमात् । मनुष्यादीनां द्रव्यजीवत्वे च सिद्धस्यैव भावजीवत्वप्रसङ्गात्, आदिष्टद्रव्यहेतुद्रव्यद्रव्योपगमे भावद्रव्योच्छेदप्रसङ्गाच्च । गुणपर्यायवियुक्तः प्रज्ञास्थापितो द्रव्यजीव इत्येकेषां मतं, एतदपि न सूक्ष्मम्, सतां गुणपर्यायाणां बुद्ध्यापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात् । न हि याद्दृग्विज्ञानायत्तार्थपरिणतिरस्ति, जीवशब्दार्थज्ञस्तत्रानुपयुक्तो जीवशब्दार्थज्ञस्य शरीरं वा जीवरहितं द्रव्यजीव इति नाव्यापिता नामादीनामित्यपि वदन्ति । ननु तथापि नैगमेन नामादिचतुष्टयाभ्युपगमे तस्य द्रव्यार्थिकत्वव्याहतिः स्यात्, द्रव्यार्थिकेन द्रव्यस्यैवाभ्युपगमात्, द्रव्यं पर्यायतया, पर्यायं च गौणतयाभ्युपगच्छन् द्रव्यार्थिकोऽपि भावनिक्षेपसह इति । हन्त तर्हि त्वदुक्तरीत्या शब्दनया अपि द्रव्यनिक्षेपसहा इति कथम् " भावं चिय सद्दणया सेसा इच्छंति सव्वणिक्खेवे त्ति " नाप्योपव्यवस्था । एतेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोर्द्वयोस्तुल्यवादेनोभयाभ्युपगम, तत्प्राधान्यस्य गौणेऽभेदे तन्मयस्य तु गवेषणा भेदेन ततो नैकस्योनयविषयत्वे विषयान्तरसद्भावमन्यत्वानुपपत्तिः, भेदाभेदोपरागेणोपपद्यमानमुपचरणात्मकत्वादिति द्रव्यार्थिकस्यापि पर्यायसहत्वमित्यपास्तम् । एवं सति पर्यायार्थिकस्य

शब्दादरपि द्रव्यशब्दापत्तेरत्यन्तभेदाभेदग्राहिणोर्द्वयो समुदितयोरपि मिथ्यादृष्टित्वादत्यन्ताभेदे पर्यायद्रव्यामेदोऽपि संगात्, तथा च गुणो द्रव्यमिति द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायानुपपत्तेः, अत्यन्तभेदेऽपि पर्यायार्थिकेन द्रव्यभङ्गे द्रव्यार्थिकस्या न्तर्गडुत्वप्रसङ्ग, एकस्मिन्द्रव्यपक्ष पर्यायार्थिकनयमतेऽपि द्रव्यसामायिकमित्यस्याविरोधप्रसङ्गात्, एतन्मतस्य भाष्यकृतैव निरस्तत्वाचेति यदत्रोच्यते-अविशुद्धाना नैगमभेदाना नामाद्यभ्युपगमप्रवणत्वेऽपि विशुद्धनैगमभेदस्य द्रव्यविशेषणतया पर्याया भ्युपगमान्न तत्र भावनिक्षेपानुपपत्ति । अत एवाह भगवान् भद्रबाहु –" जीवो गुणपडिवन्नो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामइय ति " । न चैव पर्यायार्थिकत्वापत्ति, इतरविशेषणत्वरूपप्राधान्येन पर्यायानभ्युपगमात् । शब्दादीना पर्यायार्थिकनयाना तु नैगमवदविशुद्धत्वाभावान्न नामाद्यभ्युपगन्तृत्वम् । वास्तवतद्विषयत्व तु नोक्तविभागव्याघातायेति पर्यालोच याम । ननु तथापि " णामाइतिय दव्वट्ठियस्स भावो अ पज्जवणयस्स त्ति " पूर्वमभिधाय पश्चात् " भाव चिय सद्दणया सेसा इच्छंति सव्वणिक्खेवे " तथा " सव्वणया भावमिच्छंति त्ति " वदता भाष्यकृता कोऽभिप्राय इति चेदयमभिप्राय –पूर्व घटस्वरूपोपयोगरूपभावमंगलाधिकारमवलम्ब्य नैगमादिना जलाहरणादिरूपभावघटाभ्युपगमेऽपि, घटोपयोगरूपभावघटान भ्युपगमात्तयोरिति, पृथगनिक्षेपाच्च न प्रत्ययस्याभिधानतुल्यता, अग्रे तु व्यवस्थाधिकाराद्विशेषोक्तिरिति मुख्यत्वरूपत्वात् येण नामादिविषयविषयत्वमत्र द्रव्यार्थिकस्यत्वभिमेत्य, मतान्तरेण वा तयोक्ति, अत एव तत्त्वार्थवृत्तावपि अत्र चाद्या नामाद यस्त्रयो विकल्पा द्रव्यार्थिकस्य तथा तथा सर्वार्थत्वात् । पाश्चात्य पर्यायनयस्य तथापरिणतिविज्ञानाभ्यामिति । एतत्स तात्पर्यमेव " जीवो गुणपडिवन्नो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामइय । सो चेव पज्जवणयट्ठियस्स जीवस्स एस गुणो " ॥ १ ॥

इत्यादावस्यकगाथा किं द्रव्यं गुणो वा सामायिकमिति चिन्तायां द्रव्यार्थिकनयमते गुणप्रतिपन्नो जीवः सामायिकम्, पर्यायार्थिकनयमते तु जीवस्य गुण एव सामायिकमित्युत्तरम्, अत्र च द्रव्यपर्यायनययोः शुद्धद्रव्यपर्यायावेव विषयौ, तत्र पर्यायद्रव्ययोर्विभिन्नयोः कल्पितयोः कुम्भत्वापन्नस्वर्णपत्रस्य नीलतेत्यादाविव, विशेषणतयाभिधानं तु न स्वविषयव्याघातायेत्यभिप्रायेण महता प्रबन्धेन भाष्यकृता व्याख्याता। मतान्तराभिप्रायेण तु पर्यायार्थिक एव द्रव्यस्य कल्पितस्य विशेषणत्वम्, द्रव्यार्थिके तु प्रागुपदर्शितदिशा पर्यायस्याकल्पितस्यापि विशेषणत्वं न्याय्यमेव। न च नये विशेषणं कल्पितमेवेति नियमः "सावज्जजोगविरओ तिगुत्तो छसु संजओ। उवउत्तो जयमाणो आया सामाइयं होइ" ॥ १ ॥ इत्यत्र संग्रहनयस्वीकृतात्मसामान्यसामायिकविधिनियमनाय प्रवृत्तानां पर्यायशुद्धिमतां व्यवहारादिनयानां यावदेवभूतमुत्तरोत्तरपर्यायकदम्बविशेषणोपरागेणैव प्रवृत्तिदर्शनात्। न च तत्र पर्यायनयानां संग्रहस्वीकृतविधिविशेषपर्यवसानार्थं पर्यायविशेषणमुद्रया प्रवृत्तावपि सविशेषणे इत्यादिन्यायाद्भूतपर्यायविधावेव तात्पर्यात्, अन्यनयविधिनियमानुद्देशलक्षणस्वातन्त्र्येण नयानां स्वविषयनिर्देशे विशेषणस्य कल्पितत्वनियम एवेति वाच्यम्। तथाप्यन्यत्वस्य स्वविषयविलक्षणविषयत्वरूपस्य निवेशेन नैगमभेदेषु विशुद्धनैगमे विशेषणस्य पर्यायस्याकल्पितत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वादित्यस्माभिरनुशीलितः पन्थाः समाकलितस्वसमयरहस्यैर्दिव्यदृशा निभालनीयः। नैगमाद्युपगतार्थसंग्रहप्रवणोऽध्यवसायविशेषः संग्रहः। सामान्यनैगमवारणाय नैगमाद्युपगतार्थपदम्। संग्रहश्च विशेषविनिर्मोकोऽशुद्धविषयविनिर्मोकश्चेत्यादिर्यथासंभवमुपादेयः। तेन त

१ प्रागुपदर्शितेति.

प्रत्यक्षत्वे सामान्यविशेषमहादनुपपत्तिरत्वं च तन्नियतबुद्धिव्यपदेशजनकत्वम्, तेन न नानार्थरूपसङ्ग्रहस्य [illegible] । " सगहियपिंडियत्थं सगहवयण समासओ बिंति त्ति " सूत्रम् । अत्र संगृहीतं सामान्याभि-
मुख्येन गृहीतं पिण्डितं च [illegible] प्रतिपिपादयिषितमित्यर्थः । संगृहीतं महासामान्यं, पिण्डितं तु
[illegible] इति गाथार्थः । " स्वजाता [illegible] सग्रह " इति तत्त्वार्थभाष्यम् । अत्र सर्वं सामान्यमेकदेशश्च
[illegible] सामान्यैकतया स्वीकार इत्यर्थः । अत्र हि घटादीनां [illegible] स्वीक्रियते,
[illegible] प्रत्यभिमन्यते । उक्तं [illegible] घटपटादिभेदो न स्यादिति चेत् स्यादेव वास्तव,
[illegible] निरूपणीयमस्तु [illegible] तन्मूलिका औपनिषदादीनां गुरुय ।
[illegible] । ये [illegible], [illegible] नामनिक्षेप एव स्थापनाया अप
[illegible] । अत एव " [illegible] या होज्ज आवकहिया या होज्ज त्ति " सूत्र एतानयोनि
[illegible] नाम्नामन्यत्र [illegible] । स्थूलजदमानक
[illegible] इति चेत् तर्हि गोपालदारके नामन्त्वम् । अत्र नामत्वं द्विविध
[illegible] नाम्नि, द्वितीयं च पदार्थे इति न दोष इति चेत्तर्हि व्यवस्था
[illegible] गोपालदारकस्य नामत्वम् । नामनामनिक्षेपमाश्रित्य

[illegible]

परिहारायेन्द्रपदसंकेतविषयत्वं नामेन्द्रत्वं निरुच्यत इति चेद्भन्त तर्हि सोऽयं विशेषो नामस्थापनासाधारण एव सगृह्यतामिति तेन विचारचतुरधियो देवानांप्रिया उपचाररूपसंकेतविशेषग्रहे द्रव्यनिक्षेपस्याप्यनतिरेकप्रसंगात्, यादृच्छिकविशेषोपग्रहस्य चाप्रामाणिकत्वात्, पित्रादिकृतसंकेतविशेषस्यैव ग्रहणान्नामस्थापनयोरैक्यायोगात्। एवं च बहुषु नामादिषु प्रातिस्विकैक रूपाभिमन्धिरेव संग्रहव्यापार इति प्रतिपत्तव्यम्। यदृच्छयैव संग्रहस्वीकारे तु नाम्नोऽपि ज्ञानकारणतया कुतो न द्रव्यान्तर्भाव इति वाच्यम्। द्रव्यं परिणामितया भावसंबद्धं, नाम तु वाच्यवाचकभावेनेत्यस्ति विशेष इति चेत्तर्हि स्थापनाया अपि तुल्य-परिणामतया भावासंबद्धत्वात् किं न नाम्नो विशेष इति पर्यालोचनीयम्। स्यादेतत्, षण्णां प्रदेशस्वीकर्तुर्नैगमात् पञ्चानां तत्स्वीकार इवात्रापि चतुर्निक्षेपस्वीकर्तुस्ततस्त्रयस्वीकारेणैव संग्रहस्य विशेषो युक्त इति, मैवम्, देशप्रदेशवत् स्थापनाया उपचरितविभागाभावेन संग्रहविशेषादिति दिक्। लोकव्यवहारोपयिकोऽध्यवसायविशेषो व्यवहार। "वच्चइ विणिच्छियत्थं ववहारो सव्वदव्वेसु" त्ति" सूत्रविनिश्चितार्थप्राप्तिश्चास्य सामान्यानभ्युपगमे सति विशेषाभ्युपगमात्। अत एव विशेषेणावह्रियते निराक्रियते सामान्यमनेनेति निरुक्त्युपपत्ति। जलाहरणाद्युपयोगिनो घटादिविशेषानेवायमंगीकरोति ननु सामान्यमर्थक्रियाऽहेतोस्तस्य शशशृंगप्रायत्वात्। ननु घटोऽयं द्रव्यमित्यादौ घटत्वद्रव्यत्वादिकं कथमपह्नोतुं शक्यमिति चेन्न कथंचिदन्यापोहरूपं तत्, न त्वतिरिक्तमित्येव परमुच्यते, असत्कार्यवनिवेशाच्च नान्योन्याश्रयः। यदि चैवमप्यभावसामान्याभ्युपगमापत्तिस्तदा तु सर्वत्र शब्दानुगमादेवानुगतव्यवहारः कारणत्वाद्यादौ परेणापीत्थमेवाभ्युपगमादित्यादिकं प्रपञ्चितमन्यत्र। "लौकिकसम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहार इति तत्त्वार्थभाष्य"। विशेषप्रतिपादनपरमेतत्। यथाहितोक्तो

निश्चयत पंचवर्णेऽपि भ्रमरे कृष्णवर्णत्वमनागीकरोति तथायमपीति लौकिकसमः । न च कृष्णो भ्रमर इत्यत्र विद्यमाने-
तरवर्णप्रतिषेधाद्भ्रान्तत्वम्, अनुद्भूततरेतराविवक्षा, तदुद्भागेऽतात्पर्यात्, उद्भूतवर्णनिरूपाया एवाभिलापादिव्यवहार-
हेतुत्वात् । कृष्णादिपदस्योद्भूतकृष्णादिपरत्वाच्चाऽतात्पर्यज्ञ प्रत्येतस्याप्रामाण्येऽपि तात्पर्यज्ञ प्रति प्रामाण्यात्, लोकव्यव-
हारानुकूलत्वात् । नापि निश्चयत , अवधारणात्मकत्वादित्यसत्यमत्र । ननु कृष्णो भ्रमर इति वाक्यवत् पञ्चवर्णो भ्रमर
इति वाक्यमपि कथं न व्यवहारनयानुरोधि, तस्यापि लोकव्यवहारानुकूलत्वात्, आगमबोधितार्थेऽपि व्युत्पन्नलोकस्य
व्यवहारदर्शनात्, लोकबाधितार्थबोधकवाक्यस्याव्यवहारकत्वे चात्माऽरूपवानित्यादिवाक्यस्याप्यव्यवहारकत्वापातात्सत्या-
प्यात्मशरीरत्वादिबोधकलोकप्रमाणबोधकत्वादभ्रान्तत्वोक्त्या बाधितार्थबोधकत्व चोभयत्र तुल्यम् । प्रत्यक्षनियतैव व्यवहारनि-
यता, न त्वागमादिनियतेति तु व्यवहारनयस्य चार्वाकदर्शनप्रवर्तकस्य मतम्, न तु व्यवहारनयस्य जैनदर्शनस्यापिन
इति चेत्सत्यम् । यद्यपि क्वचिद्दृष्टार्थे नैश्चयिकविषयतासत्त्वेऽपि व्यावहारिकविषयता स्वीक्रियते, तथापि लोकप्रसि-
द्धार्थानुवादस्थले क्वचिदत्र भवति कृष्णो भ्रमर इति वाक्ये स्वजन्यबोधे भ्रमरविषयतानिरूपितपञ्चवर्णत्वाद्यविषयताया
व्यावहारिकवाक्यानाम तथात्वमिति दिक् । शुक्तिका भवति, पन्था गच्छतीत्यादौ वाक्तुल्येन गौणप्रयोगोऽप्युपचारमात्र,
विलापप्रधानत्वाद्य विस्तृतार्थ इति । अयमपि सकलनिक्षेपाभ्युपगमपर एव । स्थापना नेष्टव्यमिति कश्चित्प्रामाणाय न
जानीमः । न ह्यप्रतिमाया नैव व्यवहारो भवति, न वा भवमपि भ्रान्त एव, न वा नामादिप्रतिपक्षव्यवहारसामर्थ्यम

१ गौणव्यवहारस्थमिनिषत् २ गौरवादि

सीत्यर्थंनरतीयमेतत् यत्तु लोकव्यवहारानुरोधित्वं स्थापनानभ्युपगन्तृत्व चेति ॥ प्रत्युत्पन्नग्राह्यध्यवसायविशेष ऋजु सूत्र " पच्चुप्पण्णग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो त्ति " सूत्रम् । प्रत्युत्पन्नग्राहित्व च भावत्वेऽतीतानागतसम्बन्धाभाव-व्याप्यत्वोपगन्तृत्वम् । नातोऽतिप्रसग । वर्तमानक्षणसंबन्धवदतीतानागतक्षणसंबन्धोऽपि कथ न भावानामिति चेद्वि-रोधात् । अतीतत्वानतीतत्वयोरेव विरोधो, न त्वतीतत्वानागतत्वयोरिति चेन्न, अनागतत्वेनानतीतत्वाक्षेपात् । अतीता-नागताकारज्ञानदर्शनादविरोधादिति चेन्न, प्रत्यक्षे तथाकारानुपरागात्, प्रबुद्धे वासनादोषजनिततथाविकल्पाच्च । तत्त्व सिद्धेरनुभवाविशेषे निक्षेपाविशेष इति चेन्न, उपादानव्यक्तिविशेषेणोपादेयव्यक्तिविशेषादित्यन्यत्र विस्तर । सता साम्प्रतानामर्थानामभिधानपरिज्ञानमृजुसूत्र इति तत्त्वार्थभाष्यम् । व्यवहारातिशायित्व लक्षणमभिप्रेत्य तदतिशयप्रतिपा-दनार्थमेतदुक्तम् । व्यवहारो हि सामान्य व्यवहारानङ्गत्वान्न सहते, कथ तर्ह्यर्थमपि परकीयमतीतमनागत चाभ्यभि-धानमपि तथाविधार्थवाचकम्, ज्ञानमपि च तथाविधार्थविषयमविचार्य सहेतेत्यस्याभिमान । न चाय वृथाभिमान ,स्वदेश काळयोरेव सत्ताविश्रामात्, यथाकथचित् सबन्धस्य सत्ताव्यवहाराङ्गत्वेऽतिप्रसगात् । न च देशकालयो सत्त्व विहाया न्यदतिरिक्त सत्त्वमस्ति यद्योगिता प्रकृते स्यात, असत्ताबोधोऽपि चास्ति, तन्न, सत्ताननुवेधात, अन्यथा खरशृङ्गादी योगि शृङ्गमिति तदर्थश्रुति चेन्न, एतस्यार्थस्यास्वारसिकत्वात् । तथाप्ययोगतानिश्चये कथं स्वारसिको यथाश्रुतार्थबोध इति चेद्रूपादिरिव स्वाक्षार्थयोग्यतानिश्चयात्, विकल्पात्मकज्ञाने सत्त्वाप्रतिबंधकत्वाच्च । तथा चोक्तं श्रीपूर्वैरपि–अत्थं

[illegible] करोति हि । अत्राधाय प्रमामत्र मत प्रामाण्यनिश्चयाम् ॥ १ ॥ इति । अथागतो जाताश्र-
[illegible] न मनवनीति न तन्निरधो युक्त । शशशृगमस्ति न यति पृच्छतो धर्मिग्रनव्या
[illegible] तूष्णींजातन या परानयाजातादिति चेत्, यथा परेण विशिष्टख्याति
[illegible] व्यवहारस्त्वयास्माकमपि मनुपरागेणामत्यपि विशिष्ट वैशानि
[illegible] । शशशृगमस्ति न इति [illegible] शशशृग नास्तीत्यभिधानु युक्तत्वात्, आनुपूर्वी
[illegible] नास्तीत्यपि प्रामाण्योपपत्ते । काल्पनिकस्याप्यर्थस्य परप्रतिबोधार्थतया
[illegible] प्रमाण्य । [illegible] तत्र तत्र नयस्थले दर्शनान्तरीयपक्षमहस्य
[illegible] । [illegible] अनिमना [illegible] नेतुल्यमिति वादिभिर्वमनमतानुसारिण ।
[illegible] इति वाच्यम्, नामादिवस्तुचरितव्यनिक्षेपदर्शनपरतया
[illegible] शब्द इति [illegible] । नामनामाभिधान
[illegible] । [illegible] प्रसिद्धपूर्वकशब्दादयप्रत्यय मामत इति
[illegible] गृहीतसंकेतस्य शब्दस्य नामनामबोधकत्वार्थसमायीति
[illegible] ग्राहकतया निरदति । तज्जातीयार्थसमायतं च तत्त्व
[illegible] च तदन्यतरविशेषदानाभिराकरणीया ।

वाच्यं च घटस्य स्वपर्यायावच्छिन्नत्वोपरागेणापि नास्तीति तदवच्छेदेनावाच्यतापत्तिः, वस्तुतः स्वपर्यायावच्छिन्नस्यैकपदवाच्य-
त्वेनावाच्यत्वानापत्तेः यत्तु कथञ्चिदुभयपर्यायावच्छिन्नस्याप्येकपदवाच्यत्वेन तथात्वापत्तेः, अन्यथा परपर्यायावच्छिन्नस्यावाच्य-
त्वापत्तेः । विधेयांश एकपदजन्यस्वपरपर्यायोभयावच्छिन्नप्रकारकशाब्दबोधाविषयत्वमेवावक्तव्यत्वमिति न दोष इति
चेत्, उभयपदजन्यस्याप्येकपदजन्यत्वाव्यभिचारात् । युगपत्प्राधान्याभ्यामुभयत्वबोधकद्वितीयभङ्गे पर्यायान्तरेणाप्यवाच्य-
त्वोक्त्यापत्तेः । प्रकृतेऽप्येकेन तदुभयादिमाकृतिकपदेन बोधजनकत्वाच्च । अथ स्वपरपर्यायोभयावच्छिन्नैकविधेय-
कशाब्दबोधाविषयत्वमवाच्यत्वम् । द्वितीयभङ्गे च युगपत्पदाभ्यामपि तात्पर्यवशादेकविधेयकबोधस्यैवोद्देश्यत्वाभा-
[illegible], उभयाभिलापस्य युक्तिमत्त्वादुभयविधेयकबोधस्यैवोद्देशाच्च बाध इति चेत्, अप्रसिद्धेः । निरुक्तप्रकारस्यापि
अभिलाप्यत्वाभ्युपगमे तत्र स्यात्पदप्रयोगानुपपत्तेः । तथा चापश्चिमविशेषविश्रान्तवक्तव्यत्वप्रतिपत्त्याऽवक्तव्यत्वाभिव्यक्तौ
वक्तव्यविषयस्याष्टमभङ्गस्यापत्तेः । अवक्तव्यत्वप्रतिपत्तेस्तु विशेषविश्रान्तत्वादेव नाष्टमभङ्गापत्तिरिति हि सम्प्रदाय इति
चेन्न, प्रकृतविधिनिषेधधर्मद्वयावच्छिन्नविधेयताकशाब्दबोधाविषयत्वरूपस्यावक्तव्यत्वस्य स्वपरपर्यायोभयभेदेन तृतीयभ-
ङ्गाभिमतत्वाद्दोषाभावादवच्छिन्नतोपादानादवक्तव्यत्वार्थकविधेयतामादाय न बाध इति दिक् ॥ ३ ॥ एकस्मिन् देशे स्वपर्या-
यैरर्पितोऽपरस्मिंश्च परपर्यायासत्त्वेन विवक्षितो घटोऽघटश्च जायते । एकस्मिन् धर्मिणि देशभेदेन विभक्ततया विवक्षित एक-
[illegible] तथा बोधात् ॥४॥ एकस्मिन् देशे स्वपर्याये सत्त्वेनार्पितोऽन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्याये सत्त्वा-
सत्त्वाभ्यामर्पितोऽस्त्यवक्तव्यश्च जायते । देशभेदेनैकत्र सत्त्वावक्तव्यत्वोभयबोधनतात्पर्यकवाक्येन

एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितोऽन्यस्मिंस्तु स्वपरपर्यायैः सत्त्वासत्त्वाभ्यामेकेन शब्देन वक्तुमभिप्रेतोऽकुम्भोऽवक्तव्यश्च भ
वति । देशभेदं विनाऽनन्तत्वादवक्तव्यत्वोभयबोधनतात्पर्यकवाक्येन बोधात् ॥६॥ तथैकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितोऽ-
न्यस्मिंस्तु परपर्यायैरसद्भावेनार्पितोऽपरस्मिंस्तु स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यामेकेन शब्देन वक्तुमिष्टः कुम्भोऽकुम्भोऽवक्त-
व्यश्च भवति । देशभेदं विनाऽत्र त्रयबोधनतात्पर्यकवाक्येन तथाबोधादिति विशेषः ॥७॥ तथा च भाष्ये भाष्यकारः । "अहवा पच्चु
प्पन्नो, रिउसुत्तस्साविसेसिओ चेव । कुंभो विसेसिओ चेव, ऽकुंभोऽविसेसियतरोऽ ॥ १ ॥ सब्भावादि हि सद्दस्स सब्भावा-
सब्भावो पप्पिओ । कुंभाकुंभावत्तव्वोभयरूवाइभेओ सो ॥२॥ त्ति " अत्र कुम्भाकुम्भेत्यादिगाथार्धेन षड् भङ्गाः साक्षादुपात्ता
असमस्तादिशब्दात्, तथाहि कुम्भोऽकुम्भोऽवक्तव्य कुम्भश्चाकुम्भश्च कुम्भश्चावक्तव्यश्चाकुम्भश्चावक्तव्यश्चेति त्रिविध उभयरूप,
आदिशब्दगृहीतश्च कुम्भोऽकुम्भोऽवक्तव्यश्चेति सप्तभेदो घट इति । अत्र च सकलधर्मिविषयत्वात्त्रयो भङ्गाः अविकला
देशाः, चत्वारश्च देशावच्छिन्नधर्मिविषयत्वाद्विकलादेशा इति यद्यपीदृशसप्तभङ्गपरिकरितं संपूर्णं वस्तु स्याद्वादिन एव
मन्यन्ते, तथापि ऋजुसूत्रदृष्टाभ्युपगमापेक्षया एतदन्यतरभङ्गाधिक्याभ्युपगमाच्छब्दनयस्य विशेषिततरत्वमत्रुष्टमिति संप्र-
दायः । अथवा लिङ्गवचनसंख्यादिभेदेनार्थभेदाभ्युपगमादृजुसूत्रादस्य विशेषः । अथ खल्वेतस्याशयः—यदि ऋजुसूत्रेण
" पलालं न दहत्यग्निर्भिद्यते न घटः क्वचित् । नासंयतः प्रव्रजति भव्योऽसिद्धो न सिध्यति ॥ १ ॥ इत्यादौ विकाराविं
कारापन्नक्रियानामादिपदानां सामानाधिकरण्यानुपपत्त्या किं न तथाकल्पने अभिनिविश्यतेति । अस्य चोपदर्शिततत्त्वो
भावनिक्षेप एवाभिमतः । समभिरूढः पर्यायभेदेनाध्यवसायविशेषः समभिरूढः । " वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णये

[illegible] । [illegible] इति [illegible] । तत्र च यद्यपि न [illegible]
[illegible] तथापि [illegible] तत् ।
[illegible] । अत्र [illegible] यदुत यदि शब्दो [illegible] प्रतिपद्यते
[illegible] न स्वीकुर्म, [illegible] मकतमकादिति [illegible]
[illegible] किमिति न परिलक्ष्यते । अत्र येन रूपेण [illegible] रूपेण
[illegible] इति घटकुटपदयो पर्यायत्वमेव युक्तमिति चेन्न,
[illegible] । [illegible] समानाधिकरणपदत्वापेक्षया लाघ
[illegible] । [illegible] विनापि दृश्यते पदार्थबोधादिति चेन्न,
[illegible] । [illegible] मिति चेन्नापक्षमेव कि इन्तति पृत्कारेण ।
[illegible] । [illegible] यदि [illegible] यदृच्छाशब्दसंकेतादपि
[illegible], यदृच्छासंकेतोपस्थापादस्वजा-
[illegible] कि न स्यादिति चेन्न, अर्थस्येव पद
[illegible] , न [illegible] । अस्या
[illegible] । " घनाघ [illegible]

एवंभूतो विशेषः ' इति सूत्रम् । व्यञ्जनार्थयोरेवंभूत इति तत्त्वार्थभाष्यम् । तत्त्व च पदाना व्युत्पत्त्यर्थान्वयनियतार्थबोधकत्वानुपगन्तृत्वम् । नियमश्च भावतो देशतश्चेति न समभिरूढातिव्याप्तिरपि । अय खण्डस्य सिद्धान्त –यदि घटपदार्थाभावात् पटपदार्थोऽपि न घटपदार्थस्तदा जलाहरणादिक्रियाविरहकाले घटोऽपि न घटपदार्थोऽविशेषादिति । तन्न प्राणधारणाभावात् सिद्धोऽपि न जीवः स्यादिति चेदेतन्नये न स्यादेव । तदाह भाष्यकार –" एव जीव जीवो, संसारी पाणधारणाणुभवा । सिद्धो पुण अजीवो जीवणपरिणामरहिओ त्ति ॥ १ ॥ अत एव जीवो नोजीवोऽजीवो नोऽजीव इत्याकारित नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रसाम्प्रतसमभिरूढा जीव प्रत्यौपशमिकादिभावपचकग्राहिण । तन्मते स्वामी पचस्वपि गतिषु जीव इति जीवद्रव्य प्रतियन्ति । नोजीव इति च नोशब्दस्य सर्वनिषेधार्थपक्षेऽजीवद्रव्यमेव, देशनिषेधपक्षे च देशप्रतिषेधाज्जीवस्यैव देशप्रदेशौ । अजीव इति नकारस्य सर्वप्रतिषेधार्थत्वात्पर्युदासाश्रयणाच्च जीवादन्यत् पुद्गलादिकमेव । नोऽजीव इति सर्वप्रतिषेधाश्रयणे जीवद्रव्यमेव, देशप्रतिषेधाश्रयणे चाजीवस्यैव देशप्रदेशौ । एवम्भूतस्तु जीव प्रत्यौदयिकभावग्राहक, तन्मते क्रियाविशिष्टस्यैव पदार्थत्वादित्यय जीव इत्याकारित भवस्थमेव जीव इच्छति, न तु सिद्धम्, तत्र जीवनार्थानुपपत्ते । नोजीव इति चाजीवद्रव्य सिद्ध वा । अजीव इति चाजीवद्रव्यमेव । नोऽजीव इति च भवस्थमेव । जीवदेशप्रदेशौ तु सपूर्णार्थाद्विनानेन न स्वीक्रियेत इत्यस्माक प्रक्रिया । केचित्त्वेवम्भूतानिमतेन सिद्ध एव जीवो भावप्राणधारणात्, न तु ससारीति परिभाषन्ते । तदाहु–त्रिकाल च दूषणा, इंद्रियपञ्चमाख्या-

पाणो अ। यन्हारा सो जीवो, णिच्छयदो उवदणा जस्स ॥ १ ॥ इति । न च द्विचेतनाग्राही संसारवति जीव एवेति वाच्यम्, शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणस्य सिद्धेऽव धरणात्। न च समारिचैतन्यमपि निश्चयतः शुद्धमेवोपरागस्य तन्त्रप्रतिरूपात्, तदुक्तम्–" मग्गणगुणठाणेहि अ चउदस य हवंति तह असुद्धणया। विणेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्ध-णया ॥ १ ॥ इतीति वाच्यम् एकीकृतनिश्चयेन तथाग्रहणेऽपि पृथक्कृतनिश्चयभेदे तदग्रहणादिति, तच्चिन्त्यम्। एवं तस्य जीव प्रत्यौदयिकभावग्राहकत्वात्। न चास्य क्रियाया एव प्रवृत्तिनिमित्तत्वाच्चानयं एव ज्ञाननिक्षेपाश्रयणे शुद्धधर्मप्रा-द्रव्यस्यानाराधमिति वाच्यम्, यादृशार्थत्वमुपलक्षणीकृत्येतरनयार्थप्रतिसन्धान तादृशार्थत्वप्रकारकनिक्षेपस्यैव सर्वगमगत्यभूताभिधानस्य सांप्रदायिकत्वात्। अन्यथा तत्रापि निक्षेपान्तराश्रयणेऽनवस्थानात्, प्रकृतमात्रापर्यवसाना दत्तेन, शून्यतायां वा पर्यवसानात्। किंचैतादृगुपरितनैवभूतस्य प्राधान्येनभूताभिधानपूर्वमनाभिधान युक्तम्। अन्य-थाऽऽत्मसकत्वप्रसङ्गात्। तस्माच्च यहाराद्यभिमतव्युत्पत्त्यनुरोधेनौदयिकभावग्राहकत्वमेवास्य सूरिभिरुक्तं चेतदिति स्मर्त-व्यम्। न चेन्द्रियरूपप्राणानां क्षायोपशमिकत्वात् कथमेवंभूतस्यौदयिकभावमात्रग्राहकत्वमित्याशङ्कनीयम्, प्राधान्येनायु क्रमादेवगत्यर्थस्य जीवनार्थस्य ग्रहणात्, उपहतेन्द्रियेऽप्यायुरुदयेनैव जीवननिश्चयात्। ननु यदि जीव प्रत्यौदयिकभाव एव गृह्यते एवंभूतेन, कथं तर्हि ज्ञानप्राणयोगात्सतामपि सिद्धस्य जीवत्वं मलयगिरिप्रभृतिभिरुक्तमिति चेत्, ज्ञानपञ्चक-माद्दिनगमाद्यभिप्रायेणेति गृहाण। अत एव प्रज्ञापनादौ जीवनपर्यायविशिष्टतया जीवस्य शाश्वतिकत्वमभिदधे। यदि पुनः प्रस्थकन्यायाद्विशुद्धनैगमनयमाश्रित्य प्रागुक्तप्रमन्यगाथा व्याख्यायते परैः, तदा न किंचिदस्माकं दूष्यतीति

विनाशीत्यपि दृढतरबोधेन । सिद्धोऽप्येतन्नये भव्ययोगात्सत्त्व, अतति सततमपरापरपर्यायान् गच्छतीत्यात्मा च स्यादेव । अभ्युपदर्शितत्त्वो ज्ञानादिरेव एवाभिमत । तदेव दर्शिता सप्तापि नया ॥ एतेषु च यद्यपि क्षणिकत्वादिसाधने स्वादिपराक्रमेणैकान्तानुप्रवेशादप्रमाणम्, तथापि परेषा तर्क इव प्रमाणाना स्वविशेषरूपाणामनुग्राहकत्वादुपयुज्यन्त इति संगीयते । तत्त्व तु बहुश्रुता विदन्ति । एतेषु च ज्ञानवत्त्वानवत्त्वादिविचारेऽपेक्षैव शरणम् । निश्चयव्यवहाराभ्यां कारणानां आनन्तर्यपारम्पर्यव्यवस्थितानामप्यपेक्षाऽविशेषात् । पूर्वेण परस्योपकृत्याविशेष इति चेन्न, इच्छामात्रशरणत्वात् । क्रियानये स्वविषयसमवधाननियतेतरविषयसमवधान विशेष इति चेन्न, चरमकारणीभूतक्रियाजनकज्ञानविषयत्वात् ज्ञाननयस्यापि विशेषात् । क्रियानये कार्योपधायको विशेषो, ज्ञाननये तु व्यवहारोपयिक इति चेन्न, ज्ञाननयविशेषस्यापि परंपरया कार्योपधायकत्व, पारम्पर्यानन्तर्ययोर्विशेषस्थैवाभावादित्युक्तम् । अत एवेतरकारणविशिष्ट चरमकारण सामग्रीति सामग्रीत्वमेकत्र विश्रान्त, विनिगमनाविरहात् । न च सम्बन्धलाघवं विनिगमक, विशेष्य इव विशेषणे तत्सम्बन्धग्रहावश्यकत्वे तदसिद्धेरिति दिक् ॥ स्यादेतत् । कुर्वद्रूपत्वाच्चरमकारणमेव क्रियानयाभिमत कारण युक्त, नान्यत्, अत एव क्रियमाण कुर्वद्रूपोपधायकं क्रियमाणं कृतमेवेति वदन्ति । न चैव कृतकरणासमाप्ति, सिद्धस्यापि साधने करणव्यापारापुनरुक्तिरिति वाच्यम्, कार्यमुत्पाद्य क्रियोपरमेण तत्समाप्ते । न च यादृशव्यापारवता दण्डादीना पूर्व सत्त्व, तादृशानामेव देश प्रविष्ट घटोत्पत्त्यन्तरमपि सम्भवेन, तदा तदुत्पत्तिप्रसंग इति वाच्यम्, स्वजनकसम्बन्धेऽपि सूक्ष्मक्रियाविगमात् । न च भविष्यतो घटस्य प्राक् सत्त्वे तदापि तदुत्पत्तिप्रसंगोऽसत्त्वे च कार्याव्यवहितपूर्ववृत्तित्वाभावेन कारणत्वानुपपत्ति-

रीत वाच्यम्, कार्यव्याप्यतावच्छेदकपरिणामविशेषरूपकारणतायाः कार्यगतवृत्तितानियमात् । अत एव पुरंदूरनममा-
माणिक्यम्, धीत्वादिना गास्याज्ञातिरूपतदभिव्यक्तिरिति निरस्तम् । अत्रैव चमत्रमणात्सृष्टिदीर्घक्रियाकाले पुनो न
न्यत घटः, यदि क्रियमाणः कृत एवेति चेन्न, क्रियाया दीर्घकालत्वाभिप्रेतस्य समय तदनुपगमात् । घटगानिष्पाद्यो
स्वंसादर मृन्मर्दनाद्यारम्भकायकरणस्यापि घटं करोमीति व्यवहारात् । तदुक्तम्—"पञ्चमयरञ्जारोही, गिरे-
गो धम्मयाद्रिवाणोति । पञ्चमयरञ्जारोहि, धूमं पकं मिल्लाणि ॥ १ ॥ इति" । कृतस्यैव करणे क्रियावैयर्थ्यमि
स्यपि न रमणीयम्, क्रियैव निष्ठा जनयित्वा कार्यस्य कृतत्वोपपादनात् । कृतमेव क्रिया जनयति, नाकृतम्, असत्त्वात्,
क्रियाजनितत्वाच्च कृतमित्यन्योन्याश्रय इति चेन्न, चरमादिनैव घटादिक्रियानन्यत्वात्र कृतत्वाभ्युपेशादायादेव समाधा-
त् कृतत्वोपपत्तेः । यदि च क्रियमाणं न कृतं, तदा क्रियासमये कार्याजातात्पूर्वं तत्पश्चाच्च कारणाभावात्कार्यं न जाये-
देव । सामग्र्यास्तु चरमक्षण एव कार्यव्याप्यत्वोपगमात्सैव दोष इति चेन्न, सामग्रीसमयस्यैव कार्यव्याप्यत्वोपगमौचित्यात्,
ध्यासाधुनस्त्वाभ्युपगमस्य साधनात्, कारणानां नानासमयस्य कार्याणामव्याप्यत्वेन कारणोत्तरकालेऽपि कार्यासिद्धेश्च । अथ क्रिय-
माणमित्यत्र वर्तमानत्वमानशोऽर्थः कृतमित्यत्र चातीतत्वं निष्ठार्थः, तत्र वर्तमानत्वं विद्यमानकालवृत्तित्वं, अतीतत्वं च
विद्यमानध्वंसप्रतियोगिकालवृत्तित्वम्, विद्यमानत्वं च तत्तत्प्रयोगाधारत्वं, प्रयोगत्वं च तत्तदर्थोपस्थित्यनुकूलव्यापारत्वम्,
विद्युधारणादिगाधारत्वं, तदा तदुत्पत्तित्वनञ्चकादेः शक्यतावच्छेदकतत्कालानुगमकं, तच्च वर्तमानत्वमतीतत्वं नाधारत्वेऽ
न्यनि, धातूपन्नलयनन्यनाम्रस्त्वनोधे समाननिराप्यत्वमत्यामस्या धातुनन्योपस्थितेर्दनुत्वात्, अत एव नातीतत्व

ज्ञानाश्रये पट जानातीति प्रयोगप्रसङ्ग, न चैवमारम्भसमये पचतीति प्रयोगो न स्यात्तदा पाकाभावादिति वाच्यम्, स्थूल-
कालमादाय तत्समाधानात्, तस्मात् क्रियमाणं कृतमित्यन्वयानुपपत्तिरिति चेन्न । एवं सत्यारम्भकाल इव तत्पूर्वकालेऽप्येक-
स्थूलकालाभिप्रायेण पचतीति प्रयोगप्रसङ्गाद्व्यवहारानुकूलप्रयोगादरस्य वस्त्वसाधकत्वात्, अन्यथा पुरुषो व्याघ्र इति प्रयो-
गात् पुरुषस्यापि व्याघ्रत्वप्रसङ्ग । किं चैवं नष्टो घटो, नश्यन् घट इत्यादिप्रयोगव्यवस्थाया तव का गति, नाशस्योत्कातीत-
तत्वायोगात् । नष्टेऽपि घटे विद्यमाननाशप्रतियोगित्वाच्च । अथ तत्रातीतत्वं वर्तमानत्वं च कृत्प्रत्ययार्थोत्पत्तावेवान्वेतीति
न दोष इति चेन्न, उक्तनियमभङ्गप्रसङ्गात् । धातुत्वप्रत्ययत्वादेर्नानात्वात् तन्नियमस्य विशिष्य विश्रान्तिरिति चेन्न, अ
न्ततो धातुपदत्वादिनापि तदनुगमात् । अथान्यत्राप्येकपदोपात्तत्वप्रत्यासत्त्या कृत्यादिस्वार्थ एव स्वार्थकालान्वययोः
व्युत्पत्तिर्नियमात्, न च पचत्यपि भाविकृतिना प्रागभावमाद्यकृतिध्वंसं चादाय पक्ष्यत्यपाक्षीदिति प्रयोगप्रसङ्ग इति वाच्य,
आद्यकृतिप्रागभावचरमकृतिध्वंसयोर्भविष्यदतीतप्रत्ययार्थत्वादिति चेन्न । जानातीत्यादौ धात्वर्थकालान्वयदर्शनात् ।
अस्तु वा । तथापि कृत्प्रत्ययार्थोत्पत्ते प्रातिपदिकार्थे घटे कथमन्वयोऽयोग्यत्वात् । परम्परासम्बन्धेन तत्र तदन्वयोपपत्तिरिति
चेन्न, विद्यमानघटे न नष्टो घट इति प्रयोगानापत्ते । वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वात्, उत्पत्ते
धात्वर्थे तस्य च प्रातिपदिकार्थेऽन्वयान्न दोष इति चेन्न, नामार्थयो साकाङ्क्षसंबन्धे नान्वयायोगात् । अन्यथा तण्डुलं पच-
तीत्यत्रापि कर्मत्वाख्यकर्मणि प्रातिपदिकार्थस्य धात्वर्थेऽन्वयप्रसङ्गात्, अभेदेन निपातान्यनामार्थप्रकारकबोधे समानविशे-
ष्यप्रत्यासत्त्या निपातप्रत्ययान्यतरजन्योपस्थितेर्हेतुत्वात् । नामार्थप्रकारकधात्वर्थविशेष्यकबोधाभावेऽपि धात्वर्थप्रकार

कनामार्थविशेष्यकबोधः प्रकृतेऽनपाय एवेति चेन्न, चैत्रः पाक इत्यादौ कर्तृत्यादिसंसर्गेण पाकादेश्चैत्राद्यन्वयबोधाय धात्वर्थप्रकारकबोधेऽपि निपातप्रत्ययान्यतरजन्योपस्थितेर्हेतुत्वान्तरकल्पनापत्तेः स्यादेतत् । अत्र नशधातोर्नाशयति समासेऽनन्वयात्तु प्रातिपदिकार्थेन सममन्वय । न च धात्वर्थस्याख्यातार्थेनैवान्वयनियमात् कथमेवमिति वाच्यं, तत्रैव धात्वर्थप्रकारकबोधे आख्यातादिजन्योपस्थितेर्हेतुत्वात्, अत एव जानातीत्यादौ ज्ञानधातोर्ज्ञानत्वेन प्रातिपदिकार्थेनान्वयजे आख्यातार्थाऽयोग्यत्वाज्जायत इति चिन्तामणिकृतोक्तं युक्तम् । अन्यथा निरूपितत्वसंसर्गेण ज्ञानप्रकारकाश्रयविशेष्यकबोधं तदाख्यातजन्यत्वादिकल्पने गौरवात् । न च सामान्यतो हेतुत्व समेवेति च गौरवमिति वाच्यम्, तथापि तत्प्रकारकज्ञानादिहेतुताकल्पने गौरवादिति । मैवम् । तथा सति जानातीत्यत्राख्यातार्थसंख्यान्वयप्रसङ्गात्, धात्वर्थे आख्यातार्थसंख्यान्वयात् । अथाख्यातार्थसंख्यान्वयो नाम नामविशेष्यत्व न तत्र, किं तु प्रथमान्तपदार्थस्यापरत्वेन न दोष इति चेन्न, धात्वर्थप्रकारकबोधसामान्य एवाख्यातादिजन्योपस्थितेर्हेतुत्वात्तस्यैवेति प्रचलागौरवात्, प्रत्ययलोपानन्वयप्रसङ्गात् । पाकोऽयमित्यादौ तु लोक पचति लोकः पाक इति प्रयोगयोर्विशेषाय पचादीनां धात्वर्थतावच्छेदकविशिष्ट शक्तिस्वीकारान्न दोष इति दिक् । अथ ज्ञातो घट इत्यत्र विषयत्वेन नष्टो घट इत्यत्र प्रतियोगिनाऽपि प्रत्ययविशेषार्थेनान्वयानुपपत्तिरिति चेन्नयापि नाशोत्पत्तिकालेऽपि निष्ठार्थाविरोधात् म्रियमाण कृत मित्यत्रापरत्वः पक्ष इत्यत्रापि सर्वत्र कालवृत्तिता विशेषणसिद्धत्वस्य निष्ठार्थत्वात् । तस्य चाद्यसमयावच्छेदेन साध्य त्वा सममवियोगात् । सिद्धविशिष्टसाध्यताया वर्तमानार्थत्वात्, प्रारब्धोऽपरिसमाप्तश्च वर्तमान इति हि वैयाकरणा, चिर-

नष्टे इदानीं नष्ट इति, चिरोत्पन्ने चेदानीमुत्पन्न इति च प्रतीति समभिव्याहारविशेषादेतत्कालावच्छिन्नसाध्यत्वविशिष्टसिद्धत्वोपस्थितेर्न च भवति। इत्थमेव क्रियमाणं कृतमेव, कृतं च क्रियमाणत्वेन भजनीयमिति सिद्धान्तः सगच्छते। सिद्धत्वविशिष्टसाध्यताया सिद्धत्वनियतत्वात्, शुद्धसिद्धतायाश्च विशिष्टसाध्यताऽनियतत्वात्। अस्तु वा विपरिणामस्वरूपनिष्पत्त्यादिरूपानुगतैव निष्ठा, समभिव्याहारविशेषादेव बोधविशेषोपपत्ते। परमुक्तयुक्ते क्रियाकालो निष्ठाकाल न विरुणद्धीति गंभीराशयमतं कियदिह विविच्यत इति, सत्यम्, निश्चयत इत्थमेव, तत्त्वव्यवस्थायामपि व्यवहारतोऽकुर्वतोऽपि नियतपूर्ववर्तिनः कारणत्वाभ्युपगमात्। अन्यथा पूर्वं कुर्वत्त्वानिश्चये प्रवृत्त्यनुपपत्तिप्रसगात्। किं चेद कुर्वद्रूपत्वमपि सहकारिसमवधानं नान्यथेत्यवस्थितकारणादेव सहकारिचक्रानुप्रवेशात् कार्योपपत्तौ किं कुर्वदकुर्वतोर्भेदाभ्युपगमकष्टेन। न चोपादानोपादेयभावनियतैः क्षणैरेव कुर्वद्रूपत्व नियम्यत इति वाच्यम्, क्षणत्वेन सर्वेषामविशेषादेकस्वभावस्य कुतोऽपि विशेषायोगात्। किं चैव कार्ये न कारणानुमानोच्छेद, सामान्यत कारणताग्रहाभावात्। न च सादृश्येन तथाग्रहाददोष, पूर्वापरानुसंधानेन क्षणिकपक्षे सादृश्यस्य ग्रहीतुमशक्यत्वादित्यादिक व्युत्पादितमनेकान्तजयपताकादौ पूर्वसूरिभि। अत एव क्रियमाणमेतन्नयेन कृत, कारणसमयस्योत्तरसमयेन कार्यसिद्धेः। अन्यथा समसमयभावित्वे कार्यकारणभावव्यवस्थायोगादुपादानोपादेयभावस्यापि परस्परोपमर्दनियतस्य क्षणभेदनियतत्वात्। न च वर्तमानत्वमतीतत्व चैकत्र व्यवहारसिद्ध, न चानीदृशेऽर्थे प्रमाणावतारः, न च यत्किंचिद्व्यवहारदर्शनात् सर्वत्र तदनाश्वासो न्याय्य इत्यादिक व्यवहारनिश्चययोर्विवादमस्त्वोऽस्य वस्तुस्थितिरन्वेषणीया। एव पुनर्विचित्रनयवादाना जिनप्रवचनविषयरुचिसंपादनद्वारा राग-

[illegible] । [illegible] बहुविद्वज्जनयं लिखामिता । तं गवयनियुत्तं [illegible]
[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] न रागतत्त्विरियमन्तरेणेति तदर्थमनस्य प्रयतितं
[illegible] ॥

[illegible] ग्रन्थे मनसा नयाद्रिरिजननाशाथ विधानता ।
[illegible] गुरी [illegible], मोज न्यायविशारद स्म तनुते [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] मुद तु द्वत न केपि तेन्यो नम ।
[illegible] एव [illegible] ॥ २ ॥
[illegible] गुरून् । [illegible] ॥ ३ ॥

[illegible]
[illegible] ॥

॥ इति नयरहस्यप्रकरणम् ॥

॥ अथ नयप्रदीप ॥

ॐ श्रीवीतरागाय नमः ॥

ऐन्द्रादिप्रणत देव ध्यात्वा सर्वविदं हृदि । सप्तभङ्गनयानां च वक्ष्ये विस्तरमाश्रुतम् ॥ १ ॥

अथ सप्तभङ्गी प्रारभ्यते । जैनानां तावत्सप्तभङ्गी विजिज्ञासितव्या । तेन तेषां प्रमाणनभिमारचयति । दुर्दमपरवादि-वादमतङ्गजान् परिनिघ्नन् सम्यक् स्वीयसिद्धान्तरहस्य निर्निद्रागमो वादिमतङ्गिका सम्यक्त्वमनश्यमन्यस्यन्ति । यदुक्तम्-"या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा, धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि । निर्दोषा निरदनि देव भवता सा सप्तभङ्गी यया, जल्पञ्जल्परणाङ्गणे विजयते वादीन्द्रवृन्दं क्षणात् ॥ १ ॥" तथा चाय शब्द यत्कि-ञ्चिन्मदस्मदृशनागान्यां च स्वीयमर्थं प्रतिपादयन् सप्तभङ्गीत्र प्रत्यवतिष्ठत । "सर्वत्रायं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थ-मभिदधान सप्तभङ्गीमनुगच्छतीति" सूत्रम् । सा कीदृक्स्वरूपेति लक्षणमाह-" एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशाद-विरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयो कल्पनया स्यात्काराङ्कित सप्तधा वाक्प्रयोग सप्तभंगीति " सूत्रम् । एत-स्याय -एकस्य जीवाजीवादेः पदार्थस्य एकशो धर्मविषयपरिप्रश्न सकलप्रमाणाराध्यत्वेन विज्ञानेन विधिप्रतिषेधविज्ञा गान्यां प्रयुक्तः स्यात्कुन्दाङ्कित सप्तविधत्वा वाक्योपन्यास सा सप्तभंगी विज्ञेया । विधि सदश । प्रतिषेधोऽसदश । पदार्थगतस्य सदसदादिधर्मायनेकप्रकारविभजनयाऽनन्तभङ्गीप्रसङ्ग तन्निरायासार्थैकपदोपादान । विधिनिषेधाद्यनन्तध

ध्यासिते एकस्मिन् जीवाजीवादिवस्तुनि अनन्तधर्मपरिप्रश्नकालेऽनन्तभङ्गप्रसङ्ग, तद्व्यावृत्त्यर्थं एकैकधर्मपर्यनुयोगस्योपादानम् । एतेनानन्तधर्माध्यासितेष्वनन्तपदार्थेषु सत्स्वपि प्रतिपदार्थं प्रतिधर्मं परिप्रश्नकाले एकैकशो वस्तुधर्मे एकैकैव सप्तभङ्गी भवतीति नियम । अनन्तधर्मविवक्षया सप्तभङ्गीनामपि नानाकल्पनमभीष्टमेव, एतत्तु सूत्रकारेणैव ज्ञापित । तथाहि–विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनन्तानामपि सप्तभङ्गीना सम्भवात् प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगाना सप्तानामेव सम्भवादिति । अथ सप्तभङ्गी स्वरूपत प्रदर्श्यते, तथाहि–स्यादस्त्येव सर्वमिति सदंशकल्पनाविभजनेन प्रथमो भङ्ग । स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पनाविभजनेन द्वितीयो भङ्गः । स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदशासदशकल्पनाविभजनेन तृतीयो भङ्ग । स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया चतुर्थो भङ्ग । स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया पञ्चमो भङ्ग । स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयकल्पनाविभजनया षष्ठो भङ्ग । स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति क्रमात् सदशासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया च सप्तमो भङ्ग । अथार्थत प्रथमभङ्ग प्रचिकटयिषुराह–विधिप्राधान्यविवक्षायामथ भङ्ग । स्यादित्यनेकान्तद्योतकमव्यय । स्यादित्यनेन कथञ्चित्स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयरूपेणास्त्येव घटादिवस्तु नास्त्येवान्यदीयद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्करूपेण । तथाहि–घटो द्रव्यत पार्थिवत्वरूपेण, नास्ति जलादिरूपेण । क्षेत्रत पाटलिपुत्रकत्वेन नास्ति कान्यकुब्जत्वेन । कालत शैशिरत्वेन, नास्ति वासन्तिकत्वेन । भावतो रक्तत्वेन, नास्ति पीतत्वेन । एव सर्वमन्यदेव ज्ञातव्यम् । स्वद्रव्यादिचतुष्टयापे-

[illegible] परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्ति च घट इत्युक्तेः । अन्यथान्यदीयत्वापत्तौ स्वरूपहानिप्रसक्तिः ।
[illegible] नीदृग्रूपता न स्यात् । अवधारणं च कर्तव्यम् । अन्यथाऽनुक्तसमत्वादस्य कुत्रचित् तथा
[illegible] कुम्भस्य सत्त्वमित्येनापि सर्वप्रकारेणास्तित्वप्राप्तौ प्रतिनियतस्वरूपानुपपत्ति
[illegible] स्यादित्यस्य प्रयुक्तत्वात् । क्वचिद्भङ्गेषु स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षयाऽस्ति, परद्रव्यचतुष्टयापेक्षया नास्ती-
[illegible] । तत्र तु प्रयोगा [illegible] अनुसरणीयोऽपि द्रष्टव्य । यदुक्तम्–"सोऽप्ययुक्तो यतस्तेऽपि सर्वनायात्
[illegible] ॥ १ ॥' तत् एवमस्त्यात्मकयो सत्स्वपि भङ्गेषु प्रहृत प्रतिपत्तव्यम् ।
[illegible] भङ्ग । अथ द्वितीयभङ्गेन अपि–स्यान्नास्त्येवेति निषेधप्रधानकल्पनयाऽयं भङ्ग । यदेव नियत
[illegible] नास्तित्वेन प्रतीयते । यथा घट स्वद्रव्यचतुष्टयैरस्तित्वेन सिद्ध तथा
[illegible] यत् नास्तित्वेन सिद्धो भवति, अस्तित्वस्य नास्तित्वाविनाभावित्वात् । तथा च क्षणनिश्वराणां
[illegible] विनाश [illegible] । यदुक्तम्–" उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते । यो नाश न च ध्वस्त "
[illegible] निर्हेतुकत्वात् । नैव विनाशस्य [illegible] मूलकारणत्वाद्विनाशस्य निरुद्ध । न च तेनैव
[illegible] स्यात् [illegible] नरनिह्यमाण इति । जिननिश्चयसमयप्ररूपणाया नैव दोष ।
[illegible] । यदि [illegible] समये [illegible] समये विनाश इति मन्यतेऽस्मात्, ततोऽस्तित्वस्याविना
[illegible] । सर्वं वस्तु स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षयाऽस्ति नास्ति, अस्तित्वप्रधानदशाया प्रथमो भङ्ग ।निषेध

नाया तु द्वितीयो भङ्ग । अथार्थतस्तृतीयभङ्गं प्रकटयन्ति–स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति । सर्ववस्तु क्रमेण एव स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयाधारानाधारनिरूपया प्राप्तपूर्वापरभावाभ्यां विधिनिषेधाभ्यां प्रधानतया विशेषितं तृतीयभङ्गभाग्वस्तु भवतीति, घटवत् । यथा घट स्वीयद्रव्याद्यपेक्षया कथञ्चिदस्त्येव स्यात्, परद्रव्यापेक्षया नास्त्येव स्यात् । विधिप्रतिषेधप्रधानोऽय तृतीयभङ्गः । अथार्थतश्चतुर्थभङ्ग व्यक्तीकुर्वन्ति–स्यादवक्तव्य युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थ इति सदसदंशयोर्युगपत्समकालप्ररूपणानिषेधप्रधानोऽय भङ्ग । तथाहि–विधिप्रतिषेधधर्मयोर्युगपत्प्रधानभूतयोरेकस्य पदार्थस्य युगपद्विधिनिषेधद्वय इति प्रधानविधानविवक्षया तादृक्शब्दस्यानिर्वचनीयत्वादवक्तव्य घटादिवस्तु, तस्य विधिप्रतिषेधधर्माक्रान्तस्यापि युगपद्द्वयधर्मस्यावक्तव्यरूपत्वात् युगपद्विरुद्धद्वयधर्मस्याप्रयोगः शीतोष्णयोरिव सुखदुःखयोरिवानयो क्रमेणैवार्थप्रत्यायने सामर्थ्यात् न तु युगपदिति, कृतसंकेतितनिष्ठाशब्दवत् । अथवा पुष्पदन्तशब्देन संकेतितवत् । निष्ठाशब्देन पुष्पदन्तशब्देन वा क्रमेणैव एकवचनौ सूर्यचन्द्रमसोश्चार्थप्रत्ययः, तेन द्वन्द्वादिपदानामपि युगपदर्थप्रत्यायकत्वमपास्तम् । एवं सदिरो स इत्यत्र क्रमेणैव ज्ञान न युगपदिति । तथैव प्रत्ययत्वात्, समकालावाचकत्वात् । अवक्तव्य जीवाजीवादि वस्तु युगपद्विधिप्रतिषेधविकल्पनया सक्रान्तमेव प्रत्यवतिष्ठते । अस्तित्वनास्तित्वधर्मविशिष्टोऽपि समकाल अस्तित्वनास्तित्वाभ्यां वक्तुमनिर्वचनीयो घट इति फलितार्थः चतुर्थो भङ्ग । अथार्थतः पञ्चमभङ्गं प्रादुर्कुर्वन्ति–स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमिति सदंशपूर्वको युगपत्सदंशासदंशानिर्वचनीयकल्पनाप्रधानोऽय भङ्गः । स्वस्वद्रव्यादिचतुष्टयैर्विधमानत्वेऽपि सदंशोऽसदंश इति प्ररूपणा वक्तुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं घटतु जीवादिस्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया समस्त्यपि विधिप्रतिषेधरूपाभ्यां वक्तुमनि-

र्पणीय । अस्त्यत्र प्रदेशे घटः सद्रूपासद्रूपाभ्यां यौगपद्येन स्वरूपं निर्देष्टुमसमर्थत्वात् विधित्वेऽपि अवक्तव्य इति फलि-
तार्थः पञ्चमो भङ्गः । अथार्थतः षष्ठ भङ्ग प्ररूपयन्ति-स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति निषेधपूर्वको युगपद्विधिनिषेधानिर्व-
चनीयस्वभावोऽयं भङ्गः । परद्रव्यादिचतुष्टयैरविद्यमानत्वेऽपि सत्त्वासत्त्व इति प्ररूपणं कर्तुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं वस्तु
जीवाजीवादिपरद्रव्यचतुष्टयापेक्षया नास्त्यपि विधिप्रतिषेधाभ्यां वक्तुमनिर्वचनीयम् । नास्त्यत्र प्रदेशे घटः सद्-
रूपासद्रूपाभ्यां यौगपद्येन स्वरूपं निर्देष्टुमसमर्थत्वान्नास्तित्वेऽपि अवक्तव्य इति फलितार्थः षष्ठो भङ्गः । इदानीमर्थतः सप्तम
भङ्गमाविष्कुर्वन्ति-स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति अनुक्रमेणास्तित्वनास्तित्वपूर्वको युगपद्विधिनिषेधप्रख्यापनानि-
र्वचनीयस्वभावोऽयं भङ्गः । इतिः सप्तभङ्गीसमाप्तौ । स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षयाऽस्तित्वेऽपि परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तित्वेऽपि
'विधिर्वा प्रतिषेधो वेति' प्रतिपादयितुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं जीवादिवस्तु स्वद्रव्यापेक्षयाऽस्ति, परद्रव्यापेक्षया
नास्त्यपि समसमय विधिप्रतिषेधाभ्यां सह युगपत्प्रतिपादयितुमसमर्थम् । यथा स्वद्रव्यापेक्षया नास्त्यत्र घट , परद्रव्या-
पेक्षया नास्त्यत्र घटः विधिनिषेधाभ्यां यौगपद्येन स्वरूप निर्देष्टुमशक्यत्वादवक्तव्यमिति स्फुटार्थः । इत्यतः स्यादस्त्येव
स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति भङ्गेनोपन्यस्त इति ॥

न तस्मिन् वस्तुनि अनन्तधर्मत्वात्तदङ्गीकारादनन्तभङ्गीप्रसङ्ग इति शङ्कोत्थे प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारे-" एकत्र
वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानन्तधर्माभ्युपगमेनानन्तभङ्गीप्रसङ्गादसङ्गतैव सप्तभङ्गीति न विधेयं चेतसि, विधिप्रतिषेध-
प्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनन्तानामपि सप्तभङ्गीनामेव सम्भवात् प्रतिपर्याय प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव सम्

यादिति "। तथा च तत्रैव–" इय सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः, तद्विपरीतस्तु विकलादेशः। के पुनः कालादयः। काल आत्मरूपं अर्थः संबन्धः उपकारः गुणिदेशः संसर्गः शब्दः इत्यष्टौ। समहृश्च " कालात्मरूपसंबन्धाः संसर्गोपक्रिये तथा। गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥ १ ॥" विशेषार्थजिज्ञासुभिः स्याद्वादरत्नाकरे लघुवृत्तौ च द्रष्टव्यमिति ॥

यदत्र स्खलनात् किंचिदुक्तं मयका बुधैः। सप्तभंगीविवक्षाया शोध्यं शास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥

॥ इति सप्तभंगीसमर्थनः प्रथमः सर्गः ॥

अथ नयानां स्वरूपं प्रारभ्यते। नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्यैकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति नयः। प्रमाणेन संगृहीतार्थैकांशो नयः। ज्ञातुरभिप्रायः श्रुतविकल्पो वा इत्येके। अनुयोगवृत्तिकृतस्तु सर्वत्रानन्तधर्मात्मके वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो नय इति " नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः " एतस्यार्थः–येन प्रत्यक्षादिप्रमाणेन शब्दप्रमाणेन विषयीकृतस्य पदार्थस्यैको धर्मो वा नीयते प्राप्यते तदितरांशौदासीन्यतोऽपि स नयः। अत्र इत्येवं वचनं ज्ञातार्थस्यपरम्। तदितरांशप्रतिक्षेपे तु नयाभासप्रसंगः। तदुक्तं पण्डितैः–" निःशेषांशजुषां प्रमाणविषयीभूय समासेदुषां, वस्तूनां नियतांशकल्पन-

परः समुदाय जगिरः । श्रीदामीश्वपरायणालदपरे भांशे नरेतुर्यां, धदेकान्तरदर्शनानुसारे स्युगादा इर्यावः
॥ १ ॥ " निगमन यत्किंचिदर्थनिर्हीनं न भवति । यदुक्तं विशेषावश्यक-" नत्थि नएहि विहूणं सुत्तं अत्थो अ जिणमए
किंचि । आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूया ॥ १ ॥ " सर्वनयाजागमप्रमाद-स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापला
पी नयाभास । स्वस्वाभिप्रायादंशादन्यार्थे प्रतिपद्यमानो नयस्तदाजागमान इत्यर्थः न तु नयः यथान्यतीर्थिकाना नित्या-
नित्याद्यन्यतरैकान्तवादास्तस्मिति । ते च नया विस्तरविवक्षायामनेकधा भवन्ति, नानानयरुन्मन्तानामेकला-
निधानिनो न प्रभुत्वयाशाः । यदुक्तम्-" जावंइया वयणपहा तावंइया चेव हुंति नयवाया " इति व्यासतो नयान्
भर्णं न शक्यन । समासतो नय भवन्ति-स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च । यदुक्तम्-" णिच्छयववहारनया मूलिम-
नग भवाण सर्वाणं । निच्छयसाहणहेऊ दव्व पज्जाया मुणह ॥ १ ॥ " अथ द्रव्यलक्षणमाह-सत् द्रव्यलक्षण, सीदति
स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमर्थक्रियाकारि च सत् । " यदेवार्थक्रियाकारि तदेव पर-
मार्थसत् । यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोऽप्यसत् ॥ १ ॥ " इति निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्या
यान् द्रवति, द्रोष्यति, अदुद्रुवदिति द्रव्य, गुणपर्यायवद्द्रव्यं वा, गुणाश्रयो द्रव्यं वा । यदुक्त विशेषावश्यककर्त्ता-"दवए
दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण संघाओ (सद्दावो)। दव्व भव्व भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं ॥१॥ " द्रवति तांस्तान् पर्यायान्
प्राप्नोति सूयते वा, द्रूयते स्वपर्यायैरर्थ्यते प्राप्यते गम्यते वा, द्रु सत्ता तस्या एवावयवो विकारो वेति द्रव्यम् । अथान्तर
सत्तारूपाणि द्रव्याणि महासत्ताया अवयवो विकारो वा जन्त्वनेति भावः । गुणा रूपरसादयस्तेषां सन्द्राव समूहः घटा

द्रूपो द्रव्यम्। तथा 'भय भावस्स त्ति' भविष्यतीति भावस्तस्य भाविनः पर्यायस्य योग्य यद्द्रव्य तदपि द्रव्य राज्य-पर्यायार्हकुमारवत्। तथा भूत हि पश्चात्कृतो भाव पर्यायो यस्य तदपि द्रव्यमनुभूतघृताधारत्वपर्यायरिक्तघृतघटवत्। घटाद्यानन्तभविष्यत्पर्याय द्रव्य भूतभविष्यद्घृताधारत्वपर्यायरिक्तघृतघटवत्। यद्योग्य भूतस्य भावस्य भूतभविष्यतोश्च भावयोरिदानीमसत्त्वेऽपि यद्योग्यमर्ह तदेव द्रव्यमुच्यते नान्यत्, अन्यथा सर्वेषामपि पर्यायाणामनुभूतत्वादनुभविष्यमाणत्वाच्च सर्वस्यापि पुद्गलादेर्द्रव्यत्वप्रसङ्गादिति गाथार्थः। प्रसङ्गायातौ स्वभावविभावौ पर्यायौ प्रदर्श्यते–तत्रागुरुलघुद्रव्य-विकारा स्वभावपर्याया, तद्विपरीत स्वभावादन्यथाभवन विभाव। तत्रागुरुलघुद्रव्य स्थिर सिद्धिक्षेत्रम्। यदुक्त समवायाङ्गवृत्तौ–"गुरुलघुद्रव्य यत्तिर्यग्गामि वाय्वादि, अगुरुलघु यत् स्थिर सिद्धिक्षेत्र घटाकारव्यवस्थितज्योतिष्कविमाना दीनीति"। गुणविकारा पर्यायास्ते च द्वादशधा–अनन्तासंख्यातसंख्यातभागगुणवृद्धिभ्या तथानन्तासंख्यातसंख्यातभागगुणहानिभ्या च षट् षट् इति। विभावपर्यायास्तु नरनारकादिचतुर्गतिरूपाश्चतुरशीतिलक्षयोनयो वा। गुणान् विभजते अस्तित्व, वस्तुत्व, सामान्यविशेषात्मकं, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, चेति द्रव्याणा सामान्यगुणा दश। प्रत्येकमष्टौ अष्टौ सर्वेषा। ज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्पर्शरसगन्धवर्णगतिहेतुत्वस्थितिहेतुत्वावगाहनहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व चेतनत्वमचेतनत्व मूर्तत्वममूर्तत्व चेति द्रव्याणा षोडश विशेषगुणा। प्रत्येक जीवपुद्गलयो षट्, इतरेषा त्रयो गुणा, अन्त्याश्चत्वारो गुणाः, स्वजातिविजातिभ्या सामान्यविशेषाश्च। प्रसङ्गतो जीवादिद्रव्याणा

१ भावस्य २ विशेषात्मकत्व ३ प्रदेशवत्त्व

स्वभावा उच्यन्ते-अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेद-
स्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः (च) एते स्वभावा द्रव्याणां सामान्याः । चेतना
चेतनमूर्तामूर्तैकप्रदेश एतान् मुक्त्वा धर्मादित्रयाणां (षोडश) १६ स्वभावाः । बहुप्रदेशस्वभावं मुक्त्वा कालस्य १५
(पञ्चदश) स्वभावाः । संग्रहश्च-" एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः
॥ १ ॥" स्वभावा अपि गुणपर्याययोरन्तर्भूता एव द्रष्टव्याः, अन्यथा द्रव्यलक्षणे तयोरिव तेषामपि ग्रहणमभविष्यत् ।
ततो गुणा, गुणविकाराः पर्यायास्तद्युक्ता एव । एतच्च द्रव्यनयमिश्रितं विशेषार्थप्रतिपत्तये भवति । यदुक्तम्-"नाना
स्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः । तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १ ॥" तदेव द्रव्यमर्थः प्रयोजनं यस्यासौ
द्रव्यार्थिकः । सोऽपि युक्तिकल्पनया दशधा । तथाहि-अन्वयद्रव्यार्थिकः, यथा गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम् । स्वद्रव्यादिग्राहको
वा, यथा स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति । परद्रव्यादिग्राहको वा, यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति । परम
भावग्राहको वा, यथा ज्ञानमय आत्मा, अत्रानेकेषां स्वभावानां मध्याज्ज्ञानाख्यपरमस्वभावो गृहीतः । कर्मोपाधिनिरपेक्ष
द्रव्यार्थिको वा, यथा जीवः सिद्धसदृशः शुद्धात्मा । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः, यथा द्रव्यं
यम् । भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिको वा, यथा निजपर्यायस्वभावादभिन्नं द्रव्यम् । कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्ध
र्थिकः, यथा क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा । उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः, यथैकस्मिन् समये द्रव्यमुत्पाद
यगुणम् । भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः, यथात्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः । उक्ता द्रव्यार्थिकस्य भेदाः ।

[illegible] पर्यायाधिकारं [illegible]-परीति उत्पादमुत्पत्तिं विपत्तिं च प्राप्नोतीति पर्यायः । यदुक्तम्-" अनादि-
निधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥ " पूर्वोक्ता अपि षड् हानिवृद्धि-
रूपा [illegible] पर्यायशब्देन गृह्यन्ते । पर्यायो हि द्वेधा-सहभाविपर्यायोऽथवा क्रमभाविपर्याय । तदुक्तम्-
" [illegible] द्विविधा, क्रमभावी सहभावी च, सहभावी गुण इत्यभिधीयते, पर्यायशब्देन तु पर्यायसामान्यस्य स्वव्यक्ति
[illegible] दोष इति " । तत्र सहभाविपर्याया गुणा, यथात्मनो विज्ञानव्यक्तिशक्त्यादय । क्रमभाविन-
[illegible], यथा सुखदुःखादयः । पर्याया अपि स्वभावविभावाभ्यां द्रव्यगुणाभ्यां च चतुर्भेदा. । तत्राद्दि-
[illegible] शरीरात् किंचिदूनसिद्धपर्याया ॥ १ ॥ स्वभावगुणव्यंजनपर्याया, यथा जीवस्यानन्तच-
तुष्टयम् ॥ २ ॥ विभावद्रव्यव्यंजनपर्याया [illegible] ॥ ३ ॥ विभावगुणव्यंजनपर्याया मत्यादय ॥ ४ ॥ पुद्गलस्यापि
[illegible] ॥ ५ ॥ रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादयो विभावगुणव्यंजनपर्यायाः ॥ ६ ॥
[illegible] ॥ ७ ॥ वर्णगन्धरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वये च स्वभावगुणव्यंजनपर्याया
॥ ८ ॥ [illegible] पर्याया । उक्तं च-" एगत्तं च पुहत्तं च संखा संठाणमेव च । संजोगो य विभागो य
[illegible] ॥ १ ॥ ' [illegible] पर्यायार्थिक' । सोऽपि षड्विधस्तद्यथा-अनादिनित्यपर्या-
[illegible] ॥ १ ॥ सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्य ॥ २ ॥ सत्तागौणत्वे
[illegible] समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिन ॥ ३ ॥ सत्तासापेक्षस्वभावो

[illegible] । [illegible] अविद्य [illegible] [illegible] । मो [illegible] [illegible] । [illegible] परि [illegible] [illegible] , यदा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] ,

[illegible] सुखविशेषणत्वेन सुखस्य [illegible] धर्मद्वयगोचरो नैगमः प्रथमः। द्वितीयस्योदाहरणमाह—वस्तुपर्यायवद्द्रव्य- [illegible] वस्तुनो धर्मिणो विशेष्यत्वेन प्राधान्यं, पर्यायवदस्य तु धर्मिणो विशेषणत्वेनाप्राधान्यमिति धर्मिद्वयगोचरो नैगमो [illegible]। अथ तृतीयोदाहरणं- क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति, अत्र हि विषयासक्तजीवस्य द्रव्यस्य विशेष्यत्वात् प्राधान्यं, सुखलक्षणस्य पर्यायस्याप्राधान्यं तद्विशेषणत्वादिति धर्मिधर्मावलम्बनो नैगमस्तृतीयः। अथवा निगमो विकल्पस्तत्र [illegible], स त्रिविधः, भूतभविष्यद्वर्तमानभेदात्। अतीतस्य वर्तमानवत्कथनं यत्र स भूतनैगमो यथा तदेवाद्य [illegible] स्वामी मोक्षं गतवान्। भाविनि भूतवदुपचारो यत्र स भविष्यन्नैगमो यथार्हन्त. सिद्धा [illegible] सा वस्तु कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा ओदनः पच्यते। नैगमनयेन धर्मधर्मि- [illegible] प्राधान्येन द्रव्यपर्याययोः सर्वथा भिन्नार्थं ज्ञानद्वारा प्रमाणत्वेन प्रतिपद्यते नान्यदिति।

[illegible] —धर्मद्वयादीनामेकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभास इति। आदिपदेन द्रव्यद्वयद्रव्यपर्या- [illegible] परस्परमत्यन्तं पृथग्भूते इत्यादिरिति। आदिशब्देन वस्तुपर्यायवद्- [illegible] उदाहरणम्। नयोऽयं सर्वथा निगमनस्वरूपार्थां नैगमाभासो ज्ञेय [illegible]।

[illegible] —सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः। मात्रं कार्त्स्न्येऽवधा- [illegible] सेन दर्शिता, अशेषविशेषेषु [illegible] विशेषादीनि गृह्य

तीति संग्रहः । अयमर्थः-स्वजात्यदृष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्ग्रहणं स संग्रह इत्येतस्यार्थः । विशेष-
राशित्वेन पिण्डीभूतसामान्यविशेषवस्तु गुणमनुजन्य ज्ञानविशेषः संग्रहतयाख्यायते । संग्रहोऽपि परापरभेदाद्द्विविधः ।
तत्र परलक्षणमाह-अशेषविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसंग्रहः, यथा विश्वमेकं सदवि-
शेषात्, अत्र हि विश्वमेकत्वं सदिति ज्ञानसामान्यहेतुजनितसत्ताकत्वाभेदरूपेण गृह्यते । परसंग्रहाभासलक्षणमाह-सत्ता-
द्वैतं स्वीकुर्वाणः सकलविशेषान्निराचक्षाणस्तदाभासः । उदाहरणं यथा-सदेव तत्त्वं ततः पृथग्भूतानां विशेषाणामदर्श-
नादिति अद्वैतवादिनां निखिलानि दर्शनानि तदाभासतया ज्ञेयानि । द्वितीयापरसंग्रहलक्षणमाह-द्रव्यत्वादीन्यवान्तरसामा-
न्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानः पुनरपरसंग्रहः, यथा धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं,द्रव्यत्वा-
भेदादिति, अत्र हि द्रव्यत्वसामान्यज्ञानेनाभेदरूपेण षण्णां द्रव्याणामेकत्वं संगृह्यते । धर्मादिविशेषभेदेषु च गजनिमीलिका-
वलम्बनं । एवं चैतन्याचैतन्यपर्यायाणामैक्यं, पर्यायत्वसाधर्म्यात् । चैतन्यं ज्ञान-"चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सक्रियारूप-
मेव च । क्रिया मनोवचःकायैरन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥ १ ॥ तद्विपरीतमचैतन्यं, तयोरैक्यं कथमिति निषेधविवक्षया काम-
ण्डरूपेण द्रव्यत्वेनाभेदबुद्धिविषयत्वात् । तदाभासलक्षणमाह द्रव्यत्व । दिक् प्रतिजानानस्तद्विशेषान्निह्नुवानस्तदाभासो
यथा द्रव्यत्वमेव तत्त्वमिति, ताभि च धर्मादिद्रव्यमित्यपह्नवः । यथा यस्तु वर्तते परं सामान्यविशेषरूपं वर्तत इत्यपह्नुय ।
एवं सामान्यविशेषात्मनो वस्तुनो द्रष्टव्यम् । अथवा संग्रहः सामान्यविशेषाभ्यां द्विधा सामान्यसंग्रहोदाहरणं सर्वाणि-
द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि । विशेषसंग्रहो यथा-सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः । इति संग्रहनयः ।

अथ व्यवहारनयस्य प्ररूपयन्ति–सग्रहेण गृहीताना गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरण येनाभिसधिना क्रियते स व्यवहार इति । एतस्यार्थ –सग्रहगृहीतस्य सत्त्वाद्यर्थस्य विधीयमानो यो ज्ञानविशेषस्तमेव विवेचयति स व्यवहाराभासो नय कथ्यते बुधै । उदाहरण यथा–यत् सत् तद्द्रव्य पर्यायो वेति । अपरसग्रहगृहीतार्थव्यवहारस्याप्युदाहरणमिदमस्त्यस्य, यथा–यद्द्रव्य तज्जीवादिषड्विधमिति । पर्यायो द्वेधा क्रमभावी सहभावी चेति । एव जीवा मुक्ता ससारिणश्च । ये क्रमभाविन पर्यायास्ते क्रियारूपा अक्रियारूपाश्चेति । अथ व्यवहाराभास लक्षयन्ति*य पुनरपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभास , यथा चार्वाकदर्शनमिति । नास्तिको हि जीवद्रव्यादिर्नाभिमन्यते, स्थूलदृष्ट्या च भूतचतुष्टय यावद्दृष्टिगोचरमिति। स्वकल्पितत्वेनातथ्यत्वाद्व्यवहाराभासमिति । अथ कतिपयमन्यतो लिख्यते–भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहार , गुणगुणिनोर्द्रव्यपर्याययो सज्ञासज्ञिनो स्वभावतद्वतो कारकतद्वतो क्रियातद्वतोर्भेदाद्भेद सद्भूतव्यवहार ॥१॥ शुद्धगुणगुणिनो शुद्धपर्यायद्रव्ययोर्भेदकथन शुद्धसद्भूतव्यवहार ॥२॥ सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषय उपचरितसद्भूतव्यवहार , यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणा ॥ ३ ॥ निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहार यथा केवलज्ञानादयो गुणा ॥ ४ ॥ अशुद्धगुणगुणिनोरशुद्धद्रव्यपर्याययोर्भेदकथनमशुद्धसद्भूतव्यवहार ॥ ५ ॥ स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनम् ॥ ६ ॥ विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्त मतिज्ञान मूर्तजनितत्वात् ॥ ७ ॥ उभयासद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवे चाजीवे ज्ञानमिति कथन तयोर्ज्ञानविषयत्वात् ॥ ८ ॥ स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा पुत्रदारादि मम ॥ ९ ॥ विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा

यत्र भूषणहेमरत्नादि मम ॥ १० ॥ तद्वयोरुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देशराज्यकीर्त्यादि मम ॥ ११ ॥ अन्यत्र
प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः ॥ १२ ॥ असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, य उपचारादप्युपचारं करोति
स उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमित्यत्र सश्लेषरहित वस्तु सम्बन्धसहितवस्तुसम्बन्धविषय ॥ १३ ॥
सश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति ॥ १४ ॥ उपचारोऽपि नवधा । तथा
द्रव्ये द्रव्योपचार, १ गुणे गुणोपचार, २ पर्याये पर्यायोपचार, ३ द्रव्ये गुणोपचार, ४ द्रव्ये पर्यायोपचार, ५ गुणे
द्रव्योपचार, ६ गुणे पर्यायोपचार, ७ पर्याये द्रव्योपचारः, ८ पर्याये गुणोपचार, ९ इति नवधाऽप्यसद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्य ।
अत उपचार पृथक्नयो न भवतीति । मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचार प्रवर्त्ततेऽपि सम्बन्धोऽविनाभाव स-
श्लेषसम्बन्ध, परिणामपरिणामिसम्बन्ध श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्ध, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धश्चेति । उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्यादि-सत्यार्थ,
असत्यार्थ, उभयार्थश्चेति । व्यवहारनयस्यार्थो १४ भेदा ज्ञेया, तद्विषयो व्यवहार इति द्रव्यार्थिकस्य तृतीयो भेद ।

इदानीं पर्यायार्थिकस्य चतुर्भेदरूपाया तावदृजुसूत्र निरूपयन्ति-ऋजु वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्र प्राधान्यत सूच
यतीत्यभिप्राय ऋजुसूत्र इति । एतस्यार्थ –भूतभविष्यद्वर्तमानक्षणत्रयविशिष्टरूपचतुष्टयविमुखत्वाद्ऋजु सरलमत्र द्रव्यस्या-
प्राधान्यतया पर्यायाणां क्षणक्षयिणा प्राधान्यतया दर्शयतीति ऋजुसूत्रः । उदाहरणं यथा-सुखविवर्त्त सम्प्रत्यस्तीति, अनेन
प्रतिक्षणं क्षणिक सुखाख्यं पर्यायमात्र मुख्यतया दर्श्यते, तदधिकरण जीवद्रव्य गौणत्वेनापि न प्रतीयत इति । एतद्राजन
निरूपयन्ति नयस्य व्यवस्थायी तदा नाम इति । उदाहरणं यथा तथागतमतमिति । बौद्धो हि क्षणक्षयिण पर्यायानेव प्रधानत

या प्ररूपयति तदाधारभूतानि द्रव्याणि याभिमन्यतेऽतस्तन्मत तदाभासतया ज्ञेयम् । ऋजुसूत्रो द्विधा–सूक्ष्मऋजुसूत्रो यथै-कसमयावस्थायी पर्याय, स्थूलऋजुसूत्रो यथा मनुष्यादिपर्यायास्तदायु प्रमाणकाल तिष्ठन्ति। इति पर्यायार्थिकस्य प्रथमो भेद ।

अथ द्वितीय भेद प्रभेदयन्ति–कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेद प्रतिपद्यमान शब्द इति । एतस्यार्थ –सकेताद्व्याकरणात्प्रकृ-तिप्रत्ययादिना सिद्ध कालकारकलिंगसख्यापुरुषोपसर्गभेदेनार्थं पर्यायमात्र प्रतीयते स शब्दनय । कालभेद उदाह-रणं यथा–बभूव भवति भविष्यति सुमेररिति, अत्र कालत्रयभिन्नेदात्सुमेरोरपि भेदत्व शब्दनयेन प्रतिपाद्यते, द्रव्यत्वेन त्वभेदोऽप्युपेक्ष्यते । कारकभेदे उदाहरण–करोति कुम्भ, क्रियते कुम्भ इति । लिंगभेदे–तटस्तटी तटमिति । सख्याभेदे–दारा कलत्र गृहा । पुरुषभेदे–एहि, मन्ये, रथेन यास्यसि, न हि यास्यति, यातस्ते पिता । अथवा– एहि, मन्ये, ओदन भोक्ष्ये, भुक्त सोऽतिथिभिरिति । एत एव वा, मन्ये, ओदन भोक्ष्येथे भोक्ष्यध्वे भोक्ष्ये भोक्ष्यावहे भोक्ष्यामहे इत्यादि , मन्यसे मन्यध्वे इत्यादिरर्थ " प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च" इति सूत्रेणैव पुरुषव्यवस्था प्रहास एव, यथार्थकथने तु–एहि, त्व मन्यसे, ओदनमह भोक्ष्ये, भुक्त सोऽतिथिभिरिति । उपसर्गभेदे–सतिष्ठते, अवतिष्ठते । कचिदर्थभेदस्यापि सद्भावेऽपि पर्यायादिषु लिंग च , इति " प्रवादानस्थेयाख्ययोश्चेत्यर्थे सूत्रेणात्मनेपदम् । एतदाभास प्रकटयन्ति–तद्भेदेन तस्य तमेव समर्थयमानस्तदाभास इति । कालादिभेदविशिष्टस्य शब्दस्यार्थस्यापि भिन्नत्वमभिमन्यमान शब्दाभास इत्यर्थः । उदाहरण–बभूव भवति भविष्यति सुमेररित्यादयो भिन्नकाला शब्दा भिन्नमेवार्थमभिदधति, भिन्नकालशब्दत्वात्ताहृ क्सिद्धान्यशब्दवदिति, अनेन पार्थक्येन सर्वथार्थभेदस्तु शब्दानाम । इति पर्यायार्थिकस्य द्वितीयभेद ।

अथ तृतीयभेदं समभिरूढं समर्थयन्ति—पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढ इति। एतस्यार्थः शब्दनयो हि शब्दपर्यायभिन्नत्वेऽपि वस्त्वर्थस्याभिन्नत्वमभिमन्यते, समभिरूढस्तु हि शब्दपर्यायभेदे भिन्नमर्थं मभिमन्यते, पर्यायशब्दानामर्थत एकत्वमुपेक्षते इति। उदाहरणं—इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पूर्दारणात्पुरन्दर इत्यादि। अत्र यास्यते इन्द्रे शक्रे च पुरन्दर इत्यादिपर्यायशब्देऽपि व्युत्पत्तिभेदेनैतदर्थस्यापि भेद समाश्रियते, शब्दनयापेक्षया भेद इति फलितार्थः। एवमन्यत्र घटकलशकुम्भादिषु द्रष्टव्य। समभिरूढनयमाह—पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमस्य पर्यायशब्दानाम। उदाहरणं यथा—इन्द्रः, शक्रः, पुरन्दर इत्यादय शब्दा भिन्नाभिधेया एव भिन्नशब्दत्वात्, करिकुरङ्गतुरङ्गतरङ्गशब्दवदित्यादिरिति। अत्र हीन्द्र शक्रे पुरन्दर च पर्यायेऽपि भिन्नशब्दत्वाद्भिन्नवाच्या एते शब्दाः, यथा तुरगतुरङ्गादयो भिन्नवाच्यास्तथैतेऽपि, तत समभिरूढनयतया। इति पर्यायार्थिकस्य तृतीयो भेद।

अथ चतुर्थभेद समाख्याति—शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूत इति। एतस्यार्थ—समभिरूढनय इन्दनादिक्रियाविशिष्टमिन्द्रस्य पिण्डं भवतु वा मा वा भवतु, परमिन्द्रादिव्यपदेशः लोके व्याकरणे च सर्वत्र रूढित्वात् समभिरूढः। तथा च रूढशब्दानां व्युत्पत्ति शोभामात्रम् "व्युत्पत्तिरहिता शब्दा रूढा" इति वचनात्। एवंभूतो हि यस्मिन् समय इन्दनादिक्रियाविशिष्टमर्थं पश्यति तस्मिन् समय एवेन्द्रशब्दवाच्योऽयमिति मनुते न तु तद्रहितकाले इत्यर्थः। एवंभूतमते तु क्रियाशब्द एव। यद्यपि गवाश्वादिषु जातिगुणक्रियासम्बन्धियदृच्छालक्षणा पञ्चतयी शब्दप्रवृत्तिः सा व्यवहारमात्रतोऽवगन्तव्या न निश्चयादित्ययं नय स्वीकुरुते। तथाहि—जातिशब्दा

क्रियाशब्दा एव (यथा) गच्छतीति गौः, आशुगामित्वादश्व गुणशब्दा यथा शुचीभवतीति शुक्लः, नीलभवनान्नील । यदृच्छाशब्दा यथा देव एव देयात्, यज्ञ एव देयात् । संयोगसमवायिशब्दा यथा दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी, विषाणमस्यास्तीति विषाणी अस्तिक्रियाप्रधानत्वादस्त्यर्थे प्रत्ययाश्च । एते सर्वे क्रियाशब्दा एव, अस्ति भू इत्यादिक्रियासामान्यस्य सर्वव्यापित्वात्, उदाहरणं यथा-इन्दनमनुभवन्निन्द्र, शकनक्रियापरिणत शक्र, पूर्दारणप्रवृत्त पुरन्दर इत्युच्यत इति । एतदाभास तद्वन्ति-क्रियाविशिष्ट वस्तु शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपस्तु तदाभास इति । स्वकीयक्रियारहित तद्वस्त्वपि शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपति तच्छब्दवाच्यमिद न भवत्येवंतादृश एवंभूताभास । उदाहरणं यथा-विशिष्टचेष्टाशून्य घटाख्य वस्तु न घट-शब्दवाच्य घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाशून्यत्वात्पटवदित्यादिरिति । अनेन हि वाक्येन स्वक्रियारहितस्य घटादेर्वस्तुनो घटादिशब्दवाच्यताप्रतिषेध क्रियते स च प्रमाणबाधित इत्येवंभूताभासतयोपमितिरिति ।

एतेषु च पुनरर्थनया के पुन शब्दनयास्तद्दर्शयति-एषु चत्वार आद्या नया अर्थनिरूपणाया प्रवीणत्वादर्थनया, अमी-शब्दाद्यास्त्रयो नया शब्दवाच्यार्थगोचरतया शब्दनया इति । के पुनर्नयाभासा इति-" एकेको य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव । अन्नो वि अ आएसो पंचेव सया नयाण तु ॥ १ ॥ " व्याख्या सप्ताना नैगमादिनयानामेकैकस्तेऽतः शतं भेद एव भवति ततः सप्त शतानि भवन्ति, प्रकारान्तरे पंचापि नया कदा ? यदा शब्दादिभिस्त्रिभिर्नयैरेक एव शब्दनयो विवक्ष्यते तदैकैकस्य शतविधत्वात् पंच शतानि नयानाम्, अपिशब्दः पुनरर्थे । षट् चत्वारि द्वे वा नयाना भवन्ति यदा सामान्यग्राहिणो नैगमस्य संग्रहेऽन्तर्भाव, विशेषग्राहिनैगमस्य तु व्यवहारेऽन्तर्भावो यदा विवक्ष्यते तदा मूलनय

सर्वा यदि स्यात् षट् शतानि । कदा चत्वारीति ? यदा एको नैगम , संग्रहव्यवहारऋजुसूत्रलक्षणास्त्रयोऽर्थनया , पञ्चमु शब्दनय , पर्यायास्तिकनय , तदा चत्वारो नया । कदा द्वे इति? एको द्रव्यास्तिक ,पर्यायास्तिकश्चेति द्वे शते तुत्रापि-"णि ग्गुप्प सद्दाणाया मूलिमनया मयाण । निच्छयमाइण्णेहं दवपज्जठिया मुण्ह ॥ १ ॥" इति । उत्कृष्टतोऽसंख्याता अपि नया:-" जावंतो वयणपहा तावंतो वा नयाविसद्दाओ । ते चेवय परसमया सम्मत्त समुदिया सव्वे ॥ १ ॥" व्याख्या–यावन्तो वचनपथा यावन्तो मपृद्दीना मार्गास्तावन्त एव नया परसमयास्तीर्थिकमिश्रान्ता ,य च निरवधारणा स्याद्वादविलाञ्छन नया समुदिता सम्यक्त्व प्रतिपद्यन्ते । न च प्रत्येकावस्थाया मिथ्यात्वहेतुत्वात्समुदिता सत्र महामिथ्यात्वरूप कथं न स्यादिति वाच्यम्, प्रचुरविषलवसमुदाये विषप्राचुर्यवत् । तत्र प्रत्युत्तरयन्नाह–सत्ये समिति सम्म वगमणे नया विरुद्धा वि । भिच्चववहारिणो इव राओ दासागु वसत्ती ॥ १ ॥ ' व्याख्या–परस्परविरुद्धा अपि सर्व नया: समुदिता: सम्यक्त्वं भजन्ति, एकस्य जिनमार्गस्याप्रतिपत्तेरविरोधात् यथा नानाविधाभिप्रायाभृत्यवर्गास्तु, यथा धनधान्यभूम्या दर्थं परस्परं विवदमाना पुण्योऽपि मध्यस्थवचना कनानुगामीनन युक्तिभिर्विवादकारणान्यपनीय मीयन्ते, तथेह नयाविरोधाद्धि नया: स्याद्वादिनां तद्वत् एकत्र मीलयति । तथा प्रचुरविषलवा अपि मीलितमन्त्रवादिना निर्विषी कृताः कुष्ठादिरोगिणां अमृततत्त्वं प्रतिपद्यन्त एवेति सर्वं विशदमत्तकनीयाय स्फुटमेव ।

अथांत्र तु पूर्वं पूर्वो नया: प्रचुरगोचरा:, परः परस्तु परिमितविषय इति बोध्यम् ।

॥ अथ नयोपदेश ॥

[illegible] मदि [illegible] नत्वा [illegible]म् । नयोपदेश शुधिया विनोदाय विधीयत ॥ १ ॥ सत्त्वा[illegible]धुपेतार्थ[illegible] [illegible]ने नय । न [illegible] [illegible] विनाप्य हि मिश्रितम् ॥ २ ॥ यद्यप्येव तथमात्मा वस्तु प्रत्यक्षगोचर । तथापि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]दिवत् ॥ ३ ॥ नानानयमयो व्यक्तो मतभेदो [illegible] । कोऽप्यन्तरविधस्तु प्रस्तुतोत्क [illegible] ॥ ४ ॥ नन [illegible] प्रतीत्यवचन नय । अनाना[illegible] [illegible]वात् [illegible] विधानपि ॥ ५ ॥ सप्तभंग्यात्मकं [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] यथा पर्वैकधर्मगम् ॥ ६ ॥ यथा नैयायिकैरिष्टा चित्रे नैकैकरूपधी । नय [illegible] [illegible] स्याद्वतं ॥ ७ ॥ अत न [illegible] [illegible] च समुच्चय । न विभ्रमो यत्राहत्वादपूर्णत्वाच्च त[illegible] ॥ ८ ॥ न [illegible] वा [illegible] वोच्यते । नाममात्र प्रमाण वा प्रमाणांशतया नय ॥ ९ ॥ स्वार्थे सत्या

[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] आत्मा [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] प्रतिनियतधर्मप्रकारकेणान्यथा [illegible] [illegible] विना [illegible] ॥ २ ॥ वस्तु [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] नानानयवत [illegible] निषेधो निराकरण । [illegible] ॥ ४ ॥ नन [illegible] [illegible] अभि[illegible] [illegible] प्रमाण । [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] अप्रमाण[illegible] ।

[illegible] । [illegible] हि मन्ता ॥ १० ॥ [illegible]स्तु[illegible]
[illegible] । [illegible] ॥ ११ ॥ अत्र [illegible] द्रव्य[illegible] क्रिया । द्रव्यार्थिकमते द्रव्य
[illegible] ॥ १२ ॥ [illegible] । [illegible] द्रव्य [illegible]
॥ १३ ॥ [illegible] हि न तस्या । [illegible] ॥ १४ ॥ अथ
[illegible] । [illegible] ॥ १५ ॥ पर्यायार्थमते द्रव्य पर्याय-
[illegible] । [illegible] ॥ १६ ॥ [illegible]मति । तथैव [illegible]-
[illegible] ॥ १७ ॥ [illegible] मता । [illegible] पर्या

[illegible] ॥ १० । [illegible]
[illegible] ॥ ११ ॥ अत्र [illegible]
[illegible] ॥ १२ ॥
[illegible] ॥ १४ ॥ [illegible]
[illegible]

पदेशः

पार्थगता पर ॥ १८ ॥ नैगम समहर्थेर व्यवहारर्जुसूत्रकौ । शब्द समभिरूढाख्य एवम्भूतश्च सप्त ते ॥ १९ ॥ निगमेषु
नवो बोधो नैगमस्तत्र कीर्तित । तत्रातत्र पुनरासमसिद्धार्थापगन्तृता ॥ २० ॥ तत्रानिविश्च सामान्यविशेषानुनयाश्रया ।
तदन्यतरमन्यास व्यवहारो हि ऽर्पद ॥२१॥ समह सगृहीतस्य पिण्डितस्य च निश्चयः । सगृहीत पर जाति पिण्डित त्वपर
स्मृता ॥ २२ ॥ पराभिन्नित्तु पचरद्भेदा जीवगोचरा । नद्वान्यामस्य सामान्यविशेषान्यासुनीतिता ॥ २३ ॥ उपगा-
रा निशाद्य नैगमव्यवहारयो । इश हनन नप्यन्ते शुवार्थ पक्षपातिना ॥२४॥ उपचारेण नद्गो निरूनार्थश्च मौक्तिक ।
यो बोधो व्यवहाराख्यो नयोऽय दर्शितो बुधै ॥ २५ ॥ दधत गिरिरुद्भागौ याति स्रवति कुण्डिका । पचवर्णादि भृगादौ श्यामत्वादि निनि
श्चयात ॥ २३ ॥ पचवर्णाजिनापेऽपि श्रुतव्युत्पत्तिशालिनाम् । न तद्बोधे विपयताऽपरास व्यावहारिकी ॥ २८ ॥ नानत्व
वतमानत्वव्याप्तिधीरविशेषिता । विस्तृतार्था विशेषस्य प्राधान्यादर्थ मौक्तिक । उत्पादिस्य धारोऽ
गम । क्रियानिष्ठाजिदाधारद्व्याजानाद्यथोच्यते ॥ ३० ॥ पचनाद्व न दहत्यग्निर्नियत न घट क्वचित् । नामयत मन्यति
श्रुतव्युत्पत्तिशालिनाम् । ऋजुसूत्र श्रुत सूत्र शब्दार्थस्तु निशपित ॥ २७ ॥ उच्यतेऽनन नैकत्रावस्थान्तरममा

सूत्र विद्यमानि नैद्धान्तिका मार्दिकानुगामिवस्तु अतीतानागतपरकीयभेदवस्तुपरिहारेण ऋजुसूत्राणि इयम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ निगमेषु ... भवा बोधा
निगम तद्धर्म तन्मध्येऽभिव्यक्त लोकप्रसिद्धार्थस्वीकृतम् ॥ २ ॥ लोकप्रसिद्धि सामान्यविशेषोभययुक्त वर्ग महानां मध्येऽन्यतरस्य मुख्यतो परित्याग ॥ २१ ॥
॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ गिरिस्थतृणदाहफल श्यानि मार्गे गच्छति र रणा कुम्भस्थजलानि ॥ २६ ॥ २७ ॥ अपरीते पञ्चवर्णादि व्यावहारिकी निरस्ता
नास्ति ॥ २८ ॥ २९ ॥ अनेन ऋजुसूत्रनयेन एकत्र धर्मिणि अवस्थान्तरगमागमो भिन्नावस्थानाचकाद्या नयो नेच्छते न स्वीक्रियते कुत । क्रिया माध्यास्या
क्षण च भिन्न शिक्षावस्था न्योया भिन्न भिन्नाध्याये चन्द्राधारमैत्र्यव्यवस्थाभावात् यथार्थऽनियुक्तसंगतिनाद ॥ ३० ॥ ... दृष्टान्तनिमित्तम् ...

[illegible] न सिध्यति ॥ ३१ ॥ दह्यमानेऽपि शाट्येकदेशे स्कन्धोपचारतः । शाटी दग्धेति वचनं ज्ञेयमेतन्नयाश्रयम् ॥ ३२ ॥ [illegible] शब्दः प्रत्युत्पन्नाश्रयो नयः । तत्प्रत्ययनिर्देशाद्विशेषिततमेऽगति ॥ ३३ ॥ ऋजुसूत्राद्विशेषोऽस्य [illegible] । [illegible] लिङ्गभेदादयार्थभेदतः ॥ ३४ ॥ सामानाधिकरण्यं चेन्न विकारापरार्थयोः । भिन्नलिङ्ग [illegible] ॥ ३५ ॥ नयः समभिरूढोऽसौ यः सत्स्वर्थेष्वसंक्रमः । शब्दभेदेऽर्थभेदस्य व्याप्त्यभ्युपगमश्च सः ॥ ३६ ॥ तटस्तटी तटीत्यादौ शब्दभेदोऽर्थभिद्यदि । ननु घटः कुम्भ इत्यादौ कथं नेत्यस्य मार्गणा ॥ ३७ ॥ सक्षार्थतत्त्वं न [illegible] । [illegible] शब्दार्थौ [illegible] तत्र निबन्धनम् ॥ ३८ ॥ एवम्भूतस्तु सर्वत्र व्यञ्जनार्थविशेषणः । [illegible] राजा नान्यदा [illegible] ॥ ३९ ॥ सिध्यो न तन्मते जीव मोक्षः सत्त्वादिसङ्गपि । महाभाष्ये

[illegible] कालादिना दहनादिक्रिया [illegible] न दह्यतीति [illegible] व्यवहारोऽप्यत्र दृश्यते अपटो भिद्यते संयतः प्रव्रजति सिद्धः सिध्यतीत्येवमाकार एव द्रष्टव्यः । अत एव [illegible] क्रियमाणत्वं भजनीयमिति सिद्धान्तः संगच्छते । तदाह भाष्यकारः –" [illegible] नियमेण यत्र यत्र तु [illegible] ॥ ३१ ॥ शाटी दग्धेति कथं [illegible] शाटीदाहक्रिया [illegible] तद्विषयत्वाभावा [illegible] शाटीस्कन्धवाचकशाटीपदोपचाराच्छाटी दग्धेति वचनमेतन्नयाश्रयमृजुसूत्राभिप्रायकं ज्ञेयम् ॥ ३२ ॥ [illegible] नयः [illegible] । अत्र [illegible] विशेषतः [illegible] समभिरूढ एवम्भूते [illegible] ॥ ३३ ॥ अन्य [illegible] प्रसिद्ध [illegible] पेक्षते ॥ ३४ ॥ विकाराविकारार्थशब्दयोः [illegible] भिन्न [illegible] न कथंचि[illegible] ॥ ३५ ॥ य [illegible] पर्याय[illegible] शब्दवाच्यत्व[illegible] समभिरूढः ॥ ३६ ॥ [illegible] ॥ ३८ ॥ व्यञ्जनं [illegible] एवम्भूतः ॥ ३९ ॥ जीवति प्राणान् बिभर्तीति धात्वर्थ ॥ ४० ॥

च तत्त्वार्थभाष्ये धात्वर्थमाथत ॥ ४० ॥ जीवोऽजीवश्च नो जीवो नोअजीव इतीरित । जीव पञ्चापि गतिविटो नार्थेर्हि पत्रजि ॥ ४१ ॥ नञि सर्वनिषधार्थं पर्युदाग च मश्रिते । पुरुषमृतिव्यमजीव इति गद्यिम् ॥ ४२ ॥ नोजीव इति नोशब्द जीवसर्वनिषधके । देशप्रदेशो जीवस्य तस्मिन् देशनिषेधक ॥ ४३ ॥ जीवो वा जीवदेशो वा प्रदेशो वाप्यजीवग । अनर्थेन दिशा ज्ञयो नोअजीवपदादपि ॥ ४४ ॥ नैगमो देशग्राही व्यवहारर्जुसूत्रको । शब्द समभिरूढ श्चैवमेव प्रजाप्त ॥ ४५ ॥ ज्ञानमौदयिक शुद्धनयतो जनस्थितम् । जीवं प्रवत्त्यजीव तु सिद्धं वा पुद्गलादिकम् ॥ ४६ ॥ नोअजीवश्च नोजीवो न जीवाजीवयो पृथक् । देशप्रदेशौ नास्यष्टाविति निस्तृतमाकर ॥ ४७ ॥ सिद्धो निश्चयतो जीव ज्युष यद्दिगम्बर । निराकृत तदेतन यत्नयेऽन्यत्वऽन्यथा प्रथा ॥ ४८ ॥ आत्मत्वमव जीवत्वमित्यय सम्प्रद । जीवत्व प्रतिज्ञ सिव साधारण्य निरस्य न ॥ ४९ ॥ यजीवत्वं क्वचिद्द्रव्यज्ञानप्राणान्वयात् स्मृतम् । विचित्रनैगमादूत तद्दाय न

जीव प्रकार नोजीव नोअजीव एतो द्र [illegible] आदयिकगाथिकपारिणामिकसाधिपामिकवालिणमिक [illegible] धर्मिण [illegible] जीव ॥ ४१ ॥ नमि [illegible] अजीव पुद्गलादि द्रव्यम् ॥ ४२ ॥ नाजीव इत्यत्र तु नोशब्दे देशनिषधके जीवस्य [illegible] अजीव पृथ्वी ॥ ४३ ॥ नोअजीवो नोशब्द [illegible] देशनिषधके [illegible] अजीव अजीवत्वि वा अजीवत्वि [illegible] व्याख्याती जीवस्य पृथक् वा सम्भाव्यते नोशब्द [illegible] अर्थ [illegible] निषधके जीवस्य [illegible] जीव एव कथ्यते तृतीय । एव नोअजी वस्त्रस्त्या वा अजीवस्त्या वा अजीवप्रदेशो वा इति ॥ ४४ ॥ अत्र भावार्थ —जीव अजीव पुद्गलादि द्रव्यं नोजीवोऽजीवो जीवस्य [illegible] वा नाअजीवा [illegible] जीवेन अजीवप्रदेशो ॥ ४५ ॥ नाजीवो नोअजीवश्चेत्यये एवंभूत जीवाजीवयोरपृथग् । सर्वेन पाथक्यमास्यत यताम्य [illegible] जीव प्रवृत्ति सिद्ध पुद्गलादि पन्न [illegible] ॥ ४७ ॥ इत्यतन पूर्वोक्त सिद्धो निश्चयतो जीव इति यद्दिगम्बरैर्क्त तन्निराकृत यस्मादत्र एवंभूतनयेऽन्यथा प्रथा सिद्धाऽजीव इति प्रति उदनिश्चय गण्यति ॥ ४८ ॥ आत्मत्वमव जीवत्वं निश्चयात् साधारण्यम् ॥ ४९ ॥ एव निश्चयन सिद्धस्याजीवत्व प्रोक्त तर्हि सर्व- जीवा [illegible]

...[illegible] ॥ ५० ॥ धात्वथं [illegible] परोक्ष न च युक्तिमत् । प्रसिद्धाग्रपरोधेन धनयान्तरमार्गणा ॥ ५१ ॥ [illegible] यथा [illegible] । चान्यं नेत्यपि यत्तन पञ्चे चिन्तेह धातुगा ॥ ५२ ॥ उक्ता नयार्थास्तेषा ये [illegible] गुणी । [illegible] निदर्शनात् ॥ ५३ ॥ तत्रादि-धर्माधर्माकाशजीवस्कन्धाना नैगमो [illegible] ॥ ५४ ॥ दासेन मे खर क्रीतो दासो मम खरोऽपि मे । इति स्वदेशस्वाले [illegible] ॥५५॥ व्यवहारस्तु पंचाना साधारण्य न चित्तवत् । इति पचविधो वाच्य प्रदेश इति मन्यते॥५६॥ [illegible] स्यात्कं हन्त्रि [illegible]नाम्॥५७॥ प्रत्येकवृत्ति साकाङ्क्षा [illegible] इति [illegible] प्रदेशा [illegible] ॥ ५८ ॥ [illegible] तत् । धर्म धर्म प्रदेशो

[illegible] नर्गादिद्वारा [illegible] तद्वारा [illegible] युक्तिमत् ॥ १ ॥ यथा [illegible] न वाच्य । [illegible] ॥ ५३ ॥ नैगमो नया धर्मादि [illegible] ॥ ५५ ॥ व्यवहारनयस्तु [illegible] पचाना [illegible] साधारण [illegible] वाच्यम् ॥ ६ ॥ पचप्रकार पर्वाश्च प्रदेश [illegible] ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ व्यवहारेन [illegible] धर्मे धर्मास्तिकाये [illegible]

[illegible] ॥ ५९ ॥ जीवे स्कन्धेऽप्यनन्ते नोशब्दादेशावधारणम् । इति शब्दनय प्राह समामत्यशुद्धिमान् ॥ ६० ॥ [illegible] नदामरत्र गतमीम् । [illegible]निमुक्तमेवजनस्य वस्तु सत् ॥ ६१ ॥ प्रस्थकार्थं [illegible]मीति [illegible] यन् । आदिमो [illegible]रोऽमी नैगमव्यवहारयो ॥ ६२ ॥ अत्र प्रस्थकशब्देन क्रियाविष्टनैकधी । [illegible]मीति [illegible]रोऽपि च स्फुट ॥ ६३ ॥ [illegible] प्रस्थक [illegible] करोमि चेति तद [illegible] ॥ ६४ ॥ [illegible]नामानमाहतु । चित मित तत्रा मेयारूढमेवाह सग्रह ॥ ६५ ॥ [illegible] मानं मयमिति त्र्यम् । न [illegible] सोऽतिरिच्यते ॥ ६६ ॥ लोके च तिर्यग्लोके च जनू [illegible] ॥ ६७ ॥ गृहे च वसति कोऽपि नैगमव्यवहारयो । अतिशुद्धौ तु [illegible] ॥ ६८ ॥ [illegible] तस्य वृत्तिता । वसत्यत्र न सोऽत्रेति व्यवहारोचिती

[illegible] ॥ जीवे जीव इति वा प्रश्नो नोजीव [illegible] इति वा प्रश्नो [illegible] घटे [illegible] । एवभूत [illegible] ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ [illegible] धाय [illegible] इति । [illegible] ॥ ६६ ॥ [illegible]

तता ॥ ६८ ॥ यत्र तत्र गतस्यापि तद्वासित्व निगद्यते । तद्वासवृत्तिज्ञागित्वे ज्ञेय तत्त्वौपचारिकम् ॥ ७० ॥ समद्रो वसति मूर्त अतो गंसारवोपरि । ऋजुसूत्र प्रदेशेषु स्वावगाहनकृत्सु खे ॥ ७१ ॥ तेष्वप्यभीष्टसमये न पुन समयान्तरे । चलो- दरवलये तदन्यत्र गाहनात् ॥ ७२ ॥ स्वस्मिन् स्ववसति प्राहुस्त्रय शब्दनया पुन । एषानुयोगद्वारेषु दृष्टान्तमययो- ज्ञा ॥ ७३ ॥ शुद्धा एतेषु सूक्ष्मार्थो अशुद्धा स्थूलगोचरा । फलत शुद्धता त्वाद्व्यवहारे न निश्चये ॥ ७४ ॥ क्रियाक्रि- यारवांचित्यं गुरा शिष्यश्च यत्र न । देशनानिश्चयस्यास्य पुना मिथ्यात्वकारणम् ॥ ७५ ॥ परिणामे नया सूक्ष्मा हिता नापरिणामके । न पातिपरिणामे च चमिणो भोजन यथा ॥ ७६ ॥ आमे घटे यथा न्यस्त जल स्वघटनाशकृत् । तथाऽ- परिणते शिष्ये रहस्य रसगोचरम् ॥ ७७ ॥ पृथक्त्वे नाधिकारस्तन्नयाना कालिकश्रुते । अधिकारस्त्रिभि प्रायो नयैर्व्युत्प- त्तिमिच्छताम् ॥ ७८ ॥ तेनादौ निश्चयोद्ग्राहो नग्नानामपद्दलित । रसायनी कृतविषप्रायोऽसौ न जगद्धित ॥ ७९ ॥ उन्मा-

तेषु स्वावगाहकाकाशप्रदेशेष्वपि अभीष्टसमये विवक्षितवर्तमानकाले वसतिर्न पुन ... ॥ ७२ ॥ त्रय शब्दनया शब्दसमभिरूढैवंभूताख्या ... स्वस्मिन्नेव तस्याघटनात् ॥ ७३ ॥ एतेषु नयेषु ये यत सूक्ष्मार्थास्ते तत ... ॥ ७४ ॥ तथाहि–क्रियाक्रियाप्रयोरौचित्यमित्यादि यत्र निश्चयनये ... दाता नहि भोक्ता नहि निष्फल सर्वह संयोग ॥ १ ॥ ७५ ॥ परिणाम ... तथापरिणामक ... पुरुष न हिता ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ तत्तस्मात्कार ... सूक्ष्मनयानां च बहूनामुपकारकत्वात्कालिकश्रुते पृथक् अनुयोगचतुष्टयपृथक्करणे सति नयानां ... शिष्याणां हि ता प्राप्नोति प्रामाधिकार इति ॥ ७८ ॥ ते ... निश्चया न जगद्धित यथा रसायनीकृतविष सर्वेषां न हि हिताय ॥ ७९ ॥ पर

गंकारणं पाप परस्यां हि देशना । यत्सादेर्नान्ययोग्यं च पणो नेश्वराद्भिम् ॥ ७० ॥ ये मीदन्ति क्रियान्यागे ज्ञानमा-
त्राभिमानिनः । निश्चयानिश्चयं नैते जानन्तीति श्रुत स्मृतम् ॥ ७१ ॥ उक्तः शब्दनयैर्नामो निक्षेपा त्रिविधा परैः ।
मत भगवद्वादेऽन्यज्ञितां द्रव्यार्थिके नये ॥ ७२ ॥ द्रव्यार्थं गुणवज्जीव पर्यायार्थं च तद्गुणः । सामायिकमिति प्रोक्तं यद्वि-
शायस्यपादितु ॥ ७३ ॥ पटोपयोगरूपो वा भावो द्रव्यार्थिकऽमतः । तत तत्र मतं भाव मिति चाभिमतं नयम् ॥ ७४ ॥
तत्र नामपटः प्रोक्तो परनामा पटादिक । तच्चित्रं स्थापनारूपं मृत्प्रायो रचिमादिक ॥ ७५ ॥ [illegible]
तिवारणयावता । पुरस्कृत्य महाभाष्ये दिष्टा पण्डितराज ते ॥ ७६ ॥ अप्रधान्यानिमाकरणी द्रव्योपयोगत । न

[illegible] निमित्ते हि निमित्त [illegible] ॥ ८० ॥
॥ ८१ ॥ अथ निक्षेपविभाग [illegible] द्रव्यार्थिकेन निक्षिप्यमाणोऽपि [illegible]
[illegible] द्रव्यार्थिके [illegible] पुरस्कृत [illegible] ॥ ८२ ॥ [illegible]
द्रव्यार्थिकनये गुणवान् जीव सामायिके पर्यायार्थिकनये च जीवस्य गुण सामायिकमिति प्रोक्तं [illegible] ॥ ८३ ॥ इति [illegible]
[illegible] पटोपयोगरूपो भावो द्रव्यार्थिकेऽप्रतोऽनिरस्तेन तत्र [illegible] द्रव्यार्थिके [illegible] नामादिनिक्षेपत्रयं प्रोक्तं न तु [illegible]
[illegible] द्रव्यार्थिकैरभ्युपगमाविति वयं जानीमहे । तथा च भाष्य [illegible]
[illegible] पटोपयोग [illegible] अयं तु [illegible] न विरोध ॥ ८४ ॥ [illegible]
[illegible] पटादिकोऽपि [illegible] ॥ ८५ ॥ [illegible] नाम [illegible]
[illegible] पुरस्कृत्य [illegible] महाभाष्ये [illegible]
[illegible] ॥ ८६ ॥ एतेषां नामादीनां निक्षेपाणामप्राधान्ये [illegible] द्रव्यार्थिक [illegible]

म्याधिक्यमंतेषां तत्तद्भेदनिवेदनात् ॥ ८३ ॥ इतीय प्रायिकी व्याप्तिरजियुक्तैर्निरूप्यते । यत्तत्पदाभ्यां व्याप्तिश्चानुयोगद्वारनिश्चिता ॥ ८८ ॥ आदिष्टजीवद्रव्यान्या द्रव्यन्यासस्य संभवम् । अप्रज्ञाप्ये जिनप्रज्ञानाम्नश्च ब्रुवते परे ॥ ८९ ॥ तच्चिन्त्यगुणदोषो यत्नाम द्रव्यार्थिकस्य न । नरादेर्द्रव्यजीवत्वे सिद्धे स्याद्भावजीवता ॥ ९० ॥ आदिष्टद्रव्यहेतुत्वाद्द्रव्यद्रव्यप्रतिश्रुतौ । भावद्रव्य न किंचित् स्याद्गुणेऽपि द्रव्यतार्पणात् ॥ ९१ ॥ अन्ये तु द्रव्यजीवो धीसन्न्यस्तगुणपर्यय । तदसन्नधिया तेषां मन्यातः स्यान्मतां यत ॥ ९२ ॥ संग्रहे स्थापना नेष्टा तस्या नाम्नैव संग्रहात् । किं नेन्द्रचित्र नामेन्द्र इन्द्रनामक पिण्डवत् ॥ ९३ ॥ नामातिरिक्तो नामेन्द्रो ह्यस्य इन्द्रपदस्य हि । तस्य मुख्यार्थसादृश्यवैसादृश्ये च नामद ॥ ९४ ॥ इद मेधिन्मतं तत्र प्राप्ये दूषितमुच्यकैः । नाम्नैव द्रव्यनिक्षेपेऽप्येव संग्रहसंभवात् ॥ ९५ ॥ परिणामितया द्रव्य वाचकत्वेन नाम च । नारम्यमिति भेदश्चेन्नाम्नेन्द्रे द्वयं ह्यद ॥ ९६ ॥ परिणामित्वजिन्नश्चेन्नामनिक्षेपलक्षक । सवन्ध इष्ट साम्या

[illegible], न साम्यम् ॥ ८७ ॥ कुत प्रायिकी अभियुक्तै पण्डितैर्निरूप्यते, व्याप्तिश्च यत्तत्पदाभ्यामनुयोगद्वारसूत्रादेव निश्चिता जत्थय [illegible] । [illegible] चउक्कय निक्खिवे तत्थ॥१॥इति तत्पाठादिति श्लोकद्वय यद्येकस्मिन्न संभवति नैतावति भवत्यव्याप्तिता ॥ ८८ ॥ [illegible] वस्तुनि जिनप्रज्ञाप्यनामनिक्षेपस्य संभव ब्रुवते तत्र केवलिप्रज्ञैव नामतयैव तत्कार्यकरणात् आदिष्टद्रव्यत्वानां घटादिपर्यायाणां हेतु [illegible] ॥ ८९ ॥ [illegible] उपयोगे नाम न भवति ॥ ९० ॥ आदिष्टद्रव्यहेतुत्वाद्देनोर्द्रव्यद्रव्यस्य प्रतिश्रुतौ स्वीकारे च भावद्रव्य किमपि न [illegible] ॥ ९१ ॥ [illegible] धिया बुद्ध्या संन्यस्ता गुणपर्याया यस्य स तथा गुणपर्यायवियुक्त प्रज्ञास्थापित तदसत्, यत गता तेषां गुणपर्यायाणां धिया [illegible] द्रव्यार्थिकनया इति व्यवस्थापितम् ॥ ९२ ॥ संग्रहनये स्थापना नेष्टा स्थापनाया नाम [illegible] किं नामेन्द्रो न भवति ? अपि तु भवत्येव ॥ ९३ ॥ [illegible] वा भिन्ने नामद कृत्य ॥ ९४ ॥ इद मत [illegible] नाम च वाचकत्वेन वाच्यवाचकभावेन भेदं धत्त् अन्ये नियामक नामेन्द्र गोपालदारके द्वयम् ॥९६॥ नाम

निजिनः किं न तत्रेष्यत ॥ ९७ ॥ अतिप्रसङ्गो नैवं चानिमायाकारयोगतः । यद्वस्तोपमनुल्लंघ्य स्थापना नाम चान्यतः ॥ ९८ ॥ अत एव न धीरर्हत्प्रतिमायामिवार्हति । नामगाधोः स्थापना या द्व्यक्षिणिति कीर्तिता ॥ ९९ ॥ सा हि स्थाप्यस्मृतिद्वारा ज्ञानादरविधायिनी । न चोत्कटतर दोष स्थाप्यस्थापकनाशना ॥ १०० ॥ यथा प्रतिष्ठाविधिना स्थात्मन्येव परात्मनः ॥ स्थापना स्यात् समापत्तिर्विव मा चोपचारतः ॥ १०१ ॥ प्रतिष्ठितप्रत्यनिज्ञागमापन्नपरात्मनः । आह्वायारोपतः स्थाप्य कृष्णामपि धर्मजः ॥ १०२ ॥ तत्कारणं ध्यानश्रानगोचरयोधकाः । विधयोऽप्युपयुज्यन्त तनेदं कुर्मत कृतम् ॥ १०३ ॥ प्रतिष्ठापनपक्षायां शाश्वतप्रतिमार्चने । अशाश्वतार्चापूजाया को विधिः किं निरूपनम् ॥ १०४ ॥ पूजादिनि

निक्षेपकृत परिणमितविम एव इत्थमस्तु स्थापनाया अपि स्थाप्यादिभिन्न संबन्ध ॥ ९७ ॥ एवमुपाधिकरणभेदेन चानिप्रसंगो न भवति यद्वस्तूनोक्त सिद्धान्त स्थापनपुरुषाकारी एवाभिप्रायकगत्वं प्रतिमानां चाकारवैधर्म्य पुरस्कृत्य स्थापनादिषयवत्यतो यस्यके च नामनिक्षेप इति ॥ ९८ ॥ अत एवाहत्प्रतिमायामहतो धीरिव इत्यादिति ग्रन्थप्रतिरोधितं मा इत्यादौ स्थापना भावगर्भार्थी सिद्धान्ते न कीर्तिता ॥ ९९ ॥ सा स्थापनाधी ॥ १०० ॥ यत पक्षान्तरे प्रतिष्ठाविधिना दृष्टम्यथापि स्थाप्यमेव परात्मनः परमत्रिभुवनगुरोर्नवत्या समापत्तिरेव स्थापना स्यात् निर्वचन मा प्रतिष्ठा विव चोपचारेन ॥ १०१ ॥ स्थापना प्रतिष्ठित प्रतिष्ठा समाप्तो न अध्यात्म भगवदाह्वानाद्यारोपतो वृद्धगुरुपूज्यस्थानी पूजकानां च धर्मोत्कर्षकारणं भवति ॥ १०२ ॥ तत्र्याह्वानारोपस्य कारण या इत्या नमस्क प्रतिष्ठितप्रतिमाभगवदवन्दनाद्यारोपयेविति विधिजनितं ज्ञानं तदोपतीभूता प्रतिष्ठाया बोधक इत्याध्यात्मबोधनादिरूपा तदुत्पत्तिहेतव इति यावत् विधयो विधिकल्पाव्यपुरुष न तत्कृतो भवति तनेदं वक्ष्यमाणं दुर्गमाप्यामिधमानानां इदं निरूपणम् ॥ १०३ ॥ किं तद्वित्याह चाश्वत इति स्पष्ट प्रतिष्ठितप्र तिमा पूजनीया किं प्रतिष्ठिता न पूजनीया निश्चयं च किं विधिनिश्चयाया व्यवस्थापोयलादिति ॥ १०४ ॥ कथं निरस्तं तस्मादनुपूर्वाणिविनय प्रतिष्ठिता प्रतिमा पूजनीयस्मृत्या इत्यादि प्रतिष्ठिता प्रतिमा भगवदभिमानेनाध्यारोपैर्भावाकर्षणमध्यात्मिन्न प्रमानसमाधिना शाश्वताशाश्वतासु विशेषेन निक्षेपेण वर्तीषक विधिविषयनिर्णयं अन्यत्रप्रतिमासु तु अन्यत्र सनादिप्रतिष्ठितस्यप्रत्यभिज्ञाया एव गमानं तात्पर्यकारेण तथैव निर्विशेषनादिति

पयो ह्यनविच्छिन्न यदाश्रिता । शाश्वताशाश्वतार्चासु विभेदेन व्यवस्थिता ॥ १०५ ॥ एतेन व्यवहारेऽपि स्थापनाना-
मग्रो हत । तत्रार्धजरतीय किं नाम्नापि व्यवहर्तरि ॥ १०६ ॥ ऋजुसूत्रेऽपि ये द्रव्यनिक्षेप प्रवदन्ति न । व्याख्येया ते
कथं तत्र द्रव्यावश्यकसूत्रगी ॥ १०७ ॥ तस्माद्यथोक्तनिक्षेपविभागो भाष्यसमत । इतीय मुहुरालोच्या निक्षेपनययो-
जना ॥ १०८ ॥ जात द्रव्यास्तिकाशुद्धादर्शन ब्रह्मवादिनाम् । तत्रैके शब्दसन्मात्र चित्सन्मात्र परे जगु ॥ १०९ ॥ अशु-
द्धव्यवहाराख्यात्ततोऽजनि साङ्ख्यदर्शनम् । चेतनाचेतनद्रव्यानन्तपर्यायदर्शकम् ॥ ११० ॥ यद्यप्येतन्मतेऽप्यात्मा निर्लेपो
निर्गुणो विभु । अध्यासाद्व्यवहारश्च ब्रह्मवादेऽपि समतः ॥ १११ ॥ प्रत्युतात्मनि कर्तृत्व साङ्ख्याना प्रातिभासिकम् ।
वेदान्तिना त्वनिर्वाच्य मत तद्व्यावहारिकम् ॥ ११२ ॥ अनुत्पन्नत्वपक्षश्च निर्युक्तौ नैगमे श्रुतः । नेति वेदान्तिसाङ्ख्योक्त्यो
समद्व्यवहारता ॥ ११३ ॥ तथाप्युपनिषद्दृष्टि दृष्टिवादात्मिका परा । तस्या स्वप्नोपमे विश्वे व्यवहारलवोऽपि न ॥११४॥
साङ्ख्यनाशे च तन्मात्रव्यवस्था व्यवहारकृत् । इत्येतावत्पुरस्कृत्य विवेक समतावयम् ॥११५॥ हेतुर्मतस्य कस्यापि शुद्धोऽ
शुद्धो न नैगम । अन्तर्भावो यतस्तस्य सग्रहव्यवहारयो ॥ ११६ ॥ द्वाभ्या नयाभ्यामुन्नीतमपि शास्त्र कणाशिना ।

॥ १०५ ॥ एतेन युक्तिदर्शनेन संग्रहे स्थापनाव्यवस्थापनेन व्यवहारेऽपि स्थापनाया अनाग्रहोऽस्वीकारो हतो निरस्त केषांचिदाचार्याणां यतस्तत्र व्यवहारे नाम्नापि नामनिक्षेपमपि व्यवहर्तरि व्यवहारमभ्युपगच्छति किमिदमर्धजरतीय यदुपनया (यदुपमया) न व्यवहार इति, न हि प्रतिमायां नैद्रव्यवहारो भवति ॥ १०६ ॥ ऋजुसूत्रेऽपि ये द्रव्यनिक्षेप न स्वीकुर्वते तान् दूषयति–अनुपयोग द्रव्यमिति तत्र तैर्द्रव्यावश्यकसूत्री कथ व्याख्येया ॥ १०७ ॥१०८॥ एके ब्रह्मवादिन शब्दसन्मात्रमिति परे चित्सन्मात्रमिच्छन्ति ॥ १०९ ॥ व्यवहाराख्यादशुद्धात् ततो द्रव्यार्थिकनयात् साङ्ख्यदर्शनमभूत् कीदृश तत् ? चेतनाचेतनद्रव्याणामनन्तपर्यायाणां विशेषीभावाभावप्रकारेणा सर्वं प्रतिपादयमिति ॥ ११० ॥ एतन्मते साङ्ख्यमते आत्मा कर्तृत्वादिलेपरहितो गुणस्पर्शशून्यः ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ तथाप्युपनिषद्वेदान्तिनैकत्वमिति ॥ ११४ ॥ नाशाऽभिप्रायेऽत्र ज्ञेयम ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ द्वाभ्यां नामा-पविचारप्राधिभ्यां संग्रहव्यवहाराभ्यां नयाभ्याम् ॥ ११७ ॥

अन्योन्यनिरपेक्षास्तु मिथ्यात्वं समवाप्नुयुः ॥ ११७ ॥ सर्वत्रव्यक्तिसामान्यग्रहो येऽत्र तु नैगमे । औलूक्यमतयोत्पत्ति [illegible] ॥ ११८ ॥ ऋजुसूत्रादितः सौत्रान्तिकवैनाशिकौ क्रमात् । अन्वरन् सौगता योगाचारमाध्यमिकावपि ॥ ११९ ॥ नयस्तोऽत्र शब्दाद्वैतवादिभिश्च विस्तरः । क्रियान् साध्वी समन्तुष्यमत्या हाविदितात्मया ॥१२०॥ [illegible] । इत्येतदुत्य नदिदं दर्शने नययोजना ॥ १२१ ॥ नास्ति नित्यो न नो कर्ता न भोक्ता न निर्वृतिः । तदुपायश्च नयाः षण्मिथ्यात्वस्थानकानि षट् ॥ १२२ ॥ एतद्विपरीतानि सम्यक्त्वस्थानकान्यपि । [illegible] ॥ १२३ ॥ [illegible] मतेऽपि [illegible] नरा । मिथ्यात्वमिति को [illegible] ॥ १२४ ॥ [illegible] प्रकीर्तित । धर्मांशो नास्तिका ज्ञेया सर्वेऽपि

[illegible] अभूवन् । अत्र वाक्यम् । [illegible]

[illegible] ॥ १२१ ॥ [illegible]

[illegible] ॥११९॥

[illegible]तीर्थिका ॥ १२५ ॥ इथमेव क्रियावादे सम्यक्त्वोक्तिर्न दुष्यति । मिथ्यात्वोक्तिस्तथाज्ञानाक्रियाविनयवादिषु ॥ १२६ ॥ क्रियायां पक्षपातो हि पुंसो मार्गाभिमुख्यकृत् । अन्त्यपुद्गलावर्त्तत्वादन्येऽन्यस्तस्य मुख्यता ॥ १२७ ॥ क्रियानय क्रिया [illegible] ज्ञाननया पुनः । मोक्षस्य कारणं तत्र जयस्तो युक्त्योर्द्वयो ॥ १२८ ॥ विज्ञप्ति फलदा पुंसां न क्रिया फलदा [illegible] । मिथ्याज्ञानप्रवृत्तस्य फलासंवाददर्शनात् ॥ १२९ ॥ क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतम् । यत स्त्रीभक्ष्य-[illegible] न ज्ञानात्सुखितो भवेत् ॥ १३० ॥ ज्ञानमेव शिवस्याध्वा मिथ्यासंस्कारनाशनात् । क्रियामात्रं त्वभव्यानामपि नो [illegible] भवेत् ॥ १३१ ॥ तद्गुरुस्य यथा धर्मं यथा तापस्य कालिका । नश्यति क्रियया मुक्त पुरुषस्य तथा मल ॥ १३२ ॥ [illegible] तपस्वी च गुरुश्चाप्यकृतसमयः । मत्पा स्त्री सती चेति राजन्न श्रद्दधाम्यहम् ॥ १३३ ॥ ज्ञानवान् शीलहीनश्च [illegible] घनसमरी । गुरुमान् भाग्यहीनश्च राजन्न श्रद्दधाम्यहम् ॥ १३४ ॥ इति युक्तिशताभ्याहुरनयोस्तुल्यक-[illegible] । [illegible]वादे क्रियायुग्ज्ञानमिष्टकृत् ॥ १३५ ॥ ज्ञानं तुर्ये गुणस्थाने क्षायोपशमिकं भवेत् । [illegible] पञ्चे षड्गुणस्थानकेऽनयमम् ॥ १३६ ॥ प्राय मेव नव सर्वगतिषु ज्ञानदर्शने । तत्प्रमादो न कर्तव्यो ज्ञाने [illegible]दर्शने ॥ १३७ ॥ क्षायिकं केवलज्ञानमपि मुक्तिं ददाति न । यावन्नाभिर्जरेयाशैलेश्या शुक्लमयम् ॥ १३८ ॥ व्यव-

[illegible] धर्मात्मन्न शरीरप्रमाणत्वनानात्वादीनामझे नास्तित्वाश्च सर्वेऽपि नैयायिकवैशेषिकवेदान्तिसांख्यपात[illegible] ॥१२५-१२६॥ क्रियायां पक्षपात [illegible] आ ... हि पुंसो मार्गानुसारिता । तदुक्तं दशाचूर्णौ— जो अकिरियावाइ [illegible] सो किरियावाइ से नियमा भविओ नियमा सुक्कपक्खिओ अंतो पुग्गलपरियट्टस्स सिज्झइ इत्यादि । अक्रियावादं [illegible] । अत्र च क्रियावादिनां नियमपक्षिपलयतयेन इति ॥१२७॥

हार कांठानर्भयमा मुणिद्भवः । एका नम्भंगुरतु मवनो मोदकारणम् ॥ १३९ ॥ संमदस्तु नय प्राद् जीयो मुणः नन्न गिरः । अलतासिद्रमर्कम्यन्यायात् किना पुन ॥ १४० ॥ अनन्तमानिनं ज्ञानं त्यक्ताथानन्तविभ्रमाः । न पित्रं कस्वनाम्मा हीनोऽत्र धियाऽपि वा ॥ १४१ ॥ पारतोऽपि नना मर्व स्युर्नाव कृतविभ्रमा । चारित्रगुणहीन स्यादिति गजनाधिकः ॥ १४२ ॥

गनिगुणमणिगम्ये मन्दरीभूतवर्णं प्रवचनवचनं न क्वापि हीन नयोंशे ।
गुणवागृहानो वोऽवंमन् पर द रविगलदनि लिप्साम्य गुरीन या श्री ॥ १४३ ॥
मन धीविजयादिगणगुरोः प्रभु गुणाना मनौ प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयाख्या परामैयरः ।
स्याद्गीर्वंतनां नयादिविजयप्रज्ञासमानां न्युमन्तं विविदिम यशोविजय ज्ञानसिन्धुदामतयाप् ॥ १४४ ॥

॥ इति नयोपदेशप्रकरणम् ॥

॥ अथ जैनतर्कपरिभाषा प्रारभ्यते ॥

ऐन्द्रवृन्दनतं नत्वा जिनं तत्त्वार्थदेशिनम् । प्रमाणनयनिक्षेपैस्तर्कभाषां तनोम्यहम् ॥ १ ॥

तत्र स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् । स्वम् आत्मा ज्ञानस्यैव स्वरूपमित्यर्थः । परस्तस्मादन्योऽर्थ इति यावत् । तौ व्यवस्यति यथास्थिततया निश्चिनोतीत्येवंशीलं स्वपरव्यवसायि । अत्र दर्शनेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानपदम् । संशयविपर्ययानध्यवसायेषु तद्वारणाय व्यवसायिपदम् । परोक्षबुद्ध्यादिवादिनां मीमांसकादीनां बाह्यार्थापलापिनां ज्ञानाद्वैतवादिनां च मतनिरासाय स्वपरेति स्वरूपविशेषणार्थमुक्तम् । ननु यथार्थं सम्यग्ज्ञानमेव प्रमाणमिष्यते तदा किमन्यत्तत्पूर्वं वाच्यमिति चेत्सत्यं स्वार्थव्यवसितेरेव तत्त्वत्वात् । नन्वेवं प्रमाणे स्वपरव्यवसायित्वं न स्यात्, प्रमाणस्य परव्यवसायित्वात् फलस्य च स्वव्यवसायित्वादिति चेन्न, प्रमाणफलयोः कथंचिदभेदेन तदुपपत्तेः । इत्थं चात्मव्यापाररूपमुपयोगेन्द्रियमेव प्रमाणमिति स्थितम् । न ह्यव्यापृत आत्मा स्पर्शादिप्रकाशको भवति, निर्व्यापारेण कारकेण क्रियाजननायोगात्, मसृणतूलिकादिसन्निकर्षे सुषुप्तस्यापि तत्प्रसङ्गाच्च । कश्चित्तु—"ज्ञानोऽर्थग्रहणाकारा शक्तिर्ज्ञानमिहात्मनः । करणत्वेन निर्दिष्टा न विरुद्धा कथञ्चन ॥ १ ॥" इति लब्धीन्द्रियमेवार्थग्रहणशक्तिलक्षणं प्रमाणं संगिरन्ते, तदपेशलं, उपयोगात्मना करणेन लब्धेः फले व्यवधानात्, शक्तीनां परोक्षत्वाभ्युपगमेन करणफलज्ञानयोः परोक्षप्रत्यक्षत्वाभ्युपगमे प्राभाकरमतप्रवेशाच्च । अथ ज्ञानस्यात्मनि स्वाश्रये परिच्छिन्ने घटाद्यर्थवत् प्रत्यक्षमिति न दोष इति चेन्न, व्यवधाना प्रत्यक्षत्वेन सुखादिवत् स्वसंविदित

[illegible], [illegible] यानीति [illegible]। न हि [illegible] व्याप्तेत प्रत्यक्षाणामपि [illegible]ति। [illegible] परोक्ष च। अक्षमिन्द्रियं प्रति गतं कार्यं तेनाश्रितं प्रत्यक्षं, अथवाऽश्नुते [illegible] ज्ञानम् [illegible] प्रत्यक्षम्। न चैवमवध्यादौ मत्यादौ च प्रत्यक्ष[illegible] [illegible] प्रवृत्तिनिमित्तं [illegible] साक्षात्प्रत्य-[illegible]। [illegible] परतो वर्तत इति परोक्षं, अस्पष्टं ज्ञान [illegible]। [illegible] व्यवहार प्रवृत्तिनिवृत्तिलोकानिआप [illegible]। यत्राऽस्मदादिप्रत्यक्षं। तदीन्द्रियानिन्द्रियव्यवहिता- [illegible] विशेषात्। किं चामिष्टानैकान्तिकविरुद्धानुमानानामन- [illegible] परमार्थतः परोक्षमेवैतत्। एतच्च द्विविधमि [illegible], अनिन्द्रियजं च मनोजन्यमथवीन्द्रियजन्येऽपि मनो व्याप्रियते, तथापि [illegible]। [illegible] मतिश्रुतभेदाद्विधा, तत्रेन्द्रियमनोनिमित्तं श्रुताननुसारि ज्ञानं, मतिज्ञानं, [illegible] च [illegible] श्रुतग्रन्थं वाऽनुसृत्य वाच्यवाचकभावेन सयोज्य घटो [illegible]। [illegible] एव [illegible] स्यात् [illegible], तेषां [illegible] श्रुतत्वप्रसङ्गादिति

चन, श्रुतनिश्रितानामप्यवग्रहादीनां सङ्केतकाले श्रुतानुसारित्वेऽपि व्यवहारकाले तदननुसारित्वात्, अभ्यासपाटववशेन श्रुता-
नुसरणमन्तरेणापि विकल्पपरम्परापूर्वकविविधवचनप्रवृत्तिदर्शनात्, अङ्गोपाङ्गादौ शब्दावग्रहादयः श्रुताननुसारित्वान्मतित्व-
मेव। यत्तु तत्र श्रुतानुसारी प्रत्ययस्तत्र श्रुतत्वमेवेत्यवधेयम्। मतिज्ञानमवग्रहेहापायधारणाभेदाच्चतुर्विधम्। अस्पृष्टो ग्रहोऽव-
ग्रहः, स द्विविधः, व्यञ्जनावग्रहोऽर्थावग्रहश्च। व्यज्यते प्रकटीक्रियतेऽर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं कदम्बपुष्पगोलकाद्याकाराणामन्तर्नि-
र्वृत्तीन्द्रियाणां शब्दादिपरिणतद्रव्यनिकुरम्ब तदुभयसम्बन्धश्च, ततो व्यञ्जनेन व्यञ्जनस्यावग्रहो व्यञ्जनावग्रह इति मध्यमपद-
लोपी समासः। अथाज्ञानमयं बधिरादीनां श्रोत्रशब्दादिसम्बन्धवत्तत्काले ज्ञानानुपलम्भादिति चेत्, ज्ञानोपादानत्वेन तत्र
ज्ञानत्वोपचारादन्तेऽर्थावग्रहरूपज्ञानदर्शनेन तत्कालेऽपि चेष्टाविशेषाद्यनुमेयस्वप्नज्ञानादिवदव्यक्तज्ञानानुमानाद्वा एकते-
जोऽवयववत्तस्य तनुत्वेनानुपलक्षणात्। स च नयनमनोवर्जेन्द्रियभेदाच्चतुर्धा। नयनमनसोरप्राप्यकारित्वेन व्यञ्जनावग्रहा-
सिद्धेः। अन्यथा तयोर्ज्ञेयकृतानुग्रहोपघातपात्रत्वे जलानलदर्शनचिन्तनयोः क्लेददाहापत्तेः। रविचन्द्राद्यवलोकने चक्षुषोऽ-
नुग्रहोपघातौ दृष्टावेवेति चेत्, प्रथमावलोकनसमये तददर्शनात्। अनवरतावलोकने च प्राप्तेन रविकिरणादिनोपघातस्य
नैसर्गिकसौम्यादिगुणे चन्द्रादौ चावलोकिते उपघाताभावादनुग्रहाभिमानस्योपपत्तेः। मृतनष्टादिवस्तुचिन्तने इष्टसंगमवि-
भवलाभादिचिन्तने च जायमानौ दौर्बल्योरस्स्थलादिदाहविकासरोमाञ्चोद्गमादिलिङ्गकावुपघातानुग्रहौ न मनसः, किन्तु
मनस्त्वपरिणतानिष्टेष्टपुद्गलनिचयरूपद्रव्यमनोऽवष्टम्भेन हृन्निरुद्धवायुभेषजाभ्यामिव जीवस्यैवेति न ताभ्यां मनसः प्राप्यका-

१ अवग्रह । २ व्यञ्जनावग्रह ।

रिनिसिद्धि । ननु यदि मनो विषयं प्राप्य न परिच्छिनत्ति तदा कथं प्रसुप्तस्य मेर्वादौ गतं मे मन इति प्रत्ययः ? इति चेत्, मेर्वादौ शरीरस्येव मनसो गमनस्यासत्यत्वात्, अन्यथा विबुद्धस्य कुसुमपरिमलाद्यध्वजनितपरिश्रमाद्यनुग्रहोपघातप्रसंगात्। ननु स्वप्नानुभूतजिनस्नात्रदर्शनप्रभीतिहितार्थालाभयोरनुग्रहोपघातौ विबुद्धस्य सतो दृश्येते एवेति चेद्दृश्येतां स्वप्नविज्ञानकृतौ तौ । स्वप्नविज्ञानकृतं क्रियाफलं तु तृप्त्यादिकं नास्ति, यतो विषयप्राप्तिरूपा प्राप्यकारिता मनसो युज्येत इति ब्रूमः । विचारस्वमपि स्वप्ने व्यञ्जनविसर्गलक्षणं दृश्यत एवेति चेत्तत्तीव्राध्यवसायकृतं, न तु कामिनीनिधुवनक्रियाकृतमिति को दोषः ? ननु स्वापावस्थानिद्रोदये गीतादिकं शृण्वतो व्यञ्जनावग्रहो मनसोऽपि भवतीति चेन्न, तदा स्वप्नाभिमानिनोऽपि श्रवणावग्रहेणैवोपपत्तेः । ननु च्यवमानो न जानातीत्यादिवचनात् सर्वस्यापि छद्मस्थोपयोगस्यासंख्येयसमयमानत्वप्रतिसमयं च मनोद्रव्याणां ग्रहणाद्विषयमप्राप्तस्यापि मनसो देहादनिर्गतस्य तस्य च स्वसन्निहितहृदयादिचिन्तनवेलायां कथं व्यञ्जनावग्रहो न भवतीति चेत्, शृणु, ग्रहणं हि मनो, न तु ग्राह्यं । ग्राह्यवस्तुग्रहणे च व्यञ्जनावग्रहो भवतीति न मनोद्रव्यग्रहणे तदवकाशः । सन्निहितहृदयादिदेशग्रहणवेलायामपि नैतदवकाशः । बाह्यार्थापेक्षयैव प्राप्यकारित्वाप्राप्यकारित्वव्यवस्थानात् । क्षयोपशमपाटवेन मनसः प्रथममर्थानुपलब्धिकालासंभवाच्च । श्रोत्रादीन्द्रियव्यापारकालेऽपि मनोव्यापारस्य व्यञ्जनावग्रहोत्तरमेवाभ्युपगमात् । मनुतेऽर्थान् मन्यन्तेऽर्था अनेनेति वा मन इति मनःशब्दस्यान्वर्थत्वात्संपर्कं विना नासा स्पर्शनेन विना मनसोऽप्रवृत्तेः । तदेवं नयनमनसोर्न व्यञ्जनावग्रह इति स्थितम् । स्वरूपनामजातिक्रियागुणद्रव्यकल्पनारहितं सामान्यग्रहणमर्थावग्रहः कथं यद्येवं तेन शब्द इत्यवगृहीत इति सूत्रार्थस्तत्र शब्दाद्यु

श्रवणादित्यादीनादिति चेत्, शब्द इति यस्यैव ज्ञाननात् स्पर्शादिविशेषव्यावृत्त्यैनवधारणपरत्वात्। यदि च शब्दोऽय मित्यवधारणयोऽयमहे जगेषदा शब्दोऽविकल्पान्तर्मुहूर्तिकत्वादर्थानवग्रहस्यैकसामायिकत्व उच्येत। स्यान्मत शब्दोऽयमिति सामान्यविशेषग्रहणमव्यर्थानवग्रह इष्यते, तदुत्तर भावो माधुर्यादय शंखशब्दधर्मा इह, न तु शार्ङ्गधर्माः स्वरकर्कशत्वादय ईहोत्तरमिति, नैवम्, अशब्दव्यावृत्त्या विशेषप्रतिभासेनास्यापायत्वात्। लोकग्रहणस्योत्तरभेदापेक्षयाऽव्यवस्थितत्वात्। किं च शब्दोऽयमिति ज्ञानं शब्दगतान्वयधर्मेषु रूपादिव्यावृत्तिपर्यालोचनरूपामीहां विनाऽनुपपन्न। सा च नागृहीतेऽर्थे भवतीति तद्ग्रहणं अस्मदभ्युपगतार्थावग्रहकालात् प्राक् प्रतिपत्तव्यम्। स च व्यञ्जनावग्रहकालोऽर्थपरिशून्य इति यत्कि ञ्चिदेतत्। नन्वनन्तर क एष शब्द इति शब्दत्वसामान्तरधर्मविषयकेहानिर्देशाच्छब्दोऽयमित्याकार एवावग्रहोऽभ्युपेय इति चेत्, न, शब्दः शब्द इति भाषकेणैव ज्ञाननात् अर्थावग्रहेऽव्यक्तशब्दश्रवणस्यैव सूत्रे निर्देशात्। अव्यक्तस्य च सामान्यरू पत्वादनाकारोपयोगरूपस्य चास्य तन्मात्रविषयत्वात्। यदि च व्यञ्जनावग्रह एवाव्यक्तशब्दग्रहणमिष्येत, तदा सोऽप्यर्था- वग्रहः स्यात् अर्थस्य ग्रहणात्। कश्चित्तु सङ्केतादिविकल्पविकलस्य जातमात्रस्य बालस्य सामान्यग्रहण। परिचितविषयस्य त्वाद्यसमय एव विशेषज्ञानमित्येतदपेक्ष्या तेन शब्दोऽयमगृहीत इति नानुपपन्नमित्याहु। तन्न, एवं हि व्यक्ततरस्य व्यक्तशब्द ज्ञानमविस्याशि सुबहुविशेषग्रहणप्रसङ्गात्। न चेष्टापत्तिर्न पुनर्जानाति क एष शब्द इति सूत्रावयवस्याविशेषेणोक्तत्वात्। मदृष्टमपि शब्द धर्मिणमगृहीतोत्तरोत्तरबहुधर्मग्रहणानुपपत्तेश्च। अन्ये त्वालोचनपूर्वकमर्थावग्रहमाचक्षते, तथाहो

१ गोमन्दीति। २ न्यायवस्तुमनाह।

[illegible], तत्र आरोपो आरो-
[illegible] । न [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] इति यावत् । यथा श्रोत्र
[illegible] । न [illegible]
[illegible] । यथा [illegible]
[illegible] । [illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]

मपाय , धरण

[illegible] च्युत्पत्स्यमानानुमारिणोऽसद्भूतार्थविशेषव्यतिरेकावधारणमपायः सद्भूतार्थविशेषावधारणं च धारणेत्याहुस्तन्न, क्वचित्तदन्यव्यतिरेकपरामर्शात्, क्वचिदन्वयधर्मसमनुगमात्, क्वचिच्चोभाभ्यामपि, न ततोऽपायस्य निश्चयैकरूपेण भेदाभावात्, अन्यथा स्मृतेराधिक्येन मतेः पञ्चभेदत्वप्रसङ्गात्। अथ नास्त्येव त्वदभिमता धारणेति चतुष्टयाव्याघातः, तथाहि, उपयोगोपरमे का नाम धारणोपयोगमात्रत्वलक्षणा, अविच्युतिश्चापायान्नातिरिच्यते। या च घटाद्युपयोगोपरमे सङ्ख्येयमसङ्ख्येयं वा कालं वासनाऽभ्युपगम्यते, या च तदर्थग्रहणा स्मृतिः। सा मत्यंशरूपा धारणा न भवति, मत्युपयोगस्य प्रागेवोपरतत्वात्। कालान्तरे जायमानोपयोगेऽप्यन्वयमुख्या धारणाया स्मृत्यन्तर्भावादिति चेन्न, अपायप्रवृत्त्यनन्तरं क्वचिदन्तर्मुहूर्तं यावदपायधारामवृत्तिदर्शनादविच्युतेः पूर्वापरदर्शनानुसन्धानस्य तदेवेदमिति स्मृत्याख्यस्य प्राच्यापायपरिणामस्य तदाधायकसंस्काररूपाया वासनायाश्चापायाभ्यधिकत्वात्। नन्वविच्युतिस्मृतिलक्षणौ ज्ञानभेदौ गृहीतग्राहित्वान्न प्रमाणं। संस्कारश्च किं स्मृतिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमो वा तज्ज्ञानजननशक्तिर्वा तद्वस्तुविकल्पो वेति त्रयी गतिः। तत्राद्यपक्षद्वयमयुक्तं, ज्ञानरूपत्वाभावात्तद्भेदाना चेह विचार्यत्वात्। तृतीयपक्षोऽप्ययुक्त एव, सङ्ख्येयमसङ्ख्येयं वा कालं वासनाया इष्टत्वादेतावन्तं च कालं वस्तुविकल्पायोगादिति न कापि धारणा घटत इति चेन्न, स्पष्टस्पष्टतरस्पष्टतमभिन्नधर्मकवासनाजनकत्वेनान्यान्यवस्तुग्राहित्वादविच्युतेः प्रागननुभूतवस्त्वेकत्वग्राहित्वाच्च स्मृतेरगृहीतग्राहित्वात्, स्मृतिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमरूपायास्तद्विज्ञानजननशक्तिरूपायाश्च वासनायाः स्वयमज्ञानरूपत्वेऽपि कारणे कार्योपचारेण ज्ञानभेदाभिधानाविरोधादिति। एते चावग्रहादयो नोत्क्रमव्यतिक्रमाभ्यां न्यूनत्वेन चोत्पद्यन्ते, ज्ञेयस्येत्थ

मेर ज्ञानज स्वाजाव्यात् क्वचिदन्यस्तेऽपायमात्रस्य दृढवासने विषये स्मृतिमात्रस्य चोपलक्षणेऽप्युत्पलपत्रशतव्यतिजेद इव गौघ्र्यादवग्रहादिक्रमानुपलक्षणात् । तदेवमर्थावग्रहादयो मनइन्द्रियैः पोढा जिद्यमाना व्यञ्जनावग्रहचतुर्जेदैः सहाष्टाविंशतिर्मतिजेदा जवन्ति । अथवा बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितनिश्चितध्रुवैः सप्रतिपक्षैर्द्वादशजिर्जेदैर्जिन्नानामेतेषां षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि जवन्ति । बह्वादयश्च जेदा विषयापेक्षा, तथाहि, कश्चिन्नानाशब्दसमूहमाकर्णितं बहु जानाति, एतावन्तोऽत्र शङ्खशब्दा एतावन्तश्च पटहादिशब्दा इति पृथग्जिन्नजातीय क्षयोपशमविशेषात्परिच्छिनत्तीत्यर्थः । अन्यस्त्वल्पक्षयोपशमत्वात्तत्समानदेशोऽप्यबहु, अपरस्तु क्षयोपशमवैचित्र्याद्बहुविध, एकैकस्यापि शङ्खादिशब्दस्य स्निग्धत्वादिबहुधर्मान्वितत्वेनाप्याकलनात्। परस्त्वबहुविध स्निग्धत्वादिस्वल्पधर्मान्वितत्वेनाकलनात् । अन्यस्तु क्षिप्र, शीघ्रमेव परिच्छेदात् । इतरस्त्वक्षिप्र चिरविमर्शेनाकलनात् । परस्त्वनिश्रित, लिङ्ग विना स्वरूपत एव परिच्छेदात् । अपरस्तु निश्रित लिंगनिश्रयाकलनात् । (कश्चित्तु निश्चित विरुद्धधर्मानालिंगितत्वेनावगते रितरस्त्वनिश्चित विरुद्धधर्माङ्किततयावगमात्) अन्यो ध्रुव, बह्वादिरूपेणावगतस्य सर्वदैव तथावोधात् । अन्यस्त्वध्रुव कदाचिद्बह्वादिरूपेण कदाचित्त्वबह्वादिरूपेणावगमात् । उक्ता मतिजेदा । श्रुतजेदा उच्यन्ते । श्रुतमक्षरसञ्ज्ञिसम्यक्सादिसपर्यवसितगमिकाङ्गप्रविष्टजेदैः सप्रतिपक्षैश्चतुर्दशविधम् । तत्राक्षर त्रिविध । सञ्ज्ञाव्यञ्जनलब्धिजेदात् । सञ्ज्ञाक्षर बहुविधलिपिजेद,व्यञ्जनाक्षर जाप्यमाणमकारादि, एते चोपचाराच्छ्रुते, लब्ध्यक्षर त्विन्द्रियमनोनिमित्त श्रुतोपयोगस्तदावरणक्षयोपशमो वा, एतच्च परोपदेश विनापि नासजाव्यं, अनाकलितोपदेशानामपि मुग्धाना गवादीना च शब्दश्रवणे तदाजिमुख्यदर्शनात्, एकेन्द्रियाणामप्य-

व्याख्यानाच्च । अनक्षरश्रुतमुच्छ्वसितादि, तस्यापि भावश्रुतहेतुत्वात्, ततोऽपि सशोकोऽयमित्यभिज्ञानादिदर्शनात् । अथवा श्रुतोपयुक्तस्य सर्वात्मनैवोपयोगात्सर्वस्यैव व्यापारस्य श्रुतरूपत्वेऽप्यनेन शास्त्रकृतोक्तमिति वृद्धाः । समनस्कस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं । तद्विपरीतमसंज्ञिश्रुतं । सम्यक्श्रुतमङ्गानङ्गप्रविष्टं, लौकिकं तु मिथ्याश्रुतं, स्वामित्वचिन्तायां तु भजना, सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतं मिथ्याश्रुतमपि सम्यक्श्रुतमेवावितथभावितात्मना यथास्थानं तदर्थविनियोगात्, विपर्ययान्मिथ्यादृष्टिपरिगृहीतं च सम्यक्श्रुतमपि मिथ्याश्रुतमेवेति । सादि द्रव्यत एकं पुरुषमाश्रित्य, क्षेत्रतश्च भरतैरवते, कालत उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भावतश्च तत्तज्ज्ञापकप्रयत्नादिकम् । अनादि द्रव्यतो नानापुरुषानाश्रित्य । क्षेत्रतो महाविदेहान्, कालतो नोउत्सर्पिण्यवसर्पिणीलक्षणम् । भावतश्च सामान्यतः क्षयोपशममिति । एवं सपर्यवसितापर्यवसितभेदावपि भाव्यौ । गमिकं सदृशपाठं प्रायो दृष्टिवादगतं । अगमिकमसदृशपाठं प्रायः कालिकश्रुतगतं । अङ्गप्रविष्टं गणधरकृतं अनङ्गप्रविष्टं तु स्थविरकृतमिति । तदेवं सप्रभेदं सांव्यवहारिकं मतिश्रुतलक्षणं प्रत्यक्षं निरूपितम् । स्वोत्पत्तावात्मव्यापारमात्रापेक्षं पारमार्थिकं, तत्त्रिविधं, अवधिमनःपर्ययकेवलभेदात् । सकलरूपिद्रव्यविषयकजातीयमात्ममात्रापेक्षं ज्ञानमवधिज्ञानं, तच्च षोढा, अनुगामिवर्धमानप्रतिपातीतरभेदात् । तत्रोत्पत्तिक्षेत्रादन्यत्राप्यनुवर्तमानमानुगामिकं, भास्करप्रकाशवत्, यथा भास्करप्रकाशः प्राच्यामाविर्भूतः प्रतीचीमनुसरत्यपि तत्रावकाशमुद्योतयति, तथैतदप्येकत्रोत्पन्नमन्यत्र गच्छतोऽपि पुंसो विषयमवभासयतीति । उत्पत्तिक्षेत्र एव विषयावभासकमनानुगामिकं, प्रश्नादेशपुरुषज्ञानवत्, यथा प्रश्नादेशः क्वचिदेव स्थाने संवादयितुं शक्नोति पृच्छ्यमानमर्थं, तथेदमपि अधिकृत एव स्थाने विषयमुद्योतयितुमलमिति । उत्पत्तिक्रमेण विषय

१ भाष्ये ।

व्याप्तिमग्रगाद्मान वर्धमान, अधरोत्तरारणिनिर्मथनोत्पन्नोपात्तशुष्कोपचीयमानाधीयमानेन्धनराश्यग्निवत्, यथाऽग्नि प्रयत्नादुपजातः सन् पुनरिन्धनलाभाद्विवृद्धिमुपागच्छत्येव परमशुभाध्यवसायलाभादिदमपि पूर्वोत्पन्न वर्धत इति । उत्पत्तिक्षेत्रापेक्षया क्रमेणाल्पीभवद्विषय हीयमान, परिच्छिन्नेन्धनोपादानसंतत्यग्निशिखावत्, यथाऽपनीतेन्धनाग्निज्वाला परिहीयते तथेदमपीति । उत्पत्त्यनन्तर निर्मूलनश्वर प्रतिपाति, जलतरङ्गवत्, यथा जलतरङ्ग उत्पन्नमात्र एव निर्मूल विलीयते तथेदमपि । आकेवलप्राप्तेरामरणाद्वाऽवतिष्ठमानमप्रतिपाति वेदवत्, यथा पुरुषवेदादिरापुरुषादिपर्याय तिष्ठति तथेदमपीति । मनोमात्रसाक्षात्कारिमन पर्ययज्ञान, मन पर्यायानिद साक्षात्परिच्छेत्तुमल, बाह्यानर्थान् पुनस्तदन्यथाऽनुपपत्त्याऽनुमानेनैव परिच्छिनत्तीति द्रष्टव्यम् । तद्द्विविध ऋजुमतिविपुलमतिभेदात् । ऋज्वी सामान्यग्राहिणी मतिर्ऋजुमति सामान्यशब्दोऽत्र विपुलमत्यपेक्षयाऽल्पविशेषपरः, अन्यथा सामान्यमात्रग्राहित्वे मन पर्यायदर्शनप्रसंगात् । विपुला विशेषग्राहिणी मतिर्विपुलमति । तत्र ऋजुमत्या घटादिमात्रमनेन चिन्तितमिति ज्ञायते, विपुलमत्या तु पर्यायशतोपेत तत्परिच्छिद्यत इति । एते च द्वे ज्ञाने विकलविषयत्वाद्विकलप्रत्यक्षे परिभाष्येते । निखिलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारि केवलज्ञान । अत एवैतत्सकलप्रत्यक्ष, तच्चावरणक्षयस्य हेतोरैक्याद्भेदरहित, आवरण चात्र कर्मैव । स्वविषयेऽप्रवृत्तिमतोऽस्मदादिज्ञानस्य सावरणत्वादसर्वविषयत्वे व्याप्तिज्ञानाभावप्रसंगात्, सावरणत्वाभावेऽस्पष्टत्वानुपपत्तेश्च । आवरणस्य च कर्मणो विरोधिना सम्यग्दर्शनादिना विनाशात् सिध्यति कैवल्यम् । योगजधर्मानुगृहीतमनोजन्यमेवेदमस्त्विति केचित्तन्न, धर्मानुगृहीतेनापि मनसा

१ मन पयाय ।

पञ्चेन्द्रियार्थज्ञानमदस्य जनयितुमशक्यत्वात्। कवलभोजिनः कैवल्यं न घटत इति दिक्पटमतं, आहारपर्याप्त्यसातवेदनीयोदयादिप्रसूतया कवलभुक्त्या कैवल्याविरोधात्, घातिकर्मणामेव तद्विरोधित्वात्। दग्धरज्जुस्थानीयात्ततो न तदुत्पत्तिरिति चेन्नैवं तादृशादायुषो भवोपग्रहोऽपि न स्यात्। किं चौदारिकशरीरस्थितिः कथं कवलभुक्तिं विना भगवतः स्यात्। अनन्तवीर्यत्वेन तां विना तदुपपत्तौ छद्मस्थावस्थायामप्यपरिमितबलत्वश्रवणाद्भुक्त्यभावः स्यादित्यन्यत्र विस्तरः। उक्तं प्रत्यक्षम्। अथ परोक्षमुच्यते—अस्पष्टं परोक्षम्। तच्च स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदतः पञ्चप्रकारम्। अनुभवमात्रजन्यं ज्ञानं स्मरणं, यथा तत्तीर्थकरबिम्बम्। न चेदमप्रमाणं, प्रत्यक्षादिवदविसंवादकत्वात्। अतीततत्तांशे वर्तमानत्वविषयत्वादप्रमाणमिदमिति चेन्न, सर्वत्र विशेषणे विशेष्यकालभानानियमात्। अनुभवप्रमात्वपारतन्त्र्यादप्रमात्वमिति चेन्न, अनुमितेरपि व्याप्तिज्ञानादिप्रमात्वपारतन्त्र्येणाप्रमात्वप्रसंगात्। अनुमितेरुत्पत्तौ परापेक्षा विषयपरिच्छेदे तु स्वातन्त्र्यमिति चेन्न, स्मृतेरप्युत्पत्तावेवानुभवसव्यपेक्षत्वात्, स्वविषयपरिच्छेदे तु स्वातन्त्र्यात्। अनुभवविषयीकृतभावावभासिन्याः स्मृतेर्विषयपरिच्छेदेऽपि न स्वातन्त्र्यमिति चेत्तर्हि व्याप्तिज्ञानादिविषयीकृतानर्थान् परिच्छिन्दन्त्या अनुमितेरपि प्रामाण्यं दूरत एव। नैयत्येनाजातपदार्थोऽनुमित्या विषयीक्रियते इति चेत्तर्हि तत्तयाजातः पदार्थः स्मृत्या विषयीक्रियत इति तुल्यमिति न किंचिदेतत्। अनुभवस्मृतिहेतुकं तिर्यगूर्ध्वतासामान्यादिगोचरं संकलनात्मकं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्। यथा तज्जातीय एवायं गोपिण्डः, गोसदृशो गवयः, स एवायं जिनदत्तः, स एवानेनार्थः कथ्यते, गोविलक्षणो महिषः, इदं तस्माद्दूरं, इदं तस्मात्समीपं, इदं तस्मात्प्रांशु ह्रस्वं वेत्यादि। तत्तेदन्तारूपस्पष्टास्पष्टाकारभेदान्नैकं प्रत्यभिज्ञानस्वरूपमस्तीति शाक्यः, तन्न, आ

कारजेदेऽपि चित्रज्ञानवदेकस्य तस्यानुभूयमानत्वात्, स्वसामग्रीप्रभवस्यास्य वस्तुतोऽस्पष्टैकरूपत्वाच्च । इदतोल्लेखस्य प्रत्य-भिज्ञानिबन्धनत्वात् । विषयाभावान्नेदमस्तीति चेन्न, पूर्वापरविवर्तवर्त्येकद्रव्यस्य विशिष्टस्यैतद्विषयत्वात् । अत एवागृही-तासंसर्गकमनुभवस्मृतिरूपं ज्ञानद्वयमेवैतदिति निरस्तं । इत्थं सति विशिष्टज्ञानमात्रोच्छेदापत्ते । तथा प्रत्यक्षान्वयव्यतिरे-कानुविधायित्वात् प्रत्यक्षरूपमेवेदं युक्तमिति केचित्, तन्न, साक्षादक्षान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वस्यासिद्धे । प्रत्यभिज्ञानस्य साक्षात्प्रत्यक्षस्मरणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेनानुभूयमानत्वात् । अन्यथा प्रथमव्यक्तिदर्शनकालेऽप्युत्पत्तिप्रसंगात् । अथ पुनर्दर्शने पूर्वदर्शनाहितसंस्कारप्रबोधोत्पन्नस्मृतिसहायमिन्द्रियं प्रत्यभिज्ञानमुत्पादयतीत्युच्यते, तदनुचितं, प्रत्यक्षस्य स्मृ-तिनिरपेक्षत्वात् । अन्यथा पर्वते वह्निज्ञानस्यापि व्याप्तिस्मरणादिसापेक्षमनसैवोपपत्तौ अनुमानस्याप्युच्छेदप्रसंगात् । किं च प्रत्यभिजानामीति विलक्षणप्रतीतेरप्यतिरिक्तमेतत् । एतेन विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षसत्त्वाद्विशेषणज्ञाने सति विशिष्टप्रत्यक्षरू-पमेतदुपपद्यत इति निरस्तम् । एतत्सदृशः स इत्यादौ तदभावात्, स्मृत्यनुभवसंकलनक्रमस्यानुभविकत्वाच्चेति दिक् । अ-त्राह भाट्टः-भवत्वेकत्वज्ञानं प्रत्यभिज्ञानमस्तु, सादृश्यज्ञानं तूपमानमेव । गवये दृष्टे गवि च स्मृते सति सादृश्यज्ञानस्योपमा-नत्वात् । तदुक्तम्-"तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात् सादृश्येन विशेषितम् । प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥१॥ प्रत्यक्षे-णावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते । विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥२॥" इति, तन्न, दृष्टस्य सादृश्यविशिष्टपिं-डस्य, स्मृतस्य च गो, संकलनात्मकस्य गोसदृशो गवय इति ज्ञानस्य, प्रत्यभिज्ञानताऽनतिक्रमात् । अन्यथा गोविसदृशो महिष इत्यादेरपि सादृश्याविषयत्वेनोपमानातिरेके प्रमाणसंख्याव्याघातप्रसंगात् । एतेन गोसदृशो गवय इत्यतिदेशवाक्या

[illegible]दर्शनव्यापारक अय गवयशब्दवाच्य इति सादृश्यविशिष्टप्रतिपत्तिरूपमुपमानमिति नैया
यिकमतमप्ययुक्तमिव भवति। अनुभूयमानो गवयशब्दवाच्यत्वप्रकारस्यास्य प्रत्यभिज्ञानत्वानतिक्रमात्प्रत्यभिज्ञाना
गवयगोरुभयोरविशेषात् [illegible] नाम्ना पदवाच्यत्वपरिच्छेदोपपत्तेः । अत एव
पयोऽम्बुभेदी हंस इत्यादिवाक्यार्थज्ञानवता पयोऽम्बुभेदित्वादिविशिष्टव्यक्तिदर्शने सत्ययं हंसपदवाच्य इत्यादिमती
[illegible]मानापत्तेश्च । यदि चाय गवयशब्दवाच्य इति प्रतीत्यर्थं प्रत्यभिज्ञातिरिक्तं प्रमाणमाश्रीयते तन्मधुकादिदर्शनाद्
[illegible] अग्निमानयमित्यादिप्रतीत्यर्थं प्रमाणान्तरमन्वेषणीयं स्यात्, मानभेदे चामीषामुपमानस्यापि
मानत्वसंभवात्, प्रत्यभिज्ञानान्तर्भावितो वा प्रत्यभिज्ञानत्वमेवास्तु युक्तमिति दिक् । सकृद्देशकालाद्यन्तर्भेदेन साध्यसाधनजा
[illegible] । यथा यावान् कश्चिद्धूम स सर्वो वह्नौ सत्येव भवति, वह्निं विना वा न भवति । घटशब्दमात्र
[illegible] वाच्यमित्यादि । तथाहि स्वरूपप्रयुक्तव्यभिचाराभावलक्षणाया व्याप्तेः भूयोदर्शनसहितान्वय
व्यतिरेकसहकारिणापि प्रत्यक्षस्य [illegible] प्रवृत्तिः, सुतरां च सकलसाध्यसाधनव्यक्त्युपसंहारेण तद्ग्रह इति सा
[illegible] एव व्याप्तिनिश्चायकम् । अथ स्वव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यलक्षणाया
[illegible] व्याप्तिग्रहोऽस्तु । सकलसाध्यसाधनव्यक्त्युपसंहारस्यापि सामा
[illegible] तर्कस्यापि सकलसाध्यसाधनव्यक्त्युपसंहारेण व्याप्तिग्रहोप
[illegible] प्रमाणान्तरात्, तर्कं विना ज्ञातेन सामान्येनापि सकलव्यक्त्यनुपस्थितेश्च । वाच्य

पाचकभावोऽपि तर्केणैवावगम्यते, तस्यैव सकलशब्दार्थगोचरत्वात् । प्रयोजकवृद्धोक्तं श्रुत्वा प्रवर्तमानस्य प्रयोज्यवृद्धस्य चेष्टामवलोक्य तत्कारणज्ञानजनकतां शब्देऽवधारयतोऽन्त्यावयवश्रवणपूर्वावयवस्मरणोपजनितवर्णपदवाक्यविषयसकलनात्मकप्रत्यभिज्ञानवत्, आवापोद्वापाभ्यां सकलव्यक्त्युपसंहारेण च वाच्यवाचकभावप्रतीतिदर्शनादिति । अयं च तर्कः संबन्धप्रतीत्यन्तरनिरपेक्ष एव, स योग्यतासामर्थ्यात्संबन्धप्रतीतिं जनयतीति नानवस्था । प्रत्यक्षपृष्ठभाविविकल्परूपत्वान्नायं प्रमाणमिति बौद्धाः, तन्न, प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पस्यापि प्रत्यक्षगृहीतमात्राध्यवसायित्वेन सर्वोपसंहारेण व्याप्तिग्राहकत्वाभावात्तादृशस्य सामान्यविषयस्याप्यनुमानवदप्रमाणत्वात् । अवस्तुनिर्भासेऽपि परंपरया पदार्थप्रतिबन्धेन भवता व्यवहारतः प्रामाण्यप्रसिद्धेः । यस्त्वग्निधूमव्यतिरिक्तदेशे प्रथमं धूमस्यानुपलम्भ एकस्तदनन्तरमग्नेरुपलम्भस्ततो धूमस्येत्युपलम्भद्वयं, पश्चादग्नेरनुपलम्भोऽनन्तरं धूमस्याप्यनुपलम्भ इति द्वावनुपलम्भाविति प्रत्यक्षानुपलम्भपञ्चकाद्व्याप्तिग्रह इत्येतेषां सिद्धान्तः । तदुक्तम्–'धूमाधीर्वह्निविज्ञानं धूमज्ञानमधीस्तयोः । प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यामिति पञ्चभिरन्वयः ॥ १ ॥' इति । स तु मिथ्या उपलम्भानुपलम्भस्वभावस्य द्विविधस्यापि प्रत्यक्षस्य संनिहितमात्रविषयतयाऽविचारकतया च देशादिव्यवहितसमस्तपदार्थगोचरत्वायोगात् । यत्तु व्याप्यस्याहार्यारोपेण व्यापकस्याहार्यप्रसञ्जनं तर्कः, स च विशेषदर्शनवद्विरोधिशङ्काकालीनप्रमाणमात्रसहकारी विरोधिशङ्कानिवर्तकत्वेन तदनुकूल एव वा । न चायं स्वतः प्रमाणमिति नैयायिकैरिष्यते, तन्न व्याप्तिग्रहरूपस्य तर्कस्य स्वपरव्यवसायित्वेन स्वतः प्रमाणत्वात्परामिमततर्कस्यापि क्वचिदेतद्विचारागततया विपर्ययपर्यवसायिन आहार्यशङ्काविघटकतया स्वातन्त्र्येण शङ्कामात्रविघटकतया चोपयोगात् । इत्थं चाज्ञाननिवर्तकत्वेन तर्कस्य प्रामाण्यं धर्म-

र्थात्। तत्र सर्वत्र मिथ्याज्ञाने व्यवहार मनुवृत्त ज्ञानस्य। ज्ञानान्तरनिवृत्तिस्तदज्ञाननाव्यवहारनिबन्धनमव्यभिचरिति-
रपेक्षितेन मानान्तरं स्वतमिति कथ्यम्। साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानं। तद्द्विविधं स्वार्थं परार्थं च। तत्र हेतुग्रहणस
म्बन्धस्मरणाभ्यां साध्यविज्ञानं स्वार्थं। यथा गृहीतधूमस्य स्मृतव्याप्तिकस्य पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानम्। अत्र हेतुग्रह
णसम्बन्धस्मरणयोः समुदितयोरेव कारणत्वमवगन्तव्यम्। अन्यथा विस्मृताप्रतिपन्नसम्बन्धस्यागृहीतलिङ्गकस्य च कस्यचिदनु
मानोत्पत्तिप्रसङ्गात्। निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुः न तु त्रिलक्षणकादि। तथाहि-त्रिलक्षण एव हेतुरिति बौद्धाः।
पक्षधर्मत्वसपक्षसत्त्वविपक्षव्यावृत्तिभेदात्। तत्र पक्षधर्मत्वाभावेऽप्युदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यत्र नियमाभावादनैकान्तिक-
त्वानिश्चयाद्यनुमानानुमित्यसिद्धेश्चानुपपत्तिरिति, तत्र, पक्षधर्मत्वाभावेऽप्युदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयादिति, उपरि सविता भूमे
रालोकवत्त्वात् नभश्चन्द्रो जलचन्द्रात् इत्याद्यनुमानदर्शनात्। न चात्रापि कालाकाशादिकं धर्मि कृत्तिकोदयादिमत् कृ
तकत्वाद्या धर्माः सम्बन्धिनः पक्षधर्मता सिद्धिरिति वाच्यम्। अननुभूयमानधर्मिविषयत्वेनात्र पक्षधर्मत्वोपपादने जगद्धर्मापेक्षया
पक्ष, धर्मित्वान्तरानुस्यूतप्रसङ्गात् सर्वत्र पक्षधर्मतानुमितौ नाम, तदा कथं तत्र पक्षज्ञाननियम इति
प्रसक्तानिरूपणाया यथा पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वादित्यत्र धूमस्य पक्षग्रहणे सत्यपि तत्र ज्ञानमिति। व्याप्तिग्रहे
पर्वतो न पक्षान्तर्भावेन व्याप्तिग्रहो न प्रवर्तते। तत्रान्यथानुपपत्तेरव धर्मकात् पक्षस्य साध्यसमर्थनात्। तदुक्तं
१। ... ...

पक्षीकृत एव विषये साधनस्य साध्येन व्याप्तिरन्तर्व्याप्तिः । अन्यत्र तु बहिर्व्याप्तिरिति" । तत्रान्तर्व्याप्त्या हेतौ साध्यप्रत्यायनशक्तौ सत्यां बहिर्व्याप्तेरुद्भावनव्यर्थत्वप्रतिपादनेन तस्याः स्वरूपप्रयुक्तव्यभिचारलक्षणत्वस्य, बहिर्व्याप्तेश्च सहचारमात्रत्वस्य लाभात्। सार्वत्रिक्या व्याप्तेर्विषयभेदस्य दुर्वचत्वात्, न चेदेव तदान्तर्व्याप्तिग्रहकाल एव च पक्षसाध्यसंसर्गभानादनुमानवैफल्यापत्तिर्विना पर्वतो वह्निमानित्युद्देश्यप्रतीतिमिति यथातत्र भावनीयं सुधीभिः । इत्थं च पक्षान्येतानि सहकारफलान्येकशाखाप्रभवत्वादुपयुक्तसहकारफलवदित्यादौ बाधितविषये, मूर्खोऽयं देवदत्तस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदित्यादौ सत्प्रतिपक्षे चातिप्रसङ्गवारणायाबाधितविषयत्वासत्प्रतिपक्षत्वसहितं प्रागुक्तरूपत्रयमादाय पाञ्चरूप्यं हेतुलक्षणमिति नैयायिकमतमप्यपास्तम् । उदेष्यति शकटमित्यादौ पक्षधर्मत्वस्यैवासिद्धेः, स श्यामस्तत्पुत्रत्वादित्यत्र हेत्वाभासेऽपि पाञ्चरूप्यसत्त्वाच्च । निश्चितान्यथानुपपत्तेरेव सर्वत्र हेतुलक्षणत्वौचित्यात् । ननु हेतुना साध्यमनुमातव्यं, तत्र किं लक्षणं ? साध्यमिति चेदुच्यते, अप्रतीतमनिराकृतमभीप्सितं च साध्यम् । शङ्कितविपरीतानध्यवसितवस्तूनां साध्यताप्रतिपत्त्यर्थमप्रतीतमिति विशेषणम् । प्रत्यक्षादिविरुद्धस्य साध्यत्वं मा प्रसाङ्क्षीदित्यनिराकृतग्रहणम् । अनभिमतस्यासाध्यत्वप्रतिपत्तयेऽभीप्सितग्रहणम् । कथायां शङ्कितस्यैव साध्यस्य साधनं युक्तमिति कश्चित् । तन्न । विपर्यस्ताव्युत्पन्नयोरपि परपक्षदिदृक्षादिना कथायामुपसर्पणसम्भवेन संशयनिरासार्थमिव विपर्ययानध्यवसायनिरासार्थमपि प्रयोगसम्भवात्। पित्रादेर्विपर्यस्ताव्युत्पन्नपुत्रादिशिक्षाप्रदानदर्शनाच्च । न चेदेवं जिगीषुकथायामनुमानप्रयोग एव न स्यात्तस्य साभिमानत्वेन विपर्यस्तत्वात्। अनिराकृतमिति विशेषणं वादिप्रतिवाद्युभयापेक्षया, द्वयोः प्रमाणेनाबाधितस्य कथायां साध्यत्वात् । अनीप्सितमिति तु वाद्यपेक्षयैव।

चक्षुरेव स्वाभिप्रेतार्थप्रतिपादनायोपार्जनात् । ततश्च परार्थाश्चक्षुरादय इत्यादौ पारार्थ्यमात्राभिधानेऽप्यात्मार्थत्वमत्र साध्यं सिध्यति । अन्यथा संहतपरार्थत्वेन बौद्धैश्चक्षुरादीनामनुपगमादित्यनन्वयादिदोषदुष्टमेतत्साध्यसाधनमिति वदन्ति । स्वार्थानुमानावसरेऽपि परार्थानुमानोपयोग्यभिधानं, परार्थस्य स्वार्थपुरःसरत्वेनानतिभेदज्ञापनार्थम् । व्याप्तिग्रहणसमयापेक्षया साध्यं धर्म एवान्यथा तदनुपपत्तेरानुमानिकप्रतिपत्त्यवसरापेक्षया तु पक्षापरपर्यायस्तद्विशिष्टः प्रसिद्धो धर्मी । इत्थं च स्वार्थानुमानस्य त्रीण्यङ्गानि धर्मी साध्यं साधनं च । तत्र साधनं गमकत्वेनाङ्गं, साध्यं तु गम्यत्वेन, धर्मी पुनः साध्यधर्माधारत्वेनाधारविशेषनिष्ठतया साध्यसिद्धेरनुमानप्रयोजनत्वात् । अथवा पक्षो हेतुरित्यङ्गद्वयं स्वार्थानुमाने, साध्यधर्मविशिष्टस्य धर्मिणः पक्षत्वादिति धर्मधर्मिभेदाभेदविवक्षया पक्षद्वयं द्रष्टव्यम् । धर्मिणः प्रसिद्धिश्च क्वचित्प्रमाणात् क्वचिद्विकल्पात् क्वचित्प्रमाणविकल्पाभ्याम् । तत्र निश्चितप्रामाण्यकप्रत्यक्षाद्यन्यतमावधृतत्वं प्रमाणप्रसिद्धत्वम् । अनिश्चितप्रामाण्याप्रामाण्यप्रत्ययगोचरत्वं विकल्पप्रसिद्धत्वम् । तद्द्वयविषयत्वं प्रमाणविकल्पप्रसिद्धत्वम् । तत्र प्रमाणसिद्धो धर्मी यथा धूमवत्त्वादग्निमत्त्वे साध्ये पर्वतः, स खलु प्रत्यक्षेणानुभूयते । विकल्पसिद्धो धर्मी यथा सर्वज्ञोऽस्ति सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वादित्यस्तित्वे साध्ये सर्वज्ञः, अथवा खरविषाणं नास्तीति नास्तित्वे साध्ये खरविषाणं, अत्र हि सर्वज्ञखरविषाणे अस्तित्वनास्तित्वसिद्धिभ्यां प्राग्विकल्पसिद्धे । उभयसिद्धो धर्मी यथा शब्दः परिणामी कृतकत्वादित्यत्र शब्दः, स हि वर्तमानः प्रत्यक्षगम्यः, भूतो भविष्यंश्च विकल्पगम्यः, स सर्वोऽपि धर्मीति प्रमाणविकल्पसिद्धो धर्मी । प्रमाणोभयसिद्धयोर्धर्मिणोः साध्ये कामचारः । विकल्पसिद्धे तु धर्मिणि सत्तासत्तयोरेव साध्यमिति नियमः । तदुक्तम्—"विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरसाध्ये"

इति । अत्र बौद्धः सत्तामात्रस्यानभीप्सितत्वाद्विशिष्टसत्तासाधने चानन्वयाद्विकल्पसिद्धे धर्मिणि न सत्ता साध्येत्याह । तदसत्, इत्थं सति प्रकृतानुमानस्यापि भङ्गप्रसङ्गात्, वह्निमात्रस्यानभीप्सितत्वाद्विशिष्टवह्नेश्चानन्वयादिति । अथ तत्र सत्तायां साध्यायां तद्धेतुर्भावधर्मो भावाभावधर्मोऽभावधर्मो वा स्यात् । आद्येऽसिद्धिरसिद्धसत्ताके भावधर्मासिद्धेः । द्वितीये व्यभिचारः, अस्तित्वाभाववत्यपि वृत्तेः । तृतीये च विरोधो, अभावधर्मस्य भावे क्वचिदप्यसम्भवात् । तदुक्तम्–"नासिद्धे भावधर्मोऽस्ति व्यभिचार्युभयाश्रयः । धर्मो विरुद्धो भावस्य सा सत्ता साध्यते कथम् ॥१॥" इति चेन्न, इत्थं वह्निमद्धर्मत्वादिविकल्पैर्धूमेन वह्न्यनुमानस्याप्युच्छेदापत्तेः । विकल्पस्याप्रमाणत्वाद्विकल्पसिद्धो धर्मी नास्त्येवेति नैयायिकाः, तेषामेतद्वचनस्यैवानुपपत्तेस्तूष्णींभावापत्तिर्विकल्पसिद्धधर्मिणोऽप्रसिद्धौ तत्प्रतिषेधानुपपत्तेरिति । इदं त्ववधेयं, विकल्पसिद्धस्य धर्मिणो नाखण्डस्य भानमसत्ख्यातिप्रसङ्गादिति, शब्दादेर्विशिष्टस्य तस्य भानाभ्युपगमे विशेषणस्य संशयेऽभावनिश्चये वा विशिष्टवैशिष्ट्यभानानुपपत्तेः, विशेषणांशे आहार्यारोपरूपा विकल्पात्मिकानुमितिः स्वीकर्तव्या । देशकालसत्तालक्षणस्यास्तित्वस्य, सकलदेशकालसत्ताभावलक्षणस्य च नास्तित्वस्य साधनेन, परपरिकल्पितविपरीतारोपव्यवच्छेदमात्रस्य फलत्वात् । वस्तुतस्तु खण्डशः प्रसिद्धपदार्थाऽस्तित्वनास्तित्वसाधनमेवोचितम् । अत एव "असतो णत्थि णिसेहो" इत्यादिभाष्यग्रन्थे खरविषाणं नास्तीत्यत्र खरे विषाणं नास्तीत्ययमर्थ उपपादितः । एकान्तनित्यमर्थक्रियासमर्थं न भवति क्रमयौगपद्याभावादित्यत्रापि विशेषावमर्शदशायां क्रमयौगपद्यनिरूपकत्वाभावेनार्थक्रियानियामकत्वाभावो नित्यत्वादौ सुसाध्य इति सम्यग्निभालनीयं स्वपरसमयदत्तदृष्टिभिः । परार्थं पक्षहेतुवचनात्मकमनुमानमुपचारात्, तेन श्रोतुरनुमानेनार्थबोधनात् । पक्षस्य विवादादेव

गम्यमानस्याप्रयोगः इति सौगत , तन्न, यत्किञ्चिद्वचनव्यवहितात् ततो व्युत्पन्नमते पक्षप्रतीतावप्यव्युत्पन्नान् प्रत्यवश्यनिर्देश्यत्वात् । प्रकृतानुमानवाक्यावयवान्तरैकवाक्यतापन्नाच्चतोऽपि गम्यमानस्य पक्षस्याप्रयोगस्य घटनात् । अवश्य चाभ्युपगन्तव्य इतो प्रतिनियतधर्मिधर्मतावनिश्चयार्थमुपसंहारवचनवत्साध्यस्यापि तदर्थं पक्षवचन तथागतेनापि,अन्यथा सम र्थनोपन्यासादपि गम्यमानस्य हेतोरप्यनुपन्यासप्रसङ्गात्, मन्दमतिप्रतिपत्त्यर्थस्य चोभयत्राविशेषादिति । किं च प्रतिज्ञाया प्रयोगानर्हत्वे शास्त्रादावप्यसौ न प्रयुज्यते, दृश्यते च प्रयुज्यमानेयं शास्त्रशास्त्रेऽपि, परानुग्रहार्थं शास्त्रे तत्प्रयोगश्च वाद-ऽपि तुल्यः । विजिगीषूणामपि मन्दमतीनामर्थप्रतिपत्त्यर्थत्वादेवोपपत्तिरिति । आगमात्परेणैव ज्ञातस्य वचनं परार्थानुमानं, यथा बुद्धिरचेतना उत्पत्तिमत्त्वात् घटवदिति सांख्यानुमानं । अत्र हि बुद्ध्युत्पत्तिमत्त्वं सांख्येनाभ्युपगम्यते इति, तदुपन्यासार्थं, वादिप्रतिवादिनोरागमप्रामाण्यविप्रतिपत्ते । अन्यथा तत एव साध्यसिद्धिप्रसंगात् । परीक्षापूर्वमागमाभ्युपगमेऽपि परीक्षाकाले तद्बाधात् । नन्वयं क्वचित्कदाचित्कस्मात्साध्यते परं प्रति, यत्सर्वथैक तथानेकत्र समाप्यते, तथा च मा साध्यमिति, सत्यम्, स्वयमोहसतः सर्वा[illegible]मदर्शनमात्रतत्सर्वतत्साधनस्य वस्तुनिश्चायकत्वाभावात्, प्रसङ्गविपर्ययरूपस्य भावहेतोरनिश्चायकत्वात्, अनवस्थितिरव्याप्तकानकत्वनिवृत्त्यैव तन्निवृत्तेर्मौलहेतुपरिकरत्वेन प्रसङ्गोपन्यासस्यापि न्याय्यत्वात् । बुद्धिर्भवतन्यायो न प्रसङ्गविपर्ययहेतोर्व्याप्तिसिद्धिनिबन्धनस्य विरुद्धधर्माध्यासस्य विपक्षबाधकप्रमाणस्यानुपन्यासात् प्रसङ्गस्याप्यसाधनत्वमिति चेन्न । हेतु साध्योपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां द्विधा प्रयोगश्च्यो, यथा पर्वतो वह्निमान्, सत्येव वह्नौ धूमवत्त्वात् असत्यनुपपत्तेर्वा । अनयोरन्यतरप्रयोगेणैव साध्यप्रतिपत्तौ द्वितीयप्रयोगस्यैकत्रानुपयोग । पक्ष

हेतुवचनोदाहरणमवयवद्वयमेव च परप्रतिपत्त्यङ्गं, न दृष्टान्तादिवचनं, पक्षहेतुवचनादेव परप्रतिपत्तेः, प्रतिबन्धस्य तर्कत एव निर्णयात्तत्स्मरणस्यापि पक्षहेतुदर्शनेनैव सिद्धेरसमर्थितस्य दृष्टान्तादेः प्रतिपत्त्यनङ्गत्वात्तत्समर्थनेनैवान्यथासिद्धेश्च । समर्थनं हि हेतोरसिद्धत्वादिदोषान्निराकृत्य स्वसाध्येनाविनाभावसाधनं, तत एव च परप्रतीत्युपपत्तौ किमपरप्रयासेनेति । मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टान्तादिप्रयोगोऽप्युपयुज्यते, तथाहि—यः खलु क्षयोपशमविशेषादेव निर्णीतपक्षो दृष्टान्तसाध्यप्रतिबन्धग्राहकप्रमाणस्मरणनिपुणोऽपरावयवाभ्यूहनसमर्थश्च भवति, तं प्रति हेतुरेव प्रयोज्यः । यस्य तु नाद्यापि पक्षनिर्णयस्तं प्रति पक्षोऽपि । यस्तु प्रतिबन्धग्राहिणः प्रमाणस्य न स्मरति, तं प्रति दृष्टान्तोऽपि । यस्तु दार्ष्टान्तिके हेतुं योजयितुं न जानीते, तं प्रत्युपनयोऽपि । एवमपि साकाङ्क्षं प्रति च निगमनं । पक्षादिस्वरूपविप्रतिपत्तिमन्तं प्रति च पक्षशुद्ध्यादिकमपीति सोऽयं दशावयवो हेतुः पर्यवस्यति । स चायं द्विविधो, विधिरूपः प्रतिषेधरूपश्च । तत्र विधिरूपो द्विविधः, विधिसाधकः प्रतिषेधसाधकश्च । तत्राद्यः षोढा, तद्यथा—कश्चिद्व्याप्य एव, यथा शब्दो नित्यः प्रयत्नानान्तरीयकत्वादिति, यद्यपि व्याप्यो हेतुः सर्व एव, तथापि कार्यादिभ्यो व्याप्यस्यात्र ग्रहणाद्भेदः, वृक्षः शिंशपाया इत्यादेरप्यत्रैवान्तर्भावः । कश्चित्कार्यरूपः, यथा पर्वतोऽयमग्निमान् धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेरित्यत्र धूमः, धूमो ह्यग्नेः कार्यभूतः, तदभावेऽनुपपद्यमानोऽग्निं गमयति । कश्चित्कारणरूपः, यथा वृष्टिर्भविष्यति, विशिष्टमेघान्यथानुपपत्तेरित्यत्र मेघविशेषः, स हि वर्षस्य कारणं स्वकार्यभूतं वर्षं गमयति । ननु कार्याभावेऽपि सम्भवत्कारणं न कार्यानुमापकं, अत एव न वह्निर्धूमं गमयतीति चेत्सत्यं, यस्मिन्सामर्थ्याप्रतिबन्धः कारणान्तरसाकल्यं च निश्चेतुं शक्यते, तस्यैव कारणस्य कार्यानुमापकत्वात् । कश्चित् पूर्वचरः, यथा

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयान्यथानुपपत्तेरित्यत्र कृत्तिकोदयानन्तरं मुहूर्तान्ते नियमेन शकटोदयो जायत इति कृत्तिकोदयः पूर्वचरो हेतुः शकटोदयं गमयति । कश्चिदुत्तरचरो यथोदगाद्भरणिः प्राक् कृत्तिकोदयादित्यत्र कृत्तिकोदयः, कृत्तिकोदयो हि भरण्युदयोत्तरचरस्तं गमयतीति कालव्यवधानेनानयोः कार्यकारणभावाभेदः । कश्चित् सहचरः, यथा मातुलिङ्गं रूपवद्भवितुमर्हति रसवत्तान्यथानुपपत्तेरित्यत्र रसः, रसो हि नियमेन रूपसहचरितः, तदभावेऽनुपपद्यमानस्तं गमयति, परस्परस्वरूपपरित्यागोपलम्भात् पौर्वापर्याभावाच्च स्वभावकार्यकारणेभ्योऽस्य भेदः । एतेषूदाहरणेषु भावरूपानेवाग्न्यादीन् साधयन्ति धूमादयो हेतवो भावरूपा एवेति विधिसाधकविधिरूपाः एते विरुद्धोपलब्धय उच्यन्ते । द्वितीयस्तु निषेधसाधको विरुद्धोपलब्धिनामा, स च स्वभावविरुद्धतद्व्याप्याद्युपलब्धिभेदात् सप्तधा । यथा नास्त्येव सर्वथा एकान्तः, अनेकान्तस्योपलम्भात् १। नास्त्यस्य तत्त्वनिश्चयः, तत्र सन्देहात् २। नास्त्यस्य क्रोधोपशान्तिः, वदनविकारादेः ३। नास्त्यस्यासत्यं वचः, रागाद्यकलङ्कितज्ञानकलितत्वात् ४। नोद्गमिष्यति मुहूर्तान्ते पुष्यतारा, रोहिण्युद्गमात् ५। नोदगान्मुहूर्तात्पूर्वं मृगशिरः, पूर्वफाल्गुन्युदयात् ६। नास्त्यस्य मिथ्याज्ञानं, सम्यग्दर्शनादिति ७। अत्रानेकान्तः प्रतिषेध्यस्यैकान्तस्य स्वभावतो विरुद्धः १। तत्त्वसन्देहश्च प्रतिषेध्यतत्त्वनिश्चयविरुद्धतदनिश्चयव्याप्यः २। वदनविकारादिश्च क्रोधोपशमविरुद्धतदनुपशमकार्यम् ३। रागाद्यकलङ्कितज्ञानकलितत्वं चासत्यविरुद्धसत्यकारणम् ४। रोहिण्युद्गमश्च पुष्यतारोद्गमविरुद्धमृगशीर्षोदयपूर्वचरः ५। पूर्वफाल्गुन्युदयश्च मृगशीर्षोदयविरुद्धमघोदयोत्तरचरः ६। सम्यग्दर्शनं च मिथ्याज्ञानविरुद्धसम्यग्ज्ञानसह-

१ [illegible]

च ...ति ७। प्रतिषेधरूपोऽपि हेतुर्द्विविधः, विधिसाधकः प्रतिषेधसाधकश्चेति। आद्यो विरुद्धानुपलब्धिर्नामा विधेयविरुद्ध-
कार्यकारणस्वभावव्यापकसहचरानुपलम्भभेदात्सप्तधा। यथा अस्त्यत्र रोगातिशयः, नीरोगव्यापारानुपलब्धेः १। विद्यतेऽत्र
कष्टं, इष्टसंयोगाभावात् २। वस्तुजातमनेकान्तात्मकं, एकान्तस्वभावानुपलम्भात् ३। अस्त्यत्र छाया, औष्ण्यानुपलब्धेः ४।
अस्त्यत्र मिथ्याज्ञानं, सम्यग्दर्शनानुपलब्धेरिति ५। द्वितीयोऽविरुद्धानुपलब्धिर्नामा प्रतिषेध्याविरुद्धस्वभावव्यापककार्य-
कारणपूर्वचरोत्तरचरसहचरानुपलब्धिभेदात् सप्तधा। यथा नास्त्यत्र भूतले कुम्भः, उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य तत्स्वभावस्या-
नुपलम्भात् १। नास्त्यत्र पनसः, पादपानुपलब्धेः २। नास्त्यत्राप्रतिहतशक्तिकं बीजं, अङ्कुरानवलोकनात् ३। न सन्त्यस्य
प्रशमप्रभृतयो भावाः, तत्त्वार्थश्रद्धानाभावात् ४। नोद्गमिष्यति मुहूर्तान्ते स्वातिः, चित्रोदयादर्शनात् ५। नोदगमत्पूर्वभा-
द्रपदा मुहूर्तात्पूर्वमुत्तरभाद्रपदोद्गमानवगमात् ६। नास्त्यत्र सम्यग्ज्ञानं, सम्यग्दर्शनानुपलब्धेरिति ७। सोऽयमनेकविधोऽ
न्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुरुक्तोऽतोऽन्यो हेत्वाभासः, स त्रेधा, असिद्धविरुद्धानैकान्तिकभेदात्। तत्राप्रतीयमानस्वरूपो
हेतुरसिद्धः, स्वरूपस्याप्रतीतिश्चाज्ञानात्सन्देहाद्विपर्ययाद्वा, स द्विविधः, उभयासिद्धोऽन्यतरासिद्धश्च। आद्यो यथा शब्दः परि-
णामी चाक्षुषत्वादिति। द्वितीयो यथा अचेतनास्तरवः, विज्ञानेन्द्रियायुर्निरोधलक्षणमरणरहितत्वात्, अचेतनाः सुखा-
दयः उत्पत्तिमत्त्वादिति वा। नन्वन्यतरासिद्धो हेत्वाभास एव नास्ति, तथाहि—परेणासिद्ध इत्युद्भाविते यदि वादी न
तत्साधकं प्रमाणमाचक्षीत, तदा प्रमाणाभावादुभयोरप्यसिद्धोऽयमापद्येत तदा प्रमाणस्यापक्षपातित्वादुभयोरपि सिद्धः।
अथ स्वरूपं परं प्रति प्रमाणेन प्रसाध्यते, तावत्तं प्रत्यसिद्ध इति चेत् गौणं तर्हि सिद्धत्वं, न हि रत्नादिपदार्थस्तत्त्वतोऽप्रती-

यमानस्तार्तमपि काल मुख्यतया तदाज्ञामः। किं चान्यतरासिद्धो यदा हेत्वाभासस्तदा वादी निगृहीत स्यात्, न च निगृहीतस्य पश्चादनिग्रह इति युक्तम्। नापि हेतुसमर्थनं पश्चाद्युक्तं, निग्रहान्तत्वाद्वादस्येति। अत्रोच्यते-यदा वादी सम्यग्धेतु प्रतिपद्यमानोऽपि तत्समर्थनन्यायविस्मरणादिनिमित्तेन प्रतिवादिनं प्राश्निकान् वा प्रतिबोधयितुं न शक्नोति, असिद्धतामपि नानुमन्यते, तदान्यतरासिद्धत्वेनैव निगृह्यते, तथा स्वयमनभ्युपगतोऽपि परस्य सिद्ध इत्यतावर्तनोपन्यस्तो हेतुरन्यतरासिद्धो निग्रहाधिकरण, यथा सांख्यस्य जैनं प्रत्यचेतना सुखादय उत्पत्तिमत्त्वात् घटवदिति। साध्यविपरीतव्याप्तो विरुद्ध। यथाऽपरिणामी शब्द कृतकत्वादिति। कृतकत्व ह्यपरिणामित्वविरुद्धेन परिणामित्वेन व्याप्तमिति। यस्यान्यथानुपपत्ति सन्दिह्यते सोऽनैकान्तिक, स द्वेधा निर्णीतविपक्षवृत्तिक सन्दिग्धविपक्षवृत्तिकश्च। आद्यो यथा नित्य शब्दः प्रमेयत्वात्। अत्र हि प्रमेयत्वस्य वृत्तिर्नित्ये व्योमादौ सपक्ष इव विपक्षेऽनित्ये घटादावपि निश्चिता। द्वितीयो यथा अभिमत सर्वज्ञो न भवति वक्तृत्वादिति। अत्र हि वक्तृत्व विपक्ष सर्वज्ञे सदिग्धवृत्तिकं, सर्वज्ञ किं वक्तृत्वमस्ति नेति स दद्यादत्र स श्यामो मित्रपुत्रत्वादित्याद्यप्युदाहार्यम्। अकिञ्चित्करारव्यश्चतुर्थोऽपि हेत्वाभासभेदो धर्मभूषणोदीरितो न श्रद्धेय, सिद्धसाधनो बाधितविषयश्चेति द्विविधस्याप्यप्रयोजकाह्वयस्य तस्य प्रतीतनिराकृताख्यपक्षाभासभेदानतिरिक्तत्वात्। न च यत्र पक्षदोषस्तत्रावश्यं हेतुदोषोऽपि वाच्य, दृष्टान्तादिदोषस्याप्यवश्य वाच्यत्वापत्ते। एतेन कालात्ययापदिष्टोऽपि प्रत्युक्तो वदितव्य। प्रकरणसमोऽपि नातिरिच्यते, तुल्यबलसाध्यतद्विपर्ययसाधकहेतुद्वयरूपे सत्यस्मिन् प्रकृतसाधनयोरन्यथानुपपत्त्यनिश्चयेऽसिद्ध एवान्तर्भावादिति संक्षेप॥ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागम। न च व्याप्तिग्रह-

स्वरूपेणार्थप्रतिपादकत्वाद् भवदस्यानुमानेऽन्तर्भावः, कूटाकूटकार्षापणनिरूपणप्रवणप्रत्यक्षवदभ्यासदशायां व्याप्तिग्रहणनैरपेक्ष्येणैवास्यार्थबोधकत्वात्। यथास्थितार्थपरिज्ञानपूर्वकहितोपदेशप्रवण आप्तः। वर्णपदवाक्यात्मकं तद्वचनम्। वर्णोऽकारादिः पौद्गलिकः। पदं संकेतवत्। अन्योऽन्यापेक्षाणां पदानां समुदायो वाक्यम्। तदिदमागमप्रमाणम्। स च विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति। तथैव परिपूर्णार्थप्रापकत्वलक्षणतात्त्विकप्रामाण्यनिर्वाहात्, क्वचिदेकभङ्गदर्शनेऽपि व्युत्पन्नमतीनामितरभङ्गाक्षेपध्रौव्यात्। यत्र तु घटोऽस्तीत्यादिलोकवाक्ये सप्तभङ्गीसंस्पर्शशून्यता। तत्रार्थप्रापकत्वमात्रेण लोकापेक्षया प्रामाण्येऽपि तत्त्वतो न प्रामाण्यमिति द्रष्टव्यम्। केयं सप्तभङ्गीति चेदुच्यते—एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यनुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गी। इयं च सप्तभङ्गी वस्तुनि प्रतिपर्यायं सप्तविधधर्माणां सम्भवात् सप्तविधसंशयोत्थापितसप्तविधजिज्ञासामूलसप्तविधप्रश्नानुरोधादुपपद्यते। तत्र स्यादस्त्येव सर्वमिति प्राधान्येन विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः। स्यात्कथञ्चित् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयेत्यर्थः। अस्ति हि घटादिकं द्रव्यतः पार्थिवादित्वेन, न जलादित्वेन, क्षेत्रतः पाटलिपुत्रकादित्वेन, न कान्यकुब्जादित्वेन, कालतः शैशिरादित्वेन, न वासन्तिकादित्वेन, भावतः श्यामादित्वेन, न रक्तादित्वेनेति। एवं स्यान्नास्त्येव सर्वमिति प्राधान्येन निषेधकल्पनया द्वितीयः। न चासत्त्वं काल्पनिकं। सत्त्ववदसत्त्वस्य स्वातन्त्र्येणानुभवात्। अन्यथा विपक्षासत्त्वस्य तात्त्विकस्याभावेन हेतोस्त्रैरूप्यव्याघातप्रसङ्गात्। स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति प्राधान्येन क्रमिकविधिनिषेधकल्पनया तृतीयः। स्यादवक्तव्यमेवेति युगपत्प्राधान्येन विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः। एकेन पदेन युगपदुभयोर्वक्तुमशक्यत्वात्। शतृशानचौ सदित्यादौ साके-

तिकपदेनापि क्रमशार्पितद्वयबोधनादन्यतरत्वादिना कथञ्चिदुभयबोधनेऽपि प्रातिस्विकरूपेणोभयबोधस्य अन्यतरादि-
ऽनुपपादकत्वात् । स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च पञ्चमः । स्यान्नास्त्येव स्याद्
वक्तव्यमेवेति निषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च षष्ठः । स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिनि
षेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च सप्तम इति । सेयं सप्तभङ्गी प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ।
तत्र प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सक-
लादेशः । नयविषयीकृतस्य वस्तुधर्मस्य भेदवृत्तिप्राधान्याद्भेदोपचाराद्वा क्रमेणाभिधायकं वाक्यं विकलादेशः । ननु कः
क्रमः, किं वा यौगपद्यं ? उच्यते—यदास्तित्वादिधर्माणां कालादिभिर्भेदविवक्षा तदैकस्य शब्दस्यानेकार्थप्रत्यायने शक्त्यभावात्
क्रमः । यदा तु तेषामेव धर्माणां कालादिभिरभेदेन वृत्तमात्मरूपमुच्यते तदैकेनापि शब्देनैकधर्मप्रत्यायनमुखेन तदात्मक-
तामापन्नस्यानेकाशेषरूपस्य वस्तुनः प्रतिपादनसम्भवाद्यौगपद्यम् । के पुनः कालादयः ? उच्यते—काल आत्मरूपमर्थः सम्बन्ध
उपकारः गुणिदेशः संसर्गः शब्द इत्यष्टौ । तत्र स्याज्जीवादि वस्त्वस्त्येव । अत्र यत्कालमस्तित्वं तत्कालाः शेषानन्तधर्मा
वस्तुन्येकत्रेति तेषां कालेनाभेदवृत्तिः । यदेव चास्तित्वस्य तद्गुणत्वमात्मरूपं तदेवान्यानन्तगुणानामपीत्यात्मरूपेणाभेदवृ-
त्तिः । य एव चाधारोऽर्थो द्रव्याख्योऽस्तित्वस्य स एवान्यपर्यायाणामित्यर्थेनाभेदवृत्तिः । य एव चाविष्वग्भावः सम्बन्धो-
ऽस्तित्वस्य स एवान्येषामिति सम्बन्धेनाभेदवृत्तिः । य एव चोपकारोऽस्तित्वेन स्वानुरक्तत्वकरणं स एवान्यैरपि गुणैरित्युपकारेणा-
भेदवृत्तिः । य एव गुणिनः संबन्धी देशः क्षेत्रलक्षणोऽस्तित्वस्य स एवान्येषामिति गुणिदेशेनाभेदवृत्तिः । य एव चैक-

सम्बन्धविशिष्टः संसर्गः स एवान्येषामिति संसर्गेणाभेदवृत्तिः, गुणिनश्चभेदाभेदप्रधानात् सम्बन्धाद्विपर्ययेण संसर्गस्य भेदः। य एव चास्तीति शब्दोऽस्तित्वधर्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकः स एवाशेषानन्तधर्मात्मकस्यापीति शब्देनाभेदवृत्तिः, पर्यायार्थिकनयगुणभावेन द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते। द्रव्यार्थिकगुणभावेन पर्यायार्थिकप्राधान्ये तु न गुणानामभेदवृत्तिः संभवति, समकालमेकत्र नानागुणानामसम्भवात्, सम्भवे वा तदाश्रयस्य भेदप्रसङ्गात्। नानागुणानां सम्बन्धिन आत्मरूपस्य च भिन्नत्वात्, अन्यथा तेषां भेदविरोधात्, स्वाश्रयस्यार्थस्यापि नानात्वात्, अन्यथा नानागुणाश्रयत्वविरोधात्। सम्बन्धस्य च सम्बन्धिभेदेन भेददर्शनात्, नानासम्बन्धिभिरेकत्रैकसम्बन्धाघटनात्। तैः क्रियमाणस्योपकारस्य च प्रतिनियतरूपस्यानेकत्वात्, अनेकैरुपकारिभिः क्रियमाणस्योपकारस्यैकस्य विरोधात्। गुणिदेशस्य च प्रतिगुणं भेदात्, तदभेदे भिन्नार्थगुणानामपि गुणिदेशाभेदप्रसङ्गात्, संसर्गस्य च प्रतिसंसर्गिभेदात्, तदभेदे संसर्गिभेदविरोधात्। शब्दस्य च प्रतिविषयं नानात्वात्, सर्वगुणानामेकशब्दवाच्यतायां सर्वार्थानामेकशब्दवाच्यतापत्तेरिति कालादिभिर्भिन्नात्मनामभेदोपचारः क्रियते। एवं भेदवृत्तितदुपचारावपि वाच्याविति पर्याप्तमिह परोक्षम्। ततश्च निरूपितः प्रमाणपदार्थः॥

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिशिष्यमुख्यपण्डितश्रीलाभविजयगणिशिष्यावतंसपण्डितश्री-
जितविजयगणिसतीर्थ्यपण्डितश्रीनयविजयगणिशिष्येण पण्डितश्रीपद्मविजयगणिसहोदरेण पण्डित-
यशोविजयगणिना कृतायां जैनतर्कभाषायां प्रमाणपरिच्छेदः॥

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मन्यमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परः संग्रहः । यथा विश्वमेकं सदविशेषादिति । द्रव्यत्वादीन्यवान्तरसामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानः पुनरपरसंग्रहः । संग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः । यत्सत् तद्द्रव्यं पर्यायो वा, यद्द्रव्यं तज्जीवादिषड्विधं, यः पर्यायः स द्विविधः, क्रमभावी सहभावी चेत्यादि । ऋजु वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूचयन्नभिप्राय ऋजुसूत्रः । यथा सुखविवर्तः सम्प्रत्यस्ति । अत्र हि क्षणस्थायि सुखाख्यं पर्यायमात्रं प्राधान्येन प्रदर्श्यते, तदधिकरणभूतं पुनरात्मद्रव्यं गौणतया नार्प्यत इति । कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः । कालकारकलिंगसंख्यापुरुषोपसर्गाः कालादयः । तत्र बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरित्यत्रातीतादिकालभेदेन सुमेरोर्भेदप्रतिपत्तिः, करोति क्रियते कुम्भ इत्यादौ कारकभेदेन, तटस्तटी तटमित्यादौ लिंगभेदेन, दाराः कलत्रमित्यादौ संख्याभेदेन, यास्यसि त्वं यास्यति भवानित्यादौ पुरुषभेदेन, संतिष्ठते अवतिष्ठते इत्याद्युपसर्गभेदेन । पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढः । शब्दनयो हि पर्यायभेदेऽप्यर्थाभेदमभिप्रैति, समभिरूढस्तु पर्यायभेदे भिन्नानर्थानभिमन्यते । अभेदं त्वर्थगतं पर्यायशब्दानामुपेक्षत इति । यथा इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पूर्दारणात्पुरन्दर इत्यादि । शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतः । यथेन्दनमनुभवन्निन्द्रः । समभिरूढनयो हीन्दनादिक्रियायां सत्यामसत्यां च वासवादेरर्थस्येन्द्रादिव्यपदेशमभिप्रैति, क्रियोपलक्षितसामान्यस्यैव प्रवृत्तिनिमित्तत्वात्, पशुविशेषस्य गमनक्रियायां सत्यामसत्यां च गोव्यपदेशवत्, तथारूढेः सद्भावात् । एवंभूतः पुनरिन्दनादिक्रियापरिणतमर्थं तत्क्रियाकाले इन्द्रादिव्यपदेशभाजमभिमन्यते । न हि कश्चित् क्रियाशब्दोऽस्या-

न्ति । गौरश्व इत्यादिजातिशब्दाभिमता अपि क्रियाशब्दत्वात् । गच्छतीति गौः, आशुगामित्वादश्व इति । शुक्लो, नील इति गुणशब्दाभिमता अपि क्रियाशब्दा एव, शुचीभवनाच्छुक्लो, नीलनान्नील इति । देवदत्तो यज्ञदत्त इति यदृच्छाशब्दाभिमता अपि क्रियाशब्दा एव, देव एनं देयात्, यज्ञ एनं देयादिति । संयोगिद्रव्यशब्दाः समवायिद्रव्यशब्दाश्चाभिमताः क्रियाशब्दा एव, दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी । विषाणमस्यास्तीति विषाणीत्यस्तिक्रियाप्रधानत्वात् । पञ्चतयी तु शब्दानां व्यवहारमात्रात्, न तु निश्चयादित्ययं नयः स्वीकुरुते । एतेष्वाद्याश्चत्वारः प्राधान्येनार्थगोचरत्वादर्थनयाः, अन्त्यास्तु त्रयः प्राधान्येन शब्दगोचरत्वाच्छब्दनयाः । तथा विशेषग्राहिणोऽर्पितनयाः, सामान्यग्राहिणश्चानर्पितनयाः । तत्रानर्पितनयमते तुल्यमेव रूपं सर्वेषां सिद्धानां भगवताम् । अर्पितनयमते त्वेकद्वित्र्यादिसमयसिद्धाः स्वसमानसमयसिद्धैरेव तुल्या इति । तथा लोकप्रसिद्धार्थानुवादपरो व्यवहारनयः, यथा पञ्चस्वपि वर्णेषु भ्रमरे सत्सु श्यामो भ्रमर इति व्यपदेशः । तात्त्विकार्थाभ्युपगमपरस्तु निश्चयः, स पुनर्मन्यते पञ्चवर्णो भ्रमरः, बादरस्कन्धत्वेन तच्छरीरस्य पञ्चवर्णपुद्गलैर्निष्पन्नत्वात्, शुक्लादीनां च न्यग्भूतत्वेनानुपलक्षणात् । अथवा एकनयमतार्थग्राही व्यवहारः, सर्वनयमतार्थग्राही च निश्चयः । न चैवं निश्चयस्य प्रमाणत्वेन नयत्वव्याघातः, सर्वनयमतस्यापि स्वार्थस्य तेन प्राधान्याभ्युपगमात् । तथा ज्ञानमात्रप्राधान्याभ्युपगमपरा ज्ञाननयाः । क्रियामात्रप्राधान्याभ्युपगमपराश्च क्रियानयाः । ऋजुसूत्रादयश्चत्वारो नयाश्चारित्रलक्षणायाः क्रियाया एव प्राधान्यमभ्युपगच्छन्ति, तस्या एव मोक्षं प्रत्यव्यवहितकारणत्वात् । नैगमसंग्रहव्यवहारास्तु यद्यपि चारित्रश्रुतसम्यक्त्वानां त्रयाणामपि मोक्षकारणत्वमिच्छन्ति, तथापि व्यस्तानामेव, न तु समस्तानां, एतन्मते ज्ञानादित्रयादेव मोक्ष इत्यनियमात्,

अन्यथा त्यत्वहानिप्रसंगात्, समुदयवादस्य स्थितपद्त्वादिति द्रष्टव्यम् । क पुनरत्र बहुविषयो नय को वाऽल्पविषय, इति चेदुच्यते-सन्मात्रगोचरात्संग्रहात्तावन्नैगमो बहुविषयो भावाभावभूमिकत्वात् । सद्विशेषप्रकाशकाद्व्यवहारत संग्रह समस्तसत्समूहोपदर्शकत्वाद्बहुविषय । वर्तमानविषयावलम्बिन ऋजुसूत्रात्कालत्रितयवर्त्यर्थजातावलम्बी व्यवहारो बहुविषय । कालादिभेदेन भिन्नार्थोपदेशकाच्छब्दात्तद्विपरीतवेदक ऋजुसूत्रो बहुविषय । न केवलं कालादिभेदेनैवर्जुसूत्रादल्पार्थता शब्दस्य, किं तु भावघटस्यापि सद्भावादिनाऽर्पितस्य स्याद्घटः स्यादघट इत्यादिभङ्गपरिकरितस्य तेनाभ्युपगमात् तस्यर्जुसूत्रादिशेषितरतरोपदेशात् । यद्यपीदृशसपूर्णसप्तभङ्गपरिकरित वस्तु स्याद्वादिन एव सङ्गिरन्ते, तथापि ऋजुसूत्रकृततद-भ्युपगमापेक्षयाऽन्यतरभङ्गेन विशेषितप्रतिपत्तिरत्राऽदुष्टेत्यदोष इति वदन्ति । प्रतिपर्यायशब्दमर्थभेदमभीप्सत समभि-रूढाच्छब्दस्तद्विपर्ययानुयायित्वाद्बहुविषय । प्रतिक्रिय विभिन्नमर्थं प्रतिजानानादेवंभूतात्समभिरूढ तदन्यथार्थस्थापकत्वाद्बहुविषय । नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमान विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुगच्छति, विकलादेशत्वात्, परमेतद्वाक्यस्य प्रमाणवाक्याद्विशेष इति द्रष्टव्यम् ॥

अथ नयाभासा । तत्र द्रव्यमात्रग्राही पर्यायप्रतिक्षेपी द्रव्यार्थिकाभास । पर्यायमात्रग्राही द्रव्यप्रतिक्षेपी पर्यायार्थिकाभास । धर्मिधर्मादीनामैकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभास, यथा नैयायिकवैशेषिकदर्शन । सत्ताद्वैत स्वीकुर्वाणः सकलविशेषान्निराचक्षाण संग्रहाभास, यथाऽखिलान्यद्वैतवादिदर्शनानि सांख्यदर्शन च । अपारमार्थिकद्रव्यपर्यायविभागाभिप्रायो व्यवहाराभास, यथा चार्वाकदर्शन, चार्वाको हि प्रमाणप्रतिपन्नं जीवद्रव्यपर्यायादिप्रविभाग कल्पनारोपि

तत्वेनाप्रकृतेऽविचारितरमणीय भूतमनुष्यमभिजागमात्र तु स्थूलव्यवहारानुयायितया समर्थयेत इति। वर्तमानपर्या याभ्युपगन्ता सर्वथा द्रव्यापलापी ऋजुसूत्राभास, यथा तथागतमत। कालादिभेदेनार्थभेदमेवाभ्युपगच्छन् शब्दाभास, यथा बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरित्यादय शब्दा भिन्नमेवार्थमभिदधति, भिन्नकालशब्दत्वात्तादृक्सिद्धान्यशब्दवदिति। पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाण समभिरूढाभास, यथा इन्द्र शक्र पुरन्दर इत्यादय शब्दा भिन्नाभिधेया एव, भिन्नशब्दत्वात्, करिकुरङ्गशब्दवदिति। क्रियानाविष्ट वस्तु शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपन्नेवंभूताभासः, यथा विशिष्टचेष्टाशून्य घटाख्य वस्तु न घटशब्दवाच्यं, घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाशून्यत्वात्, पटवदिति। अर्थाभिधायी शब्दप्रतिक्षेपी अर्थनयाभास। शब्दाभिधाय्यर्थप्रतिक्षेपी शब्दनयाभास। अर्पितमभिदधानोऽनर्पित प्रतिक्षिपन्नर्पितनयाभासः। अनर्पितमभिदधदर्पित प्रतिक्षिपन्ननर्पिताभास। लोकव्यवहारमभ्युपगम्य तत्त्वप्रतिक्षेपी व्यवहाराभास। तत्त्वमभ्युपगम्य व्यवहारप्रतिक्षेपी निश्चयाभास। ज्ञानमभ्युपगम्य क्रियाप्रतिक्षेपी ज्ञाननयाभास। क्रियामभ्युपगम्य ज्ञानप्रतिक्षेपी क्रियानयाभास इति॥

॥ इति महामहोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिशिष्यमुख्यपण्डितश्रीलाभविजयगणिशिष्यावतंसश्रीजीतविजय गणिसतीर्थ्यपण्डितश्रीनयविजयगणिशिष्येण पण्डितश्रीपद्मविजयगणिसहोदरेण पण्डितयशोविजय गणिना विरचितायां जैनतर्कभाषायां नयपरिच्छेदः ॥ २ ॥

॥ अथ निक्षेपपरिच्छेदः ॥

नया निरूपिताः । अथ निक्षेपा निरूप्यन्ते । प्रकरणादिवशेनाप्रतिपत्त्यादिव्यवच्छेदकयथास्थानविनियोगाय शब्दार्थरचनाविशेषा निक्षेपाः । मङ्गलादिपदार्थनिक्षेपान्नाममङ्गलादिविनियोगोपपत्तेश्च निक्षेपाणां फलवत्त्वम् । तदुक्तम्–"अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च निक्षेपः फलवानिति" । ते च सामान्यतश्चतुर्धा, नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात् । तत्र प्रकृतार्थनिरपेक्षा नामार्थान्यतरपरिणतिर्नामनिक्षेपः । यथा सङ्केतितमात्रेणान्यार्थस्थितेनेन्द्रादिशब्देन वाच्यस्य गोपालदारकस्य शक्रादिपर्यायशब्दानभिधेया परिणतिरियमेव वा यथान्यत्रावर्तमानेन यदृच्छाप्रवृत्तेन डित्थडवित्थादिशब्देन वाच्या । तत्त्वतोऽर्थनिष्ठोपचारतः शब्दनिष्ठा च मेर्वादिनामापेक्षया यावद्द्रव्यभाविनी, देवदत्तादिनामापेक्षया वा यावद्द्रव्यभाविनी, यथा वा पुस्तकपत्रचित्रादिलिखिता वस्त्वभिधानभूतेन्द्रादिवर्णावली । यत्तु वस्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण स्थाप्यते चित्रादौ तादृशाकारमक्षादौ च निराकारं, चित्राद्यपेक्षयेत्वरं नन्दीश्वरचैत्यप्रतिमाद्यपेक्षया च यावत्कथिकं स स्थापनानिक्षेपः, यथा जिनप्रतिमा स्थापनाजिनः । यथा चेन्द्रप्रतिमा स्थापनेन्द्रः । भूतस्य भाविनो वा भावस्य कारणं यन्निक्षिप्यते स द्रव्यनिक्षेपः, यथाऽनुभूतेन्द्रपर्यायोऽनुभविष्यमाणेन्द्रपर्यायो वा इन्द्रः, अनुभूतघृताधारत्वपर्यायेऽनुभविष्यद्घृताधारत्वपर्याये च घृतघटव्यपदेशवदत्रेन्द्रशब्दव्यपदेशोपपत्तेः । क्वचिदप्राधान्येऽपि द्रव्यनिक्षेपः प्रवर्तते, यथाऽङ्गारमर्दको द्रव्याचार्यः, आचार्यगुणरहितत्वात् अप्रधानाचार्य इत्यर्थः । क्वचिदनुपयोगेऽपि, यथाऽनाभोगेनेहपरलोकाद्याशंसालक्षणेनाविधिना च भक्त्यापि क्रियमाणा जिनपूजादिक्रिया द्रव्यक्रियैव, अनुपयुक्तक्रियायाः साक्षान्मोक्षाङ्गत्वाना-

[illegible] । [illegible] [illegible] भावनामश्रुतं, नक्तिगुणेनाविधिदोषस्य निरनुबन्धी [illegible] । [illegible] यन्निन्चितं स भावनिक्षेप, यथा इन्दनक्रियापरिणतो भा[illegible] इति । ननु [illegible] नामादीनां क [illegible] वृत्त्यविशेषात्, तथाहि–नाम तावन्नामवति पदार्थे [illegible] भावेऽपि । स्थापनाऽपि त्रिष्वपि समान, भावस्याभावात् । द्रव्यमपि [illegible] द्रव्ये सुतरां वृत्तेश्चेति विरुद्धधर्माध्यासाभावाभेदा [illegible] स्थानान्तरेण विरुद्धधर्माध्यासाद्भेदोपपत्ते । तथाहि–नाम- [illegible] यथा हि स्थापनेन्द्रे लोचनसहस्राद्याकार , स्थापना- [illegible] नक्तिसहितानुबन्धीना नमस्करणादिक्रिया, तत्फलं च पुत्रोत्प- [illegible] भेदः । द्रव्यमपि भावपरिणामिकारणत्वान्नामस्थापना [illegible] भावस्य कारणं भवति, यथा वा साधुजीवो [illegible] । नामापि स्थापनाद्रव्याभ्यामुपयोगधर्मादेव भिद्यत इति [illegible] स्थापनादीनां स्वविद्धरपानदअपि रूपान्तरेण भेद इति स्थितम् । [illegible] नन्दादीनामपि सम्पुरूपात्मन सामान्यतो भावत्वानतिक्रमात्, [illegible] । [illegible] विशेषाभावात् । भावाभावेनैव या

नामादीनामुपयोग जिननामजिनस्थापनापरिनिर्वृतमुनिदेहदर्शनाद्भावोल्लासानुभवात्। केवलं नामादित्रयं भावोल्लासेनैका न्तिकमनात्यन्तिकं च कारणमिति एकान्तिकात्यन्तिकस्य भावस्याभ्यर्हितत्वमनुमन्यन्ते प्रवचनवृद्धाः । एतच्च जिनवस्तु- गतनामाद्यपेक्षयोक्तम्। अजिनवस्तुगतानां तु नामादीनां भावाविनाभूतत्वादेव वस्तुत्वं, सर्वस्य वस्तुनः स्वाभिधानस्य नामरूपत्वात्, स्वाकारस्य स्थापनारूपत्वात्, कारणतायाश्च द्रव्यरूपत्वात्, कार्यापन्नस्य च स्वस्य भावरूपत्वात्। यदि च पटनाम घटधर्मो न भवेत्तदा ततस्तत्संप्रत्ययो न स्यात्, तस्य स्वापृथग्भूतसम्बन्धनिमित्तकत्वादिति सर्वं नामात्मकमेष्ट- व्यम्। साकारं च सर्वं मतिशब्दघटादीनामाकारवत्त्वान्नीलाकारसंस्थानविशेषादीनामाकाराणामनुभवसिद्धत्वात् । द्रव्या त्मकं च सर्वं उत्फणविफणकुण्डलिताकारसमन्वितसर्पवद्विकाररहितस्याविर्भावतिरोभावमात्रपरिणामस्य द्रव्यस्यैव सर्वत्र सर्वदानुभवात्। भावात्मकं च सर्वं परापरकार्यक्षणसन्तानात्मकस्यैव तस्यानुभवादिति । चतुष्टयात्मकं जगदिति नामादि- नयसमुदायवादः । अथ नामादिनिक्षेपा नयैः सह योज्यन्ते । तत्र नामादित्रयं द्रव्यास्तिकनयस्यैवाभिमतं, पर्यायास्तिकन- यस्य च भाव एव। आद्यस्य भेदौ संग्रहव्यवहारौ। नैगमस्य यथाक्रमं सामान्यग्राहिणो विशेषग्राहिणश्च अनयोरेवान्तर्भा- वात्। ऋजुसूत्रादयश्च चत्वारो द्वितीयस्य भेदा इत्याचार्यसिद्धसेनमतानुसारेणाभिहितं । जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यपादैः "नामाइतियं दव्वट्ठियस्स भावो अ पज्जवणयस्स । संगहववहारा पढमगस्स सेसा उ इयरस्स " इत्यादिना विशेषावश्यके। स्वमते तु नमस्कारनिक्षेपविचारस्थले "भावं चिय सद्दणया सेसा इच्छंति सव्वणिक्खेवे " इति वचसा त्रयोऽपि शब्दनयाः शुद्धत्वाद्भावमेवेच्छन्ति । ऋजुसूत्रादयस्तु चत्वारश्चतुरोऽपि निक्षेपानिच्छन्ति अविशुद्धत्वादित्युक्तम्। ऋजुसूत्रो नामभावनिक्षे-

पायेनेच्छतीत्यन्ये, तन्न, ऋजुसूत्रेण द्रव्याभ्युपगमस्य सूत्राभिहितत्वात्, पृथक्त्वाभ्युपगमस्य परं निषेधात्। तथा च सूत्रम् " उज्जुसुअस्स एगे अणुवउत्ते आगमओ एगं दव्वावस्सयं, पुहत्तं नेच्छइ त्ति "। कथं चायं पिण्डावस्थायां सुवर्णादिद्रव्यम् आगामिकुण्डलादिपर्यायलक्षणभावहेतुत्वेनाभ्युपगच्छन् विशिष्टेन्द्राद्यभिलापहेतुभूतां साकारामिन्द्रादिस्थापनां नेच्छेत्, न हि दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति। किं चेन्द्रादिसंज्ञामात्रं तदर्थरहितमिन्द्रादिशब्दवाच्यं वा नामेच्छन्नयं भावकारणत्वाविशेषात् कुतो नामस्थापने नेच्छेत्? प्रत्युत सुतरां तदभ्युपगमो न्याय्यः। इन्द्रमूर्तिलक्षणद्रव्यविशिष्टतदाकाररूपस्थापनयोरिन्द्रपर्यायरूपे भावे तादात्म्यसम्बन्धेनावस्थितत्वात्तत्र वाच्यवाचकभावसम्बन्धेन सम्बद्धान्नाम्नोऽपेक्षया सन्निहिततरकारणत्वात्। संग्रहव्यवहारौ स्थापनावर्जांस्त्रीन्निक्षेपानिच्छत इति केचित्तन्नानवद्यं यतः संग्रहिकोऽसंग्रहिकोऽनर्पितभेदः परिपूर्णो वा नैगमस्तावत् स्थापनामिच्छतीत्यवश्यमभ्युपेयम्। संग्रहव्यवहारयोरन्यत्र द्रव्यार्थिके स्थापनाभ्युपगमावर्जनात्। तत्राद्यपक्षे संग्रहे स्थापनाभ्युपगमप्रसंग, संग्रहनयमतस्य संग्रहिकनैगममताविशेषाद्द्वितीये व्यवहारे तदभ्युपगमप्रसंग, तन्मतस्य व्यवहारमताविशेषात्, तृतीये च निरपेक्षयोः संग्रहव्यवहारयोः स्थापनानभ्युपगमोपपत्तावपि समुदितयोः संपूर्णनैगमरूपत्वात्तदभ्युपगमस्य दुर्निवारत्व। अविभागस्थान्नैगमात्प्रत्येकं तदेकैकभागग्रहणात्। किं च संग्रहव्यवहारयोर्नैगमान्तर्भावात्स्थापनाभ्युपगमलक्षणं तन्मतमपि तत्रान्तर्भूतमेव। उभयधर्मलक्षणस्य विषयस्य प्रत्येकमप्रवेशेऽपि स्थापनालक्षणस्यैकधर्मस्य प्रवेशस्य सूपपादत्वात्। स्थापनासामान्यतद्विशेषाभ्युपगममात्रेणैव संग्रहव्यवहारयोर्भेदोपपत्तेरिति च आगमज्ञा भावनीयम्। एतैश्च नामादिनिक्षेपैर्जीवादयः पदार्था निक्षेप्याः। तत्र यद्यपि यस्य जीवस्याजीवस्य वा जीव

इति नाम क्रियते स नामजीवः, देवदत्तादिप्रतिमा च स्थापनाजीवः, औपशमिकादिभाववशाली च भावजीव इति जीवविषयं निक्षेपत्रयं भवति, न तु द्रव्यनिक्षेपः। अयं हि तदा सम्भवेत्, यद्यजीवः सन्नायत्या जीवोऽभविष्यत्, यथाऽदेवः सन्नायत्या देवो भविष्यन् द्रव्यदेव इति। न चैतदिष्टं सिद्धान्ते। यतो जीवत्वमनादिनिधनं पारिणामिको भाव इष्यत इति, तथापि गुणपर्यायवियुक्तत्वेन बुद्ध्या कल्पितोऽनादिपारिणामिकभावयुक्तो द्रव्यजीवः, शून्योऽयं भङ्ग इति यावत्। सतां गुणपर्यायाणां बुद्ध्यापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात्। न खलु ज्ञानायत्तार्थपरिणतिः। किं त्वर्थो यथा यथा विपरिणमते तथा तथा ज्ञानं प्रादुरस्तीति। न चैवं नामादिचतुष्टयस्य व्यापिताभङ्गः, यतः प्रायः सर्वपदार्थेष्वन्येषु तत्सम्भवति। यद्येकस्मिन् सम्भवति नैतावता भवत्यव्यापितेति वृद्धाः। जीवशब्दार्थज्ञस्तत्रानुपयुक्तो द्रव्यजीव इत्यप्याहुः। अपरे तु वदन्ति-अहमेव मनुष्यजीवो द्रव्यजीवोऽभिधातव्यः, उत्तरं देवजीवमप्रादुर्भूतमाश्रित्य अहं हि तस्योत्पित्सोर्देवजीवस्य कारणं भवामि, यतश्चाहमेव तेन देवजीवभावेन भविष्यामि, अतोऽहमधुना द्रव्यजीव इति। एतत्कथितं तैर्भवति। पूर्वः पूर्वो जीवः परस्य परस्योत्पित्सोः कारणमिति। अस्मिंश्च पक्षे सिद्ध एव भावजीवो भवति, नान्य इत्येतदपि नानवद्यमिति तत्त्वार्थटीकाकृतः। इदं पुनरिहावधेयं-अत्र संसारिजीवे द्रव्यत्वेऽपि भावत्वाविरोधः, एकवस्तुगतानां नामादीनां भावाविनाभूतत्वप्रतिपादनात्। तदाह भाष्यकारः-"अहवा वत्थभिहाणं नामं ठवणा य जो तयागारो। कारणया से दव्वं कज्जावन्नं तयं भावो॥ १॥" इति। केवलमविशिष्टजीवापेक्षया द्रव्यजीवत्वव्यवहार एव न स्यात्, मनुष्यादेर्देवत्वादिविशिष्टजीवं प्रत्येव हेतुत्वादिति अधिकं नयरहस्यादौ विवेचितमस्माभिः॥

॥ इति महामहोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिशिष्यमुख्यपण्डितश्रीलाभविजयगणिशिष्यावतंसपण्डितश्रीजीतविजय-गणिसतीर्थ्यशिरःश्रीनयविजयगणिशिष्येण पण्डितश्रीपद्मविजयगणिसोदरेण पण्डितयशोविजयगणिना विरचितायां जैनतर्कभाषायां निक्षेपपरिच्छेदः संपूर्णः, तत्संपूर्तौ च संपूर्णोऽयं जैनतर्कभाषाग्रन्थः ॥

सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ, सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरौ शक्रासनं भेजुषि ।
तत्सेवाप्रतिमप्रसादजनितश्रद्धानशुद्ध्या कृतो, ग्रन्थोऽयं वितनोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥ १ ॥
यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया, भ्राजन्ते सनया नयादिविजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ।
प्रेम्णां यस्य च सद्म पद्मविजयो जातः सुधीः सोदरस्तेन न्यायविशारदेन रचिता स्तात्तर्कभाषा मुदे ॥ २ ॥

तर्कभाषामिमां कृत्वा मया यत्पुण्यमर्जितम् ।
प्राप्नुयां तेन विपुलां परमानन्दसंपदम् ॥ ३ ॥

पूर्वं न्यायविशारदत्वबिरुदं काश्यां प्रदत्तं बुधैर्न्यायाचार्यपदं ततः कृतशतग्रन्थस्य यस्यार्पितम् ।
शिष्यप्रार्थनया नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशुस्तत्त्वं किंचिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥ ४ ॥

---

१ [illegible]

॥ इति श्रीजैनतर्कभाषा समाप्ता ॥

॥ अथ ज्ञानबिन्दु ॥

[illegible]मनतं नत्वा वीरं तत्त्वार्थदेशिनम्। ज्ञानबिन्दुः श्रुताम्भोधेः सम्यगुद्ध्रियते मया॥१॥

तत्र ज्ञानं [illegible]ग्यो गुणः, स चाभ्रपटलविनिर्मुक्तस्य भास्वत इव निरस्तसमस्तावरणस्य [illegible] भण्यते। तदाहुराचार्याः – "केवलनाणमणंतं जीवसरूवं तयं निरावरणं" इति। [illegible]वारीतु व्याव्रियते, तथापि तस्यानन्ततमो भागो नित्यानावृत [illegible]-"[illegible]अक्खरस्स अणंततमो भागो णिच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ, सो वि अ जइ [illegible], [illegible]" इति [illegible]नात्। अत्र च स्वभाव केवलज्ञानावरणावृतस्य जीवस्य [illegible]। तत्र तु केवलज्ञानावरणमेव। केवलज्ञानव्यावृत्तज्ञानत्वव्याप्यजातिविशे[illegible]। [illegible]दिनापि मतिज्ञानाद्युत्पादनमगम। अत एव चास्य [illegible]। [illegible]स्वनुकूटे चतुराधावरणे वस्त्रादावेव दृष्ट, न सूरकटे [illegible], अत एवात्र सुट्ठु वि मेघसमुदए होंति पभा [illegible] दिनरजनीविभागहेतुस्वप्रकाशनञ्जीवेऽप्यन्वयव्यावर्तकत्वे [illegible]। [illegible]रमिति तत्त्वनिरूपणपर्यायात्मना भेदाभेदवादेन निर्णी-

वनीयं। ये तु चिन्मात्राश्रयविषयमज्ञानमिति विवरणाचार्यमताश्रयिणो वेदान्तिनस्तेषामेकान्तवादिना महत्यनुपपत्तिरेवा-
ज्ञानाश्रयत्वेनानावृतं चैतन्यं यत्तदेव तद्विषयतयावृतमिति विरोधात्। न चाखण्डत्वाद्यज्ञानविषयश्चैतन्यं त्वाश्रय इत्यवि-
रोध, अखण्डत्वादश्चिद्रूपत्वे भासमानस्यावृतत्वायोगात्, अचिद्रूपत्वे च जडे आवरणायोगात्। कल्पितभेदेनाखण्डत्वादि-
विषय इति चेन्न,भिन्नावरणे चैतन्यानावरणात्, परमार्थतो नास्त्येवावरणं चैतन्ये,कल्पितं तु शुक्तौ रजतमिव तत्त्वाविरुद्ध,
तेनैव च चित्त्वाखण्डत्वादिभेदकल्पनाचैतन्यं स्फुरति नाखण्डत्वादित्येवरूपाधीयमाना न विरुद्धेति चेन्न, कल्पितेन रजतेन
रजतकार्यवत्कल्पितेनानावरणेनावरणकार्यायोगात्। अहं मां न जानामीत्यनुभव एव कर्मत्वांशे आवरणविषयकः कल्पि
तस्यापि तस्य कार्यकारित्वमाचष्टेऽज्ञानरूपक्रियाजन्यस्यातिशयस्यावरणरूपस्यैव प्रकृते कर्मत्वात्मकत्वात्, अत एवास्य सा
क्षित्वदृष्टेन स्वगोचरप्रमाणापेक्षया न निवृत्तिप्रसंग इति चेन्न मां न जानामीत्यस्य विशेषज्ञानाभावविषयत्वात्, अन्यथा
मां जानामीत्यनेन विरोधात्, इष्टश्चेत्थं न किमपि जानामीत्यादिर्मध्यस्थाना प्रयोगः। किं च विशिष्टाविशिष्टयोर्भेदा-
भेदानुपगमं विनाऽखण्डत्वादिविशिष्टचैतन्यज्ञानेन विशिष्टावरणनिवृत्तावपि शुद्धचैतन्याप्रकाशप्रसंगः, विशिष्टस्य कल्पित-
त्वादविशिष्टस्य चाननुभवात्, महावाक्यस्य निर्धर्मकविषयत्वं चाग्रे निराकरिष्याम। एतेन जीवाश्रयं ब्रह्मविषयं चाज्ञा-
नमिति वाचस्पतिमिश्राभ्युपगमोऽपि निरस्तः।जीवब्रह्मणोरपि कल्पितभेदत्वात्, व्यावहारिकभेदेऽपि जीवनिष्ठाविद्यया तत्रैव
प्रपंचोत्पत्तिप्रसंगात्। न चाहंकारादिप्रपंचोत्पत्तिस्तत्रैष्टैवाकाशादिप्रपंचोत्पत्तिस्तु विषयपक्षपातिन्या अविद्याया ईश्वरेऽस-

१ विषमकन्यविषयत्वम्।

[illegible] गुणत्वमिति चेत्, अज्ञानमयत्वं [illegible] ईश्वरस्येऽप्यज्ञातृत्व रजतोपादानत्वं तस्याकाशादिप्रपञ्चोपादान
[illegible] र्थरजतोपादानत्वात् [illegible] श्रीमन्मधुसूदन रजतज्ञानमिदंमंशावच्छेदेन रजतोत्पादकमिति तथा सूत्र । शुक्त्यज्ञानं
[illegible] पूर्वकत्वेन, तथा प्रकृते तु [illegible] किंचिदेतत्, अवच्छेदानियमेन हेतुत्वे चाहङ्कारादेरपीश्वरे उत्पत्ति
[illegible] प्रसङ्गादिति [illegible], तस्मादत्र [illegible] केवलज्ञानावरणावृतोऽप्यनन्ततमभागावशिष्टोऽनावृत एव ज्ञान-
[illegible] योऽनन्तपर्यायस्वभावनिमूर्तिमप्रकाशनामधेयो नानुपपन्न, स चापान्तरालावस्थितमतिज्ञाना
[illegible] नानारूपतां भजते, घनपटलाच्छन्नस्य रवेर्मन्दप्रकाश इवान्तरालावस्थकटकुड्याद्यावरणक्षयोपशमभेद-
[illegible] । इत्थं च आभिनिबोधिकादि [illegible] मतिज्ञानादिरूपमन्दप्रकाशस्योपाधिभेदसंपादितभ-
[illegible] महाभाष्यकार, अत एव द्वितीयापूर्वकरणे तात्त्विक
[illegible] इति तत्र तत्र हरिभद्राचार्यैर्निरूपितम् । निरूपितं च योगय-
[illegible] चारित्रधर्मस्य गुणस्थानम् । न च एवं केवलज्ञाना-
[illegible] मतिज्ञानावरणादिना नावरणमत्र इति, कर्मणि स्वानावारक
[illegible] भावात्, तस्य च मतिज्ञानावरणादिप्रकृतिनियतविशिष्टत्वात् । कथं तर्हि क्षयोपशम
[illegible] हि कर्मणां प्रत्येकमनन्तानि रसस्पर्धकानि भवन्ति, तत्र केवलज्ञा
[illegible] प्रकृतीनां सर्वघातिनीनां यान्यपि रसस्पर्धकानि

[illegible] सर्वघातिप्रकृतीनां देशघातिनीनां रसस्पर्धकानि यानि चतुःस्थानकानि यानि [illegible] सर्वघातीन्येव, द्विस्थानकानि तु कानिचित् सर्वघातीनि कानिचिच्च देशघातीनि, एकस्थानकानि [illegible] देशघातीन्येव । तत्र ज्ञानावरणचतुष्कदर्शनावरणत्रयसंज्वलनचतुष्कान्तरायपञ्चकपुंवेदलक्षणानां सप्तदशप्र[illegible] [illegible] बन्धमधिकृत्य प्राप्यन्ते, शेषाणां [illegible] द्विस्थानकस्य त्रिस्थानकस्य चतुःस्थानकस्य [illegible] [illegible] सर्वेषु भागेषु गतेष्वत्यन्तविशुद्ध्यध्यवसायेना[illegible] [illegible] बन्धमधिकृत्य द्विस्थानकरसास्त्रिस्थानकरसाश्चतुःस्थानकरसाश्च [illegible] । यत उक्तं— "सप्तदशव्यतिरिक्तानां हास्यादीनामशुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसम[illegible] [illegible] न, यतः [illegible] बन्धयोग्या परमप्रकर्षप्राप्ता शुद्धिरनिवृत्तिबाद[illegible] [illegible] तदा [illegible] न ता आयान्तीति" । न च यथा श्रेण्यारोहेऽनिवृत्तिबाद[illegible] [illegible] निर्मुक्तानां [illegible] नामेकस्थानकरसबन्ध , तथा क्षपकश्रेण्यारोहे सू[illegible] [illegible] स्थानीय विशुद्धत्वात् [illegible] एकस्थानकरसबन्धः [illegible] [illegible] सर्वघातित्वात्, सर्वघातिना च जघन्यपदेऽपि द्विस्थानकरसस्यैव [illegible] [illegible] स्थानकस्यैव [illegible], ततो मन्दमन्दतरविशुद्धौ तु त्रिस्था[illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] ।

मिथ्यादृष्टी नरकगतिप्रायोग्या यदि बध्नाति तदा पुनरपि ... [illegible]

नक एव स्तो धन्यमायाति नरकस्थानक इति भावः। ननु ... [illegible]

प्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिर्भवति तत्कस्मात् सोऽपि ... किं न ... [illegible]

संख्यया स्थितिविशेषा भवन्ति, एकैकस्यां च स्थितौ ... [illegible]

प्रतिस्थितिविशेषमसंख्येया ये रसस्पर्धकसङ्घाताः ... [illegible]

तीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धेऽप्येकस्थानकमेव ... । उक्तं च "उक्कोसठिइ ... [illegible]

ज विइ अमरगुणिञ्झा ठ अणुभागा ॥ १ ॥ इति । ... [illegible]

विशुद्ध्यध्यवसायतो देशघातितया परिणमनेन निहतेषु, ... [illegible]

यरसस्पर्धकजातस्योदयावलिकामधिगम्य क्षये, शेषस्य च विपाकोदयविष्कम्भ ... [illegible]

दर्शनादयो गुणा क्षायोपशमिका प्रादुर्भवन्ति। तदुक्तम्—' ... [illegible]

यति ओहिनाणपज्जाउआ ॥१॥" निहतेषु देशघातिरस ... [illegible]

क्षयोपशमात् कतिपयदेशघातिरसस्पर्धकानां घोदयात् ... [illegible]

क्षयोपशमवृद्ध्या वर्धमानावधिज्ञानोत्पत्तिः। यदा चावधिज्ञानावरणादीनां ... [illegible]

तानि भवन्ति,तदा तद्विषय औदयिको भाव केवल ... [illegible]

[illegible] कदाचिद्विशिष्टगुणप्रतिपत्त्या कदाचिच्च तामन्तरेणैव स्यात्, भवप्रत्ययगुणप्रत्ययभेदेन तस्य द्वैविध्योपदर्शनात्। [illegible] तु विशिष्टसंयमप्रमादादिप्रतिपत्तावेव तथास्वभावानामेव बन्धकाले तेषां बन्धनात्, चक्षुर्दर्श- [illegible] सर्वादिद्रव्यपर्यायादिघटितसामग्र्या तथापरिणाम । मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां तु [illegible] रसस्पर्धकानामुदयो न सर्वघातिनां, ततः सदैव तासामौदयिकक्षायोपशमिकौ भावौ समिश्रौ प्राप्येते, [illegible] इति [illegible] पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्। एतच्च तासां सर्वघातिरसस्पर्धकानि येन तेनाध्यवसायेन देशघा- [illegible] क्षयोपशम इति उपपद्यतेऽन्यथा बन्धोपनीतानां मतिज्ञानावरणादिदेशघातिरसस्पर्धकानामनिवृत्ति- [illegible] गतेष्वेव संभवात्सदैव मतिज्ञानाद्यभावप्रसङ्ग, तदभावे च तद्वलन्यतदवस्थासानानु- [illegible] मतिज्ञानादीनां मूलत एवाभावप्रसङ्गात्। एवं मतिश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनादीनामपि क्षायो- [illegible] निरसस्पर्धकोदये तदज्ञानादेर्घातिरसस्पर्धकानां चार्वांगबन्धादध्यवसायमात्रेण सर्वघातिनो [illegible] तज्ज्ञानानुपपत्तिरिति ज्ञातनीयम्। ननु यदि येन तेनाध्यवसायेनोत्तरसस्पर्ध- [illegible] परिणामलक्षणाध्यवसाया तद्बन्ध एव किं प्रयोजनमिति चेत्तत्किं प्रयोजनान्तिनिया सा- [illegible] ॥ एवं हि पूर्वे प्रयोगे [illegible] धर्मं न प्राप्येत, तस्मात्प्रकृते हेतुम- [illegible] तद्बन्धसमयाध्यवसायेन सर्वदा तद्देशघातित्वपरिणामे च बाधका भा- [illegible] विनापि [illegible] क्षयोपशमोऽविरुद्ध इति स्थितम्। मोहनीयस्य तु मिथ्या-

योऽनन्तानुबन्ध्यादिप्रकृतीनां प्रदेशोदये क्षायोपशमिको भावोऽविरुद्धो, न विपाकोदये, तासां सर्वघातिनीत्वेन तद्रसस्पर्ध-
कस्य यथाविधाध्यवसायेनापि देशघातितया परिणमयितुमशक्यत्वात्तस्य देशघातितया परिणामे तादात्म्येन देशघातिन्या
हेतुत्वकल्पनात् । विपाकोदयनिष्कर्षणं तु तासु सर्वघातिरसस्पर्धकानां क्षायोपशमिकसम्यक्त्वादिव्यवच्छेदकनिधायकसिद्धान्त-
वचन क्षयोपशमान्यथानुपपत्त्यैव तथाविधाध्यवसायेन कल्पनीयम् । केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोस्तु विपाकोदयनिष्कर्ष-
णोपाये भवति एव सर्वथापीति भाव । इदं च तावदेव तदनावरणत्वतुल्येन कल्प्यमानेऽध्यवसाये तत्र्यहेतुत्वकल्पनाया
पर्यवसितत्वमिति तु गूढं, तस्मान्मिथ्यात्वादिप्रकृतीनां विपाकोदये न क्षयोपशमसम्भव, किं तु प्रदेशोदये । न च सर्वघाति-
रसस्पर्धकप्रदेशा अपि सर्वस्वघात्यगुणघातकस्वभावा इति तत्प्रदेशोदयेऽपि कथं क्षायोपशमिकभावसम्भव इति वाच्यम्,
तेषां सर्वघातिरसस्पर्धकस्थानामध्यवसायविशेषेण मनाग्मन्दानुभावीकृतविरलवेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धकेष्वन्तःप्रवेशिता-
नां यथास्थितस्वसामर्थ्यप्रकटनासमर्थत्वात् । मिथ्यात्वाद्यनन्तानुबन्धिकषायरहितानां शेषमोहनीयप्रकृतीनां तु प्रदेशोदये विपाको-
दये वा क्षयोपशमोऽविरुद्ध, तासां देशघातिनीत्वात्, तदीयसर्वघातिरसस्य देशघातित्वपरिणामहेतुश्चारित्रानुगतोऽध्यवसा-
यविशेष एव द्रष्टव्यः, एवं ताः प्रकृतयोऽध्रुवोदया इति तद्विपाकोदयाभावे क्षायोपशमिकभावे विजृम्भमाणे, प्रदे-
शोदयवत्योऽपि न ता मनागपि क्षायोपशमिक्य । विपाकोदये तु वर्तमाने क्षायोपशमिकभावसम्भवे मनाग्मालिन्य-
कारित्वादतिचारजनिका भवन्तीति भाव । विस्तरार्थिना तु सप्ततिकर्मप्रकृतिविवरणादिविशेषग्रन्था अवलोक-
नीयाः । इति क्षयोपशमप्रक्रिया । अत्र च सर्वघातिरसस्पर्धकस्य मतिज्ञानावरणादिक्षयोपशमजनित मतिश्रुतावधि-

मन पर्यायभेदाश्चतुर्विधं क्षायोपशमिकं ज्ञानं, पचम च क्षायिकं केवलज्ञानमिति पचप्रकारं ज्ञानस्य । तत्र मति-
ज्ञानं श्रुताननुसारित्वेनातिशयितज्ञानत्व, अवग्रहादिक्रमवदुपयोगजन्यज्ञानत्व वा, अवध्यादिकमतिशयितमेव, श्रुत तु श्रु-
तानुसारित्वेनेति न तयोरतिव्याप्ति । श्रुतानुसारित्व च धारणात्मकपदपदार्थसबन्धप्रतिसधानजन्यज्ञानत्व, तेन न सविकल्प-
कज्ञानसामग्रीमात्रप्रयोज्यपदविषयताशालिनीहापायधारणात्मके मतिज्ञानेऽव्याप्ति । ईहादिमतिज्ञानभेदस्य श्रुतज्ञानस्य च
भावस्याविशेषेण पट इत्यपायोत्तरमय घटनामको न वेति सशयादर्शनात,तत्तन्नाम्नोऽप्यपायेन ग्रहणात्, तद्धारणोपयोगे
इदं पदमस्य वाचक, अयमर्थ एतत्पदस्य वाच्य इति पदपदार्थसबन्धग्रहस्यापि ध्रौव्येण, तज्जनितश्रुतज्ञानस्यैव श्रुतानुसा-
रित्वव्यवस्थिते । अत एव धारणायेर श्रुतहेतुत्वात् "मइपुव्व सुअ" इत्यनेन श्रुतत्वावच्छेदेन मतिपूर्वत्वविधि, " न मई
सुअपुव्विया ' इत्यनेन च मतित्वसामानाधिकरण्येन श्रुतपूर्वत्वनिषेधोऽनिहित सगच्छते । कथ तर्हि श्रुतनिश्रिताश्रुतनि
श्रितभेदेन मतिज्ञानद्वैविध्याभिधानमिति चेदुच्यते–स्वसमानाकारश्रुतज्ञानाहितवासनाप्रबोधसमानकालीनत्वे सति श्रुतो
पयोगानवच्छिन्नत्व श्रुतनिश्रितमवग्रहादिचतुर्भेद, उक्तवासनाप्रबोधो धारणादार्ढ्यायोपयुज्यते, श्रुतोपयोगाजावश्च मति-
ज्ञानसामग्रीसपादनाय, उक्तवासनाप्रबोधकाले श्रुतज्ञानोपयोगसत्त्वाच्छ्रुतज्ञानस्यैवापत्ते , मतिज्ञानसामग्र्या श्रुतज्ञानोत्पत्ति
प्रतिबन्धकत्वेऽपि तत्प्रतिबन्धकस्थानीयस्य तस्योत्तेजकत्वात् । मतिज्ञानजन्यस्मरणस्य मतिज्ञानत्ववत्, श्रुतज्ञानजन्यस्मरणमपि
च श्रुतज्ञानमेव परिगणनीयम् । उक्तवासनाप्रबोधासमानकालीन च मतिज्ञानमौत्पत्तिक्यादिचतुर्भेदमश्रुतनिश्रितमि-
त्यभिमतेन न किमपि दोषजात । नन्दिमाह महाभाष्यकार –"पुव्वि सुअपरिकम्मियमइस्स ज संपय सुआईअं । त

णिस्सियमियर पुण अणिस्सिअं मइचउक्कं ॥ १ ॥ इति'। अपूर्वसंस्कारादिरहितमिन्द्रियसाधारणैन्द्रियकश्रुतज्ञानसामान्ये धारणात्वेन, तदिन्द्रियजन्यश्रुतज्ञानसामान्ये च, इत्याह। प्राग्युक्त
श्रुतज्ञानाहितसंस्कारप्रबोधजन्यत्वेन श्रुतनिश्रितत्वानतिक्रमात्, धारणातः श्रुतज्ञानं एव न मतिश्रुतोभयनिर्वाहः
ष्युपयोगक्रम सङ्गच्छते, प्रागुपलब्धार्थस्य पौनःपुन्येन धारणाहितश्रुतज्ञानाहितसंस्कारप्रबोधजन्यया श्रुतनिश्रितमतिज्ञानत्वम्,
धारणादिरहितानामेकेन्द्रियादीनां स्याद्वादादिशब्दान्वयानुपपत्त्या तादृशाक्षरविरहितत्वात् सामान्यावधेः शब्दत्वं
श्रुतज्ञानं क्षयोपशममात्रजनितं आत्यन्तरमेव, आसोपरस्य शब्दस्योद्बोधकमपि पदपदार्थसंबन्धज्ञानसंस्कारसामग्री
दिमाहात्म्येन जायमानं तु ज्ञानं स्पष्टधारणाश्रयमेव, शाब्दबोधपरिकरीभूतश्च यावान् प्रमाणान्तरबोधोऽपि सोऽपि
सोऽपि सर्वं श्रुतमेव। अत एव पदार्थवाक्यार्थमहावाक्यार्थैदंपर्यार्थभेदाच्चतुर्विधवाक्यार्थज्ञाने ऐदंपर्यार्थनिर्णयं यावत्
श्रुतोपयोगव्यापारात् सर्वत्र श्रुतत्वमेवेत्यभियुक्तैरुपदर्शितम्। तत्र "सव्वे पाणा सव्वे भूआ ण हंतव्वा" इत्यादौ यथा
श्रुतमात्रप्रतीतिः पदार्थबोधः। एवं सति हिंसात्वावच्छेदेनानिष्टसाधनत्वप्रतीतौ गमनागमनादिरूपस्यापि साधोर्व्यापारस्य
तत्त्वेन हिंसारूपत्वादकर्तव्यं स्यादिति वाक्यार्थबोधः। यतनया क्रियमाणा आहारविहारादिक्रिया न पापसाधनानि चि
त्तशुद्धिफलत्वात्, अयतनया क्रियमाणं तु सर्वं हिंसाजनकत्वात् पापसाधनमेवेति महावाक्यार्थबोधः। आज्ञैव धर्मे सारमिति
वादस्थलेऽपि गीतार्थयतनाकृतयोगिकारणपदे निषिद्धस्याप्यदुष्टत्वं, विहितक्रियामात्रं च स्वरूपहिंसामन्तरेणानुपपन्नं हिंसाया
अनाश्रव दोषत्वाभ्युपगमादित्यैदंपर्यार्थबोधः। एतेषु सर्वेष्वप्युपयोगव्यापारात् श्रुतोपयोगो, ऐदंपर्यार्थबोधस्य

दण्डवदुपाध्यतयैव श्रुतस्य बोधोत्तरप्रामाण्यव्यवस्थितेर्नाक्येऽपि क्रमिकतावद्बोधजनके तथात्वव्युत्पत्तिप्रतिसंधानवति पुरुषमिति पुंसे न विरम्यव्यापारादिदूषणावकाश ।सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापारो, यत्पर शब्द स शब्दार्थ इति न्यायप्रसरात् । एतेन न हिंस्यादित्यादिनिषेधविधौ विशेषविधिबाधपर्यालोचनयाऽनुमितौ व्यापकतानवच्छेदकेनापि विशेषरूपेण व्यापकस्येव, शाब्दबोधे तत्तद्विहितेतरहिंसात्वेन वृत्त्यनवच्छेदकरूपेणापि निषेध्यस्य प्रवेश इति निरस्तम् । उक्तया परसंक्षेपस्य प्रकृतोपयोगान्तर्गतेऽसमुपप्रकारस्यैव साम्राज्यात्, तदनन्तरमपि च तस्य सामान्यवाक्यार्थबोधेन सह विशेषावगमेन विशेषपर्यवसायकत्वासम्भवात् । अव्यवहितक्षणमध्ये एकविशेषबाधप्रतिसन्धानमेव सामान्यवाक्यार्थस्य तदितरविशेषपर्यवसायकमिति कल्पनाया न दोष इति चन्न, क्षणाननुगमात्, पटुसंस्कारस्य पचषक्षणव्यवधाने ऽपि कार्योत्पत्तेश्च, संस्कारपाटवस्यैवानुगतस्यानुसरणौचित्यात्, तच्च गृहीतेऽर्थे मतिश्रुतसाधारणविचारणोपयोग एवोपपन्न, अत एव सामान्यनिषेधशास्त्रे विरोधसंबन्धेन विशेषविधिस्मृतावपि विचारणया तदितरविशेषपर्यवसानम् । अपि च 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यत्र यथा परेषां प्रथमं स्वर्गत्वसामानाधिकरण्येनैव यागकार्यताबोधोऽनन्तरं चानुगतानतिप्रसक्तकार्यतावच्छेदकविशेषकल्पनं, तथा प्रकृतेऽपि हिंसात्वसामानाधिकरण्येन पापजनकत्वबोधेऽनन्तरं तत्तद्धेतुतावच्छेदकानुगतानतिप्रसक्तरूपं कल्पने किं बाधकं, सर्वशब्दबलेन हिंसासामान्योपस्थितावपि तत्तद्धेतुस्वरूपानुबन्धकृतविशेषस्य कल्पनीयत्वात् । सा च कल्पना वाक्यार्थबोधोपाधिकेति न तद्भेद । किं च पदार्थबोधाद्धिंसासामान्येऽनिष्टसाधनत्वग्रहे श्यामादिरागादिक्रियास्वनिष्टसाधनत्वव्याप्यहिंसात्वारोपेणानिष्टसाधनत्वारोपवद्दण्डतर्कात्मक एव वाक्यार्थबोध ,तस्य युक्त्या

विपर्ययपर्यवसानात्मको महावाक्यार्थबोध, ततो हेतुस्वरूपानुबन्धत्रयविषय एव त्रिपाददाम्य ऐदम्पर्यार्थबोध, एवंच बोधा अनुत्तरमिच्छनादेव दुर्वारा। श्रुतज्ञानमूलोहादेश्च श्रुतत्वं मतिज्ञानमूलोहादेर्मतिज्ञानत्ववदेवाभ्युपगम्यम्। अत एव श्रुतज्ञानाभ्यन्तरीभूतमतिविशेषैरेव षट्स्थानपतितत्वं चतुर्दशपूर्वविदामप्याचक्षते सम्प्रदायवृद्धा। तथा चोक्तं कल्पभाष्ये–"अक्खरलंभेण समा ऊणहिया हुंति मइविसेसेहिं। ते वि य मईविसेसा सुयनाणब्भंतरे जाण॥१॥" यदि च सामान्यश्रुतज्ञानस्य विशेषपर्यवसायकत्वमेव मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानाभ्यन्तरीभूतत्वमुपयोगविशेषाभ्यामुपयोगव्यवहारश्च प्राधान्यादेवेति विभाव्यते, तदा पदार्थं बोधयित्वा विरतं वाक्यं वाक्यार्थबोधादिकमवयविचारणात्मकं गृहीत्वा विशेषं बोधयदवधार्यविशेषव्यपदेशं लभत इति मन्तव्यम्। एवं शब्दसंसृष्टार्थग्रहणव्यापृतत्वे पदपदार्थसंबन्धग्राहकेहादिरूपस्य न श्रुतत्वम्, 'शब्दसंसृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषो धारणसमानपरिणामः' श्रुतमिति नन्दिवृत्त्यादौ दर्शनात्। "सोइंदिओवलद्धी होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं। मोत्तूण दव्वसुयं अक्खरलंभो य सेसेसु॥१॥" इति पूर्वगतगाथायामप्ययमेवार्थो लभ्यते। तथा चास्यार्थः–श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमित्यवधारणं, न तु श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेवेति, अवग्रहेहादिरूपाया श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेरपि मतिज्ञानरूपत्वात्। यदाह भाष्यकारः–"सोइंदिओवलद्धी चेव सुयं न उ तई सुयं चेव। सोइंदिओवलद्धि वि काई जम्हा मइनाणं॥" शेषं तु चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धिरूपं मतिज्ञानं, तुशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, स चावग्रहेहादिरूपां श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिमपि समुच्चिनोति, यदाह भाष्यकारः–"तु समुच्चयवयणाओ काई सोइंदिओवलद्धी वि। मइ पुव्वं मइ सोउग्गहादओ हुंति मइनेया॥१॥" अपवादमाह–मुक्त्वा द्रव्यश्रुतं पुस्तकपत्रादिन्यस्ताक्षररूपं, तदाहिताया शब्दार्थपर्यालोचनात्मिकाया इन्द्रियोपलब्धे

रपि श्रुतत्वात् । अक्षरलाभश्च य शेषेष्वपीन्द्रियेषु शब्दार्थपर्यालोचनात्मकः, न तु केवलः, तस्येहादिरूपत्वात्, तमपि
गृह्णातीति सोपस्कार व्याख्येयम् । नन्वेवं शेषेन्द्रियेष्वप्यक्षरलाभस्य श्रुतत्वोक्तौ श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतमिति प्रतिज्ञा
विशीर्येत, मैवम्, तस्यापि श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरूपत्वादिति वाच्य । श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिपदेन श्रोत्रेन्द्रियजन्यव्यञ्जनाक्षरज्ञा-
नाहिता शाब्दी बुद्धिः, द्रव्यश्रुतपदेन च चक्षुरादीन्द्रियजन्यसंज्ञाक्षरज्ञानाहिता सा, अक्षरलाभपदेन च तदतिरिक्तश्रुतज्ञा-
नावरणकर्मक्षयोपशमजनिता बुद्धिर्गृह्यत इति । सर्वसाधारणो धारणाप्रायज्ञानवृत्ति शब्दसंसृष्टार्थाकारविशेष एवानुगत
लक्षणम् । त्रिविधाक्षरश्रुताभिधानप्रस्तावेऽपि संज्ञाव्यञ्जनयोर्द्रव्यश्रुतत्वेन, लब्धिपदस्य चोपयोगार्थत्वेन व्याख्यानात् । तत्र
चानुगतमुपयोग लक्षणमिति । इह गोवृषन्यायेन त्रिविधोपलब्धिरूपभावश्रुतग्रहणमिति त्वस्माकमाभाति । अवग्रहादिक्र
मव्युत्क्रमयोगस्तेनापि च मतिज्ञान एव नियता, न श्रुतज्ञाने, तत्र शाब्दोपयोगत्वेनैव हेतुत्वात्, मतिज्ञाने च—नानवगृहीत-
मीह्यते, नानीहितमपेयते, नानपेतं च धार्यते, इति क्रमनिबन्धनमन्वयव्यतिरेकनियममामनन्ति मनीषिणः । तत्रावग्रहस्ये-
हां प्रति धर्मिज्ञानत्वेन, तद्धर्मान्तरधर्मोकारेहाया तत् सामान्यज्ञानत्वेन वा । ईहायाश्च तद्धर्मप्रकारतानिरूपिततद्धर्मिनिष्ठसिद्धत्वा-
ख्यविषयतावदपायत्वावच्छिन्ने तद्धर्मप्रकारतानिरूपिततद्धर्मिनिष्ठसाध्यत्वाख्यविषयतावदीहात्वेन, घटाकारावच्छिन्नसिद्धत्वा-
ख्यविषयतावदपायत्वावच्छिन्ने तादृशसाध्यत्वाख्यविषयतावदीहात्वेन वा, धारणाया चापायस्य समानप्रकारकानुभवत्वेन,
विशिष्टवेदे समानविषयकानुभवत्वेन वा कार्यकारणभाव । तत्रावग्रहो द्विविधो व्यञ्जनावग्रहार्थावग्रहभेदात् । तत्र व्यञ्ज-
नेन शब्दादिपरिणतद्रव्यनिकुरम्बेण व्यञ्जनस्य श्रोत्रेन्द्रियादेरवग्रहः सम्बन्धो व्यञ्जनावग्रहः, स च मल्लकप्रतिबोधकदृष्टा-

स्तान्या गृहीतान्यासमर्थ्येयमसमयजारी। तस्यामव्यवस्थायामव्यक्ता ज्ञानमात्रा, प्रथमसमयेऽदीनाजरतश्चरमसमये जनना
न्यथानुपपत्त्या नान्यत्रा प्रतिपादिता। युक्तं चैतत्, निश्चयतोऽविकलकारणस्यैव कार्योत्पत्तिव्याप्यत्वात्, अविकलं च कारण
ज्ञान उपयोगेन्द्रियमेव, तच्च व्यञ्जनावग्रहकाले प्रथमसमये न स्वकार्यं ज्ञानं जनयेदिति अयमुपयोगस्य कारणांश।
ननु व्यञ्जनावग्रहः प्राप्यकारिणामेवेन्द्रियाणामुक्तो नाप्राप्यकारिणोश्चक्षुर्मनसोरिति तत्र कः कारणांशो वाच्य ? यथार्था
वग्रहस्यापि सर्वत्र स एवास्त्विति चेन्न, तत्राप्यर्थावग्रहात्प्राग् लब्धीन्द्रियस्य ग्रहणोन्मुखपरिणाम एवोपयोगस्य कारणांश
उपयुज्यमान। न च सर्वत्रैकरूपस्याश्रयणमिति युक्तम्, इन्द्रियाणां प्राप्यकारित्वाप्राप्यकारित्वव्यवस्थाप्रयुक्तस्य ह्रस्वदीर्घ
कारणांशानन्तर्भावमयुक्त्युपपन्नत्वेन प्रतिवादिपर्यनुयोगानवकाशात्। अर्थावग्रह सामान्यमात्रग्रह, यत किञ्चिद्दृष्टं, मया
न तु परिज्ञातमिति व्यवहार, स चैकसामयिक, ततः ईहोपयोग आ तर्मौहूर्तिक प्रवर्तते, स च सद्भूतासद्भूतविशेषो
पादानत्यागाभिमुखप्रवृत्तिचारणात्मक पर्यन्त तत्प्रकारेण धर्मिणि साध्यत्वाव्यभिचरितताप्रत्ययत्वात् जनति। अत एव पञ्च
प्रवृत्ती ज्ञानप्रामाण्यगत्यवलम्बनभूतानपीन्द्रियादिगतगुणदोषानुसारेण विषयसंशयादिन्द्रियगुणदोषविचारणमपीहयैव
सत्त्वात्, केवलमभ्यासदशायां सा झटिति जायमानत्वात् कालसौक्ष्म्यान्नोपलक्ष्यते, अनभ्यासदशायां तु वैपरीत्येन स्फुटमु
पलक्ष्यत इति मलयगिरिमिश्रादयो वदन्ति। एवं सति स्वतोऽप्यपाय सर्वत्रार्थयाथात्म्यनिश्चयस्येहयैव जन्यमानत्वात्तद्गुण
प्रयुक्तो परत एव, इति तु स्वतः परतश्चेत्याकरसूत्रं विरुध्यते, तद्गतप्रामाण्यमप्रामाण्यं च, परत एवेति कारणगतगु
णदोषानुसारित्वम्, स्वतः परतश्चेति, प्रमादवाधकज्ञानाभावेन जायमानत्वं स्वतस्त्वं, तच्चाभ्यासदशायां, केवलाभ्यो

पनामर्शेन तत्र व्यापारात्, तदपेक्षया जायमानत्वं च परतस्त्वं, तच्चानभ्यासदशायां, अयं च विभागो विषयापेक्षया, स्वरूपे तु सर्वत्र स्वत एव प्रामाण्यनिश्चय इत्यक्षरार्थ इति । ईहयैव हि सर्वत्र प्रामाण्यनिश्चयाभ्युपगमे किं संवादकप्रत्यपेक्षया, न संदेहे गमकमपेक्षितमिति गमकान्तरमप्यपेक्षणीयम् । न चेहाया बहुविधत्वाद्यत्र न करणसाद्गुण्यविचारस्तत्रैवोक्तस्वतस्त्वपरतस्त्वव्यवस्थेति वाच्यम्, ईहाया क्वचिदुक्तविचारव्यभिचारोपगमे आभ्यासिकापायपूर्वेहायामनुपलक्ष्यमाणस्यापि तद्विचारस्य निरनुपपत्ते । न चोक्तविचार ईहाया प्रमाजनकतावच्छेदको, न तु तज्ज्ञप्तिजनकतावच्छेदक इत्यपि शुभम्, करणगुणादेव प्रमोत्पत्तौ तस्यातथात्वात् । न च ज्ञाविज्ञानस्यासिद्धत्वादुक्तविचारवत्यापीहया तत्प्रामाण्यग्रह इत्यपि साम्प्रतम्, विचारेण करणसाद्गुण्यग्रहे ज्ञाविज्ञानप्रामाण्यग्रहस्यापि सम्भृतसामग्रीकत्वादित्यादि विचारणीयम् । ननु जरता सैद्धान्तिकमते उपयोगेऽवग्रहादिवृत्तिचतुष्टयव्याप्यत्वं, एकत्र वस्तुनि प्राधान्येन सामान्यविशेषोभयाकारग्राहित्वपर्याप्त्याधारत्वं वा, तार्किकमते च प्रमेयाव्यभिचारित्वं प्रामाण्यमयोग्यत्वादभ्यासेनापि दुर्ग्रहं, समर्थप्रवृत्त्यनौपयिकत्वेनानुपादेयं । पौद्गलिकसम्यक्त्ववता सम्यक्त्वदलिकान्वितोऽपायांश प्रमाणं, क्षायिकसम्यक्त्ववता च केवलोऽपायांश इति तत्त्वार्थवृत्त्यादिवचनतात्पर्यपर्यालोचनायां तु सम्यक्त्वसमानाधिकरणापायत्वं ज्ञानस्य प्रामाण्यं पर्यवस्यति, अन्यथाऽननुगमात्, तत्र च विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरह । ज्ञानं प्रमाणं (मिति) वचनं विनिगमकमिति चेत्तदपि समर्थप्रवृत्त्यौपयिकेन रूपेण विनिगमयेत्, न तु विशिष्टापायत्वेनानीदृशेन, सम्यक्त्वानुगतत्वेन ज्ञानस्य ज्ञानत्वं, अन्यथा त्वज्ञानत्वमिति व्यवस्था तु नापायमात्रप्रामाण्यसाक्षिणी, सम्यग्दृष्टिसन्निधिना

१ विस्मरणस्वरूपे ।

मत्यादीनामपि ज्ञानत्वस्य महाभाष्यकृता परिभाषितत्वात्। न च सम्यक्त्वगुणाद्भिन्नत्वेन ज्ञानस्य रुचिरूपत्वं मन्यते, रुचिरूपं च ज्ञानं प्रमाणमिति सम्यक्त्वविशेषणोपादानं पश्चादित्यपि साम्प्रतम्, एतस्य व्यवहारोपयोगित्वेऽपि प्रवृत्त्यनुपयोगित्वात्। न च घटाद्यपायरूपा रुचिरपि सम्यक्त्वमिति व्यवहरन्ति सैद्धान्तिकाः, जीवाजीवादिपदार्थनवकविषयकसमूहालम्बनज्ञानविशेषस्यैव रुचिरूपतयाम्नातत्वात्, केवलं सत्सङ्ख्यादिमार्गणास्थानैर्निर्णयो नावसम्यक्त्वं, सामान्यतस्तु द्रव्यसम्यक्त्वमिति विशेष इति। न च घटाद्यपायेऽपि रुचिरूपत्वमिष्टमेव, सदसद्विशेषणाविशेषणादिना सर्वत्र ज्ञानाज्ञानव्यवस्थाकथनात्, तदेव च प्रामाण्यमप्यत्यूह्यमिति वाच्यम्, अनेकान्तव्यापकत्वादिमतिप्रधानाहितवासनाना मेतादृशबोधभञ्जनात्, तदन्येषां तु द्रव्यसम्यक्त्वेनैव ज्ञानसद्भावव्यवस्थितेः। अत एव चरणकरणप्रधानानामपि स्वसमयपरसमयमुक्तव्यापाराणां द्रव्यसम्यक्त्वेन चारित्रव्यवस्थितावपि भावसम्यक्त्वाभावः प्रतिपादितः सम्मतौ महावादिना। द्रव्यसम्यक्त्वं च, "तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनेन्द्रैः प्रवेदितमिति" ज्ञानाहितवासनारूपं, माषतुषाद्यनुरोधाद्गुरुपारतन्त्र्यरूपं वेत्यन्यदेतत्। तस्मादेते प्रामाण्यप्रकाराः प्रवृत्त्यनुपयोगिनः। तद्वति तत्प्रकारकत्वरूपं ज्ञानप्रामाण्यं तु प्रवृत्त्यौपयिकमवशिष्यते, तस्य च स्वतो ग्राह्यत्वमेवोचितम्। न्यायनयेऽपि ज्ञाने पुरोवर्तिविशेष्यताकत्वस्य रजतत्वादिप्रकारकत्वस्य चानुव्यवसायग्राह्यताया अविवादात्, इमं रजतत्वेन जानामीति प्रत्ययात्, तत्र विशेष्यत्वप्रकारत्वयोरेव द्वितीयातृतीयार्थत्वात्, तत्र पुरोवर्ति इदंत्वेन रजतत्वादिनापि चोपनयवशाद्भासता। न चेदंत्वविशिष्टे पुरोवर्तिनि न भासत इति वाच्यम्, विशेष्यतया पुरोवर्तिनः स्वरूपतो भानानुपपत्तेः तादृशविशेषणज्ञानाभावात्, अन्यथा प्रमेयत्वादिना रजतादिज्ञानेऽपि तथाज्ञानापत्तेः,

ज्ञानातिरिक्तस्य विषयिकर्मप्रकारेणैव ज्ञाननियमाच्च । किं च प्रामाण्यसंशयोत्तरमिदं रजतं न वेत्येव संशयो, न तु रजतमिदं न वा, इदं रजतं न वेत्यादिरूप इति, यद्विशेष्यकयत्प्रकारकज्ञानत्वावच्छेदेन प्रामाण्यसंशयस्तद्धर्मविशिष्टे तत्प्रकारकसंशय इति नियमादिदंत्वेन धर्मिणा भासमाने, इदन्त्वरजतत्वादिना पुरोवर्तिनि उपनयसत्त्वाच्च तथाज्ञानमनुव्यवसाये दुर्वारमिति विषयमविशिष्यते प्रामाण्ये ज्ञातुम् । न चैकसम्बन्धेन तद्वति सम्बन्धान्तरेण तत्प्रकारकज्ञानं व्यावृत्तं, तेन सम्बन्धेन तत्प्रकारकत्वमेव प्रामाण्यं, तच्च दुर्ग्रहमिति वाच्यं, व्यवसाये येन सम्बन्धेन रजतत्वादिकं प्रकारस्तेन तद्वतोऽनुव्यवसाये ज्ञानात्, संसर्गस्य(तु) सर्वत्रैव ज्ञानात् । तत्प्रकारकत्वं च वस्तुगत्या तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकत्वमिति प्रकारताबुद्धिप्रवेशेनैव वा तज्ज्ञानम् । अत एवेदं रजतमिति तादात्म्यारोपव्यावृत्तये मुख्यविशेष्यता प्रामाण्ये निवेशनीयेति मुख्यत्वस्य दुर्ग्रहत्वमिति वाच्यमपास्तं, वस्तुगत्या मुख्यविशेष्यताया एव निवेशात्, तादात्म्यारोपे आरोप्यांशे समवायेन प्रामाण्यसत्त्वेऽप्यदोष । एतेन तद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकत्वमात्रं न प्रामाण्यं, 'इमे रङ्गरजते' 'नेमे रङ्गरजते' इति विपरीतचतुष्कभ्रमसाधारण्यात्, किं तु तद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वं, तच्च प्रथमानुव्यवसाये दुर्ग्रहमित्यपि निरस्तम् । वस्तुगत्या तादृशप्रकारताकत्वस्य सुग्रहत्वादेव, तद्ग्रहेऽनुव्यवसायसामग्र्याऽसामर्थ्यस्य, व्यवसायप्रतिबन्धकत्वस्य वा कल्पनमज्ञनिवेशेन मानुद्धिविषयताभावे, तथाकल्पनायामप्रामाणिकगौरवात् । एतेन विधेयतयाऽनुव्यवसाये स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यज्ञाने व्यवसायप्रतिबन्धकत्वकल्पनापि परास्ता । तत्र तद्विशेष्यकतोपस्थितितद्वत्तद्विशेष्यकज्ञानोपस्थित्यादीनामुत्तेजकत्वादिकल्पने महागौरवात् । यदि च विशेष्यतादिकमनुपस्थितं न प्रकारः, तदा विशेष्यतासम्बन्धेन रजतादिमत्त्वे सति प्रकारि

तथा रजतत्वादिमत्त्वमेव प्रामाण्यमस्तु । एतज्ज्ञानमेव स्वाधकात्मवृत्त्यौपयिकं । तस्माज्ज्ञप्तौ प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमेव युक्तम् । अप्रामाण्यं तु नानुव्यवसायग्राह्यम्, रजतत्वाभाववत्त्वेन पुरोवर्तिनोऽग्रहणे तत्रोपनीतज्ञानायोगात्, रजतत्वादिमत्तया शुक्त्यादिधीविशेष्यकत्वं रजतत्वप्रकारकत्वं च तत्र गृह्यते, अत एवाप्रमापि प्रमेत्येव गृह्यते इति चिन्तामणिग्रन्थ प्रमेतीत्यत्र व्याख्यातृभिर्मिश्रैरित्यप्रामाण्यस्य परतस्त्वमेव । न च प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वे ज्ञानप्रामाण्यसंशयानुपपत्तिः, ज्ञानसन्देहे प्रामाण्यसन्देहसम्भवः धर्मिसन्देहाभावादिति वाच्यं, दोषात् तत्सत्ताया धर्मीन्द्रियसन्निकर्षस्येव संशयहेतुत्वात् । प्राक् प्रामाण्याप्रामाण्यस्पर्शी धर्मिज्ञानात्मक एव वाऽस्तु प्रामाण्यसंशय इति स्वतस्त्वपरतस्त्वानेकान्त प्रामाण्याप्रामाण्ययोर्जैनाना न युक्त इति चेद्, अत्र ब्रूमः । रजतत्ववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्वप्रकारताकत्वरूपस्य रजतज्ञानप्रामाण्यस्य वस्तुतोऽनुव्यवसायेन ग्रहणात्, स्वाश्रयग्रहणेऽप्रामाण्यस्यापि स्वतस्त्वापात, रजतभ्रमानुव्यवसायेनापि वस्तुतो रजतत्वाभाववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्वप्रकारकत्वस्यैव ग्रहणात्, तत्र धर्म्यांशे निरवच्छिन्नत्वादिनिर्विशेषणत्वापत्ति कर्तुं शक्यते, इत्यर्थेत प्रत्यक्षस्य योग्यायोग्यधर्मीश्वसम्बद्धार्थानां धर्माणां योग्यायोग्यानां धर्माणां सर्वेषामभ्युपगमात्, स्वपरपर्यायापेक्षयाऽनन्तधर्मात्मकं वस्त्विति वाचनात् एकस्य सर्वज्ञत्वाभ्युपगमाच्च, "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ" त्ति' आगमस्यैवमेव व्याख्यानात् । अत एवाध्यात्मसारप्रकरणे—"आगमात्सर्वतत्त्वानां वस्तुनामस्वकार्यादिनिराश्रयन् । यथावदवगत्यर्थं यति नाशकुपोऽस्तिकम् ॥ १ ॥" इति । न चैव रीतिरनेकान्तवादिनो नवत इति प्रतीम प्रतिसन्दिह्य हास्य । ननु रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयोर्ज्ञानोपरि भान, अवच्छिन्नत्वं तु तयोरेव मिथः संसर्गः, एवञ्च

तामानयोर्द्वयोर्धर्मयो: परस्परमपि सामानाधिकरण्येनैतारच्छिन्नत्वेनाप्यन्वयसत्त्वादित्येव प्रामाण्यस्य स्वतस्त्व, अप्रामा-
ण्यस्य तु न स्यात्, रजतत्वा भावस्य व्यवसायेऽस्फुरणेन तद्विशेष्यकत्वस्य ग्रहीतुमशक्यत्वात्, ज्ञानग्राहकसामग्र्यास्तू-
पस्थितविशेष्यत्वादिमात्रस्य एव व्यापारादित्येवमदोष इति चेन्न प्रामाण्यशरीरघटकस्यावच्छिन्नत्वस्यससर्गतया ज्ञानोपगमे
वाक्यार्थे प्रामाण्यस्य प्रकारत्वासिद्धेः, अतत् प्रकारतया ज्ञान च स्वाश्रयविशेष्यकत्वावच्छिन्नप्रकारतासबन्धेन रजतत्वस्य
ज्ञानेऽपि ज्ञानेऽपि सज्ञपतीति तावदेव प्रामाण्यम्। स्यादस्त्वेव, ज्ञानग्राहकसामग्र्यास्तथाप्रामाण्यग्रह एव सामर्थ्यात्, अत
एव प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमिति चेन्न, एवमभ्युपगमे भ्रममपि प्रमेतीत्येव गृह्यते इत्यस्य व्याघातात्तत्र रजतत्वस्य ज्ञानो
पर्युपर्यवभासेनयात्, घटपृथिव्यादिमान्नास्ति वाच्य नास्तीत्यादावन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताया इव प्रकृते उक्तस
म्बन्धस्य तत्सदृशगाहितानिरूपितावगाहितारूपा विलक्षणैव स्वरूपः सासर्गिकविषयतेति न दोष इति चेन्न, तत्रापि लक्ष-
णस्यैव दोष, उक्तप्रतियोगितायास्तु पटो नास्तीत्यादावेव स्वरूपत ससर्गत्व, उक्तं च मिश्रे –"अर्थापत्तौ नेह देवदत्त
इत्यत्र प्रतियोगित्वं स्वरूपत एव नामत इत्येव समर्थनात्" वस्तुतोऽस्माक सर्वापि विषयता ऽन्यार्थतोऽलक्षा, पर्यायार्थ-
ाद्य मात्रेति । संपूर्णप्रामाण्यविषयताशाविरोधो न सवादकप्रत्यय विना, न वा तादृशाप्रामाण्यविषयताकबोधो बाध
कत्वस्य जिज्ञासोरन्यासदशायां परतस्त्वमेव, अन्यासदशाया तु क्षयोपशमविशेषसध्रीचीनया तादृशतादृशेहया तथा
प्रयोजनमस्तु स्वतस्त्वमेव, अत एव प्रामाण्या तरस्यापि न दुर्ग्रहत्व, स्वोपयोगापृथग्भूतेहोपनीतप्रकारस्यैवापायेन ग्रहणात्,
सम्यक् च प्रमाणविषयता नायमहमप्रयोग्यत्वेन लौकिकी, नापि पृथगुपयोगप्रयोग्यत्वेनालौकिकी, किं तु विलक्षणै-

पत्ति न किंचिदनुपपन्नमनन्तधर्मात्मकवस्त्वभ्युपगमे । अत एव वस्तुसदृशो ज्ञाने ज्ञेयाकारपरिणाम इति विलक्षणप्रामाण्या
धारत्वादेऽपि न क्षति । एवं च भ्रमेऽरजतनिमित्तो रजताकार, सदृशशुक्त्याकारायाः शुक्तेरेव तदालम्बनत्वात्, प्रमाया तु
रजतनिमित्तोऽयमाकारस्तथात्वस्य परत स्वतोग्रहान्या प्रामाण्याप्रामाण्ययोस्तदनेकान्त इति प्राचां वाचामपि निसर्गः कान्त एवेति
द्रष्टव्यम् । अन्यायानिपुणा अपि यथाऽऽहुरलौकिकप्रत्ययस्तद्धर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वमवगाहमान एव तद्धर्मविशिष्टस्य प्रति-
योगित्वमवगाहते, तथा ज्ञानलौकिकसादाकारोऽपि तद्धर्मस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वमवगाहमान एव तद्धर्मविशिष्टस्य विशे
ष्यतादिकमवगाहत इति इदन्त्वविशिष्टस्यैव विशेष्यत्वमवगाहेत, इदन्त्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वात्, न तु रजतत्वादिविशिष्टस्य
रजतत्वादेः प्यातत्वादिव नियमस्तु लौकिके । तेनोपनयवशादलौकिकतादृशसादाकारेऽपि न क्षतिरिति वदन्तो विनोपनय
साक्षिकानुव्यवसायस्य प्रामाण्याग्राहकत्वमेवाहुः । यदेव च तथाऽनुपनयस्य वृत्त्य तदेतास्तावन्मीमांसकाः साध्यमिति कृतं प्रसङ्गेन ।
मर इत्यनुसरामः । एतावदपेक्षाप्यो व्यापारसौ, ईहानन्तरमपाय प्रवर्तते 'अयं घट एवेति' अत्र पाश्चात्यादिजनितदयो-
प्राभवतन धारणीहितो यमनाताद् प्रकारीजयति, वनैकमेव 'देवदत्तोऽयं' 'पाचकोऽयं' इत्यादिप्रत्ययभेदोपपत्तिः । इयं च
रूपविशेषा मणिः पद्मराग इत्युपदेशोत्तरमपि तदाहितसंस्कारवतो रूपविशेषादनेन पद्मरागेण भवितव्यमितीहोत्तरमेवायं पद्म
राग इत्यपायो युज्यते, उपदेशः पद्मरागपदवाच्यत्वोपमितावेवोपयुज्यते । अयं पद्मराग इति तु सामान्यावग्रहक्रमेणैवेति
नैयायिका उपासिनः । घट इत्यपायोत्तरमपि यदा किमयं घटः सौवर्णो मार्त्तो वेत्यादिविशेषजिज्ञासा प्रवर्तते, तदा प्राच्या-
पायस्योत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यावलम्बनत्वाद् व्यावहारिकावग्रहत्वं, ततः सौवर्ण एवायमित्यादिरपाय, तत्राप्युत्त-

परिणामो जयति निसर्गं स्वजायश्चेति ' । यत्रापि मते श्रुतजिनत्वेन ग्रहणं तत्र गोबलीवर्दन्याय एवाश्रयणीयः । तदि-दमभिप्रेत्याह महावादी सिद्धसेनः—"वैयर्थ्यातिप्रसङ्गाभ्यां न मत्यभ्यधिकं श्रुतमिति " इत्याहुः ।

अवधिज्ञानत्वं रूपिसमव्याप्यविषयताशालिज्ञानवृत्तिज्ञानत्वव्याप्यजातिमत्त्वं, रूपिसमव्याप्यविषयताशालिज्ञानं परमाव-धिज्ञानं "रूपगतं लहइ सव्वं " इति वचनात्, तद्वृत्तिर्ज्ञानत्वव्याप्या जातिरवधित्वमवधिज्ञानमात्रे इति लक्षणसमन्वयः । समव्याप्यत्वमपहाय व्यापकत्वमात्रदाने जगद्व्यापकविषयताकस्य केवलस्य रूपिव्यापकविषयताकत्वनियमात् तद्वृत्तिकेवलत्वमा-दाय केवलज्ञानेऽतिव्याप्तिः, समव्याप्यत्वदाने त्वरूपिणि व्यभिचारात्केवलज्ञानविषयताया रूप्यव्याप्यत्वात्तन्निवृत्तिः । न च परमावधिज्ञानेऽप्यलोके लोकप्रमाणासंख्यरूप्याकाशखण्डविषयतोपदर्शनादसम्भव । यदि तावत्सु खण्डेषु रूपिद्रव्यं स्यात्तदा पश्येदिति प्रसङ्गापादन एव तदुपदर्शनतात्पर्यात्। न च तदंशे विषयबाधेन सूत्राप्रामाण्यं, स्वरूपबाधेऽपि शक्तिविशेषज्ञापनेन फलाबाधात् । एतेनासज्ञायस्थापना व्याख्याता । बहिर्विषयताप्रसञ्जिका तारतम्येन शक्तिवृद्धिश्च लोकमध्य एव सूक्ष्मसू-क्ष्मतरस्कन्धावगाहनप्रवतीति न प्रसंगापादनवैयर्थ्यम् । यत्राप्य—"वड्ढंतो पुण बाहिं लोगत्थं चेव पासई दव्वं । सुहुमयरं सुहुमयरं परमोही जाव परमाणु ॥ १ ॥ ' इति । अलोके लोकप्रमाणासंख्येयखण्डविषयतावधेरिति वचने विषयतापदं लक्षितरूप्यधिकरणतासमनियतावच्छेदकत्वापन्नविषयतापरमिति न स्वरूपबाधोऽपीति तत्त्वम् । जातौ ज्ञानत्वव्याप्यत्व विशेषणं ज्ञानत्वमादाय मत्यादावतिव्याप्तिवारणार्थम् । न च प्रथममत्ययावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञानसाधारणजातिविशेषमा-

दाय मनःपर्यायज्ञानेऽतिव्याप्तिः, अवधिनेन मार्गणे ताद्दशावधेरसिद्धेः। न च मुक्तात्मा रूपिणि अति शाब्दबोधे मनसि मव्याप्त्यविषयताकेऽतिव्याप्तिः, विषयतापदेन साक्षात्त्वस्य ग्रहणादिति मन्तव्यः।

मनोमात्रसाक्षात्कारि मनःपर्यायज्ञानम्। न च तादृशावधिज्ञानेऽतिव्याप्तिः, मनोमात्रसाक्षात्कारिणोऽवधेः स्कन्धान्तरस्यापि साक्षात्कारित्वेन तादृशावधिज्ञानासिद्धेः। न च मनस्त्वपरिणतस्कन्धालोचितं बाह्यमप्यर्थं मनःपर्यायज्ञानं साक्षात्करोतीति तस्य मनोमात्रसाक्षात्कारित्वमसिद्धमिति वाच्यम्, मनोद्रव्यमात्रालम्बनतयैव तस्य धर्मिग्राहकमानसिद्धत्वात्, बाह्यार्थानां तु मनोद्रव्याणामेव तथारूपपरिणामान्यथानुपपत्तिप्रसूतानुमानत एव ग्रहणाभ्युपगमात्। आह च भाष्यकारः "जाणइ बज्झेणुमाणेणं" ति" बाह्यार्थानुमाननिमित्तकमेव हि तत्र मानसमचक्षुर्दर्शनमङ्गीक्रियते, यत्पुरस्कारेण सूत्रे मनोद्रव्याणि जानाति पश्यति चैतदिति व्यवह्रियते। एकरूपेऽपि ज्ञाने क्षयोपशमवैचित्र्येण सामान्यरूपमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया पश्यतीति, विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया च जानातीत्येवं वा व्याख्यायते। आपेक्षिकसामान्यज्ञानस्यापि व्यावहारिकावग्रहन्यायेन व्यावहारिकदर्शनरूपत्वात्। निश्चयतस्तु सर्वमपि तज्ज्ञानमेव, मनःपर्यायदर्शनानुपदेशादिति द्रष्टव्यम्। बाह्यार्थाकारानुमापकमनोद्रव्याकारग्राहकं ज्ञानमवधिविशेष एव, अप्रमत्तसंयमविशेषजन्यतावच्छेदकजाते रवधित्वव्याप्याया एव (कल्पनात्) कल्पनाधर्मीति न्यायात्। अत्र हि जानाति पश्यतीत्यत्र द्वयोरवधिदर्शनविषयत्वेनैवोपपत्तौ तज्ज्ञानदर्शनयोरनपि परिहृत्य नवतिासूत्रे भेदाभिधानं च धर्मभेदाभिप्रायम्। यदि च सकल्पविकल्पपरिणतद्रव्यमात्रमात्र भेदाग्राहकं ज्ञानमतिरिच्यमित्यत्र निर्बन्धस्तदा द्वीन्द्रियादीनामपीष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्तज्ज्ञानकमूलमनःकल्पनेनन

परिणतद्रव्यविषयमपि मनःपर्यायज्ञानमभ्युपगन्तव्यं स्यात्, चेष्टाहेतोरेव मनसः प्राप्यत्वात्। न च तेन द्वीन्द्रियादीनां समनस्कतापत्तिः, कपर्दिकामात्रधनेन धनिकत्वस्येव, एकया गवा गोमत्त्वस्येव, सूक्ष्मेण मनसा समनस्कत्वस्यापादयितुमशक्यत्वात्, तदिदमभिप्रेत्योक्तं निश्चयद्वात्रिंशिकायां महावादिना–"प्रार्थनाप्रतिघाताभ्यां चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः। मनःपर्यायविज्ञानं युक्तं तेषु न चान्यथा ॥ १ ॥" इति। न चैवं ज्ञानस्य पञ्चविधत्वविभागोच्छेदादुत्सूत्रापत्तिः, व्यवहारतश्चतुर्भिर्भेदैरुक्ताया अपि भाषाया निश्चयतो द्वैविध्याभिधानवन्नयविवेकेनोत्सूत्रत्वाभावादिति दिक्।

सर्वविषयं केवलज्ञानम्। सर्वविषयत्वं च सामान्यधर्मानवच्छिन्ननिखिलधर्मप्रकारकत्वे सति निखिलधर्मिविषयत्वम्। प्रमेयवदिति ज्ञाने प्रमेयत्वेन निखिलधर्मप्रकारकेऽतिव्याप्तिवारणायानवच्छिन्नान्तं, केवलदर्शनेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, विशेष्यभागस्तु पर्यायवाद्यभिमतप्रतीत्यसमुत्पादरूपसन्तानविषयकनिखिलधर्मप्रकारकज्ञाननिरासार्थः। वस्तुतो निखिलज्ञेयाकारवत्त्वं केवलज्ञानत्वम्। केवलदर्शनाभ्युपगमे तु तत्र निखिलदृश्याकारवत्त्वमेव, न तु निखिलज्ञेयाकारवत्त्वमिति नातिव्याप्तिः। न च प्रतिस्वं केवलज्ञाने केवलज्ञानान्तरवृत्तिस्वप्रागभावविनष्टवस्तुसम्बन्धिवर्तमानत्वाद्याकाराभावादसम्भवः, स्वसमानकालीननिखिलज्ञेयाकारवत्त्वस्य विवक्षणात्। न च तथापि केवलज्ञानाद्ये आद्यक्षणवृत्तित्वप्रकारकत्वावच्छिन्नविशेष्यताया द्वितीयक्षणे नाशो, द्वितीयक्षणवृत्तित्वप्रकारकत्वावच्छिन्नविशेष्यतायाश्चोत्पाद, इत्थमेव ग्राह्यसामान्यविशेष्यताध्रौव्यसंवेदनेन केवलज्ञाने त्रैलक्षण्यमुपपादितमित्येकदा निखिलज्ञेयाकारवत्त्वासम्भव एवेति शङ्कनीयम्, समानकालीनत्वस्य क्षणगर्भत्वे दोषाभावात्, अस्तु वा निखिलज्ञेयाकारसंक्रमयोग्यतावत्त्वमेव लक्षणं, प्रमाणं च तत्र ज्ञानतारतम्यस्योत्कर्ष-

वृत्ति अल्पतारतम्यवृत्तित्वात् परिमाणत्ववदित्याद्यनुमानमेव । न चाप्रयोजकत्वं ज्ञानतारतम्यस्य सर्वानुभवसिद्धत्वेन तद्विश्रान्तेरत्र तारतम्यतारकर्षो वा विलाऽभवत्वात् । न चेन्द्रियाश्रितज्ञानस्यैव तरतमभावदर्शनात्तत्रैवान्त्यप्रकर्षो युक्त इत्यपि शङ्कनीयं, अतीन्द्रियेऽपि मनोज्ञाने शास्त्रार्थावधारणरूपे शास्त्रभावनाप्रकर्षजन्ये शास्त्रातिशये तद्विषयेऽतीन्द्रिय-विषयसामर्थ्ययोगप्रवृत्तिसाधनेऽध्यात्मशास्त्रप्रसिद्धप्रातिभनामधेये च तरतमभावदर्शनात् । नन्वेवं भावनाजन्यमेव प्रातिभत्वेऽस्य प्राप्तं, तथा चाप्रमाणं स्यात्, कामातुरस्य सर्वदा कामिनीं भावयतो व्यवहितकामिनीसाक्षात्कारवद्भावनाजन्य-ज्ञानस्याप्रमाणत्वव्यवस्थितः, अत्र न भावनाजन्यत्वं तत्राप्रामाण्यप्रयोजकं, किंतु बाधितविषयत्वं, भावनाजन्येऽपि शुक्ति-रजतादिभ्रम बाधादेवाप्रामाण्यस्वीकारात्, प्रकृते च न विषयबाध इति नाप्रामाण्यं, न च व्यवहितकामिनीविभ्रमादौ दोषत्वेन भावनाया प्रसक्तत्वात्तज्जन्यत्वेनास्याप्रामाण्यं, बाधितविषयत्वघटितदोषजन्यत्वस्यापि भ्रमत्वप्रयोजकत्वात्, तथा चोक्तं मीमांसकभाष्यकारेण-"यस्य च दुष्टं करणं यत्र च मिथ्येत्यादिप्रत्ययः स एव समीचीनो नान्य इति", वार्तिककारेणाप्युक्तम्-" तस्माद्बोधात्मकत्वेन, प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता । अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोद्यते ॥ १ ॥ इति " अत्र हि तुल्यवद्देवाप्रामाण्यप्रयोजकत्वमुक्तं, तस्माद्बाधाभावेऽपि दोषजन्यत्वादप्रामाण्यमिति वाच्यं, भावनायाः क्वचिद्दोषत्वेऽपि सर्वत्र दोषत्वानिश्चयात्, अन्यथा गरुडीतवभ्रमकारणीभूतस्य पीतद्रव्यस्य स्वविषयकज्ञानेऽप्यप्रामाण्यप्रयोजकत्वं स्यादिति न किंचिदेतत्, क्वचिदेव कश्चिद्दोष इत्यङ्गीकारात्, विषयबाधेनैव दोषजन्यत्वकल्पनाच्च, दुष्टकारणजन्यस्याप्यनुमानादेर्विषयाबाधेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, अन्यथा परिज्ञानमात्रापत्तेः । मीमांसाभाष्यवार्तिककाराभ्यामपि बाधितविषयत्वस्या-

प्यत्वेनैव दुष्टकारणजन्यत्वस्याप्रामाण्यप्रयोजकत्वमुक्तं न स्वातन्त्र्येणेति चेन्मैवम्, तथापि परोक्षज्ञानजन्यभावनाया अपरोक्षज्ञानजनकत्वासम्भवात्। न हि वह्न्यनुमितिज्ञानं सहस्रकृत्व आवृत्तमपि वह्निसाक्षात्काराय कल्पते। न चाभ्यस्यमानज्ञानं परमप्रकर्षप्राप्तं तथा भविष्यतीत्यपि शङ्कनीयं, लङ्घनोदकतापादिवदभ्यस्यमानस्यापि परमप्रकर्षायोगात्। न च लङ्घनस्यैकस्यावस्थितस्याभावादपरापरप्रयत्नस्य पूर्वपूर्वातिशयितलङ्घनोत्पादन एव व्यापाराद्यावद्वपयितव्यं तावन्मादानेव श्लेष्मात्यतिशयेन क्रियमाणे तदाश्रयस्यैव क्षयाच्च तत्राप्यभिरूपतापत्तिरूपोऽन्त्योत्कर्षः, विज्ञानं तु संस्काररूपं शास्त्रपरावर्तनादिना जाड्यात्कायो लङ्घयितुं शक्नोत्यभ्यासासादितश्लेष्मक्षयपटुभावश्चोत्तरकालं शक्नोतीति तत्र व्यवस्थितोत्कर्षतोदकतापेऽन्यथानुपपत्त्योत्तरत्राप्यनुवर्तत इति तत्रापरापरयत्नानां सर्वेषामुपयोगादत्यन्तोत्कर्षो युक्त इति तद्वता भावनाज्ञानेनापरोक्षं केवलज्ञानं जन्यत इति टीकाकृदुक्तमपि विचारसहं, तस्य प्रमाणान्तरत्वापत्तेः, मनो यदसाधारणमिति न्यायात्, अन्यथा चक्षुरादिव्याप्तिज्ञानादिसहकृतस्य मनस एव सर्वत्र प्रामाण्यसम्भवे प्रमाणान्तरोच्छेदापत्तेः। चक्षुरादीनामेव साधारण्यात्प्रामाण्यमित्यभ्युपगमे भावनायामपि तथा वक्तुं शक्यत्वात्। एवं च परोक्षभावनाया अपरोक्षज्ञानजनकत्वं तस्याः प्रमाणान्तरत्वं चाभ्यनादृष्टचरं कल्पनीयमिति महागौरवमिति चेदनुक्तोपालम्भ एव, प्रकृष्टभावनाजन्यत्वस्य केवलज्ञानेऽभ्युपगमवादेनैव टीकाकृतोक्तत्वात्। वस्तुतस्तु तज्जन्यात्प्रकृष्टादावरणक्षयादेव केवलज्ञानोत्पत्तिरित्येव सिद्धान्तात्। यैरपि योगजधर्मस्यातीन्द्रियज्ञानजनकत्वमभ्युपगम्यते, तैरपि प्रतिबन्धकपापक्षयस्य द्वारत्वमवश्यमाश्रयणीयम्, सति प्रतिबन्धके कारणस्याकिंचित्करत्वात्, केवलं तैर्योगजधर्मस्य मनःप्रत्यासत्तित्वं, तेन संनिकर्षेण निखिलजात्यंशे निरवच्छि-

प्रकारताकज्ञाने षोडशपदार्थविषयकविलक्षणमानसज्ञानं या तत्त्वज्ञाननामधेयं मनसः करणत्व, चाक्षुषादिसामग्रीकाले इव लौकिकमानससामग्रीकालेऽपि तादृशतत्त्वज्ञानानुपपत्तेस्तत्त्वज्ञानाख्यमानसे तदितरमानससामग्र्या प्रतिबन्धकत्वं, तत्त्वज्ञानरूपमानससामग्र्यां च प्रणिधानरूपविजातीयमनःसंयोगघटितत्वं कल्पनीयमित्यनन्तमप्रामाणिककल्पनागौरवम्। अस्माकं तु दुरितध्वंसमात्रं तत्र कारणमिति लाघवम्। अत एवेन्द्रियज्ञानासाधिव्येन चेतसमसहायमिति प्राञ्चो व्याचक्षते। स चावरणाख्यदुरितध्वंसोऽपि भावनातारतम्यात्तारतम्येनोपजायमानस्तदत्यन्तप्रकर्षादत्यन्तप्रकर्षमनुभवतीति किमनुपपन्नम्। तदाहाकलङ्कोऽपि–" दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय इति ॥ १ ॥" न च निदानौषधोपयोगात्तरतमभावापचीयमानस्यापि श्लेष्मणो नात्यन्तिकक्षय इति व्यभिचारः, तत्र निदानौषधोपयोगोत्कर्षनिष्ठाया एवापादयितुमशक्यत्वात्, तदुपयोगेऽपि श्लेष्मपुष्टिकारणानामपि तदैवासेवनात्, अन्यथौषधोपयोगाधारस्यैव विनाशप्रसंगात्, चिकित्साशास्त्रं हि विषमधातुदोषसाम्यमुद्दिश्य प्रवर्तते, न तु तस्य निर्मूलनाशं, अन्यतरदोषात्यन्तक्षयस्य मरणाविनाभावित्वादिति द्रष्टव्यम्। रागाद्यावरणापाये सर्वज्ञज्ञानं नैवाभिजायत इत्यत्र च न विवादो रजोनीहाराद्यावरणापाये वृक्षादिज्ञाने तथा दर्शनात्। न च रागादीनां कथमावरणत्वं, कुड्यादीनामेव पौद्गलिकानां तथात्वदर्शनादिति वाच्यम्, कुड्यादीनामपि प्रातिभादावनावारकत्वात्, ज्ञानविशेषे तेषामावरणत्ववच्चातीन्द्रियज्ञाने रागादीनामपि तथात्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव सिद्धम्। रागाद्यपचये योगिनामतीन्द्रियानुभवसम्भवात् पौद्गलिकत्वमपि द्रव्यकर्मानुगमात् तेषां नासिद्धम्। स्वविषयग्रहणाभ्यासस्य ज्ञानस्य तद्ग्राहकताया विशिष्टप्रत्ययसंबन्धपूर्वकत्वनियमातीवहृत्पूरपुरुषज्ञाने

१ विशिष्टसंबन्ध

[illegible] प्रभृतिभिः ऐस, [illegible] निमित्तमात्रेन [illegible] घोपादानत्व-
[illegible] [illegible]नियमंगादन्यत्र[illegible]गाधा-
[illegible] [illegible]परित्यागयो
[illegible] [illegible]। न चैतदनन्तर[illegible] पाद जन-
[illegible], [illegible] , ततो [illegible]विपति-
[illegible] [illegible]विशिष्टविशिष्टतर-
[illegible] [illegible]। [illegible]—" [illegible]-
[illegible] ॥१॥ इति'। [illegible]
[illegible] [illegible] मिथ्यात्व स्फुटमेव, अपिकं
[illegible] [illegible] इति [illegible]मतमपि
[illegible] [illegible] देशनाविशेष, न [illegible]-
[illegible] [illegible]-
[illegible]
[illegible]

सगात् । न च सत्त्वेन चैतन्यस्य प्रमाणजन्यापरोक्षान्तःकरणवृत्त्यभिव्यङ्ग्यत्वानियमात् कारणता-
वच्छेदकत्वेन दण्डत्वादिवदन्यथासिद्धत्वेन कारणत्वानङ्गीकारात्, अवच्छेदकस्य कल्पितत्वेऽप्यवच्छेद्यस्य सत्यत्वं न हि दण्डो,
यज्ञतत्त्वेन ज्ञात तत्तुपि तच्छिरःस्थितिरत्, तार्किकैरप्याकाशस्य शब्दमात्रकत्वे कर्णशष्कुल्यवच्छेदस्य कल्पितत्वेऽप्यङ्गी-
कारात्, संयोगमात्रस्य निरवयवे नवा सर्वात्मना सत्त्वेनातिप्रसङ्गकरत्वात् । मीमांसकैश्च कल्पितहस्वदीर्घत्वादिधर्मा-
वच्छिन्नानां वर्णानां यथार्थज्ञानजनकत्वोपगमात्, ध्वनिधर्माणां ध्वनिगतत्वेनैव ज्ञानात्, वर्णानां च नित्यतामानुपूर्वी-
विशेषाज्ञानादतिप्रसङ्गात्, वर्णनिष्ठत्वेन ह्रस्वत्वादिकल्पनस्य तैरावश्यकत्वात्, तदस्माकमपि कल्पितावच्छेदकोपगमे
को दोष इति मधुसूदनतपस्विनोऽपि वचनं विचारसहं, मिथ्यादृष्टान्तस्य सम्यग्दृशा प्रकृतानङ्गीकारात्, नैयायिकमी-
मांसकयोरपि अनन्तधर्मात्मकैकवस्तुस्वीकारे कल्पितावच्छेदकत्वधीर्न तयोः असम्भवात्, विभागोत्पत्तिवदावरण
निवृत्तौ । न चोक्तरीत्या वृत्त्यवच्छेदकत्वमपि युक्तं, प्रतियोगितयाऽज्ञाननिवृत्तौ सामानाधिकरण्येन समानविशेष्यकसमान-
प्रकारकवृत्तेरेव त्वन्मते हेतुत्वस्य युक्तत्वात् । अत एव स्वयमुक्तं तपस्विना शिवाविर्दीप-विविधमानरत्ने, एकमसत्त्वा-
पादकमन्तःकरणावच्छिन्नसाक्षिनिष्ठं, अन्यदसत्त्वापादकं विषयावच्छिन्नब्रह्मचैतन्यनिष्ठं, घटमहं जानामीत्युभयावच्छेदानु-
भवात् परोक्षापरोक्षसाधारणसामान्येन निवर्तते अनुमितेऽपि वह्न्यादौ नास्तीति प्रतीत्यनुदयात्, द्वितीयं तु साक्षात्कारे-
णैव निवर्तते यदाश्रयं यदाकारं ज्ञानं तदाश्रयं तदाकारमज्ञानं नाशयतीति नियमादित्यादि, तत्किमिदानीं तुरुन्मत्त-
सम एव विस्मृतं? यत्तोक्तवृत्तेरवच्छेदकत्वेनान्यथासिद्धिमाह, एव हि घटादावपि दण्डविशिष्टाकारस्यैव हेतुता यदुक्तो

यदन कः विदध्यात् ? अनयैव त्रिधा चैतन्यनिष्ठाया प्रमाणजन्यापरोक्षान्त करणवृत्तेरेवाज्ञाननाशकत्वाङ्गीकारेऽपि न-दोष, पारमार्थिकसत्ताभावेऽपि व्यावहारिकसत्ताङ्गीकारात् । न च स्वप्नादिवन्मिथ्यात्वापत्ति, स्वरूपतो मिथ्यात्वस्याप्रयोजकत्वात्, विषयतो मिथ्यात्वस्य च बाधाभावादसिद्धे, धूमभ्रमजन्यवह्न्यनुमितेरप्यबाधितविषयतया प्रामाण्याङ्गीकाराच्च, कल्पितेनापि प्रतिबिम्बेन वास्तवबिम्बानुमानप्रामाण्याच्च, स्वप्नार्थस्याप्यरिष्टादिसूचकत्वाच्च, कचित्तदुपलब्धमन्त्रादेजागरेऽप्यनुवृत्तेरबाधाच्चेति तपस्विनोक्तमिति चेदेतदप्यविचाररमणीयम्, त्वन्मते स्वप्नजागरयोर्व्यवहारविशेषस्यापि कर्तुमशक्यत्वात्, बाधाभावेन ब्रह्मण इव घटादेरपि परमार्थसत्त्वस्याप्रत्यूहत्वाच्च, प्रपञ्चासत्यत्वे बन्धमोक्षादेरपि तथात्वेन व्यवहारमूल एव कुठारदानात् । एतेनाज्ञाननिष्ठा परमार्थव्यवहारप्रतिभाससत्त्वप्रतीत्यनुकूलास्तिस्र शक्तय कल्प्यन्ते, आद्यया प्रपञ्चे पारमार्थिकसत्त्वप्रतीति, अत एव नैयायिकादीना तथाभ्युपगम, सा च श्रवणाद्यभ्यासपरिपाकेन निवर्तते, ततो द्वितीयया शक्त्या व्यावहारिकसत्त्व प्रपञ्चस्य प्रतीयते, वेदान्तश्रवणादभ्यासवन्तो हि नेम प्रपञ्च पारमार्थिक पश्यन्ति, किं तु व्यावहारिकमिति, सा च तत्त्वसाक्षात्कारेण निवर्तते, ततस्तृतीयया शक्त्या प्रातिभासिकसत्त्वप्रतीति त्रियते, सा चान्तिमतत्त्वबोधेन सह निवर्तते, पूर्वपूर्वशक्तेरुत्तरोत्तरशक्तिकार्यप्रतिबन्धकत्वाच्च न युगपत्कार्यत्रयप्रसङ्ग, तथा चैतदभिप्राया श्रुति –“ तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति ” । अस्या अयमर्थ – तस्य परमात्मनोऽभिध्यानादभिमुखाद्ध्यानाच्छ्रवणाभ्यासपरिपाकादिति यावत्, विश्वमायाया विश्वारम्भकाविद्याया निवृत्ति, आद्यशक्तिनाशेन निरिष्टनाशात्, युज्यतेऽनेनेति योजन तत्त्वज्ञान तस्मादपि विश्वमायानिवृत्ति, द्वितीयशक्ति-

नाशेन विशिष्टनाशात्, तत्त्वज्ञानी विदेहकैवल्यम्, यथा प्रारब्धक्षय इति चेत्, तस्मादन्ते प्रारब्धस्य सह तृतीय
शक्त्या विश्वमायानिवृत्तिः, अविद्यानयोर्नानात्वं शक्तिद्वयनाशो विशिष्टनाशोऽन्यथा नच नाशोऽन्यथार्थक इत्यादि
निरस्तम्, अविद्यानादेः प्रागपरमार्थसत्त्वादी परमार्थसत्त्वादिमतीत्य युगपगेऽन्यथाख्यात्यापातात् । न च तत्त्वज्ञानिनि
एकज्ञानेन परमार्थसत्त्वादि जनयित्वैव प्रत्याख्यत इति नाय दोष इति वाच्यम्, प्रारब्धवृत्तत्वस्य न किमपि यस्याज्ञातमिति
प्रातिभासिकसत्त्वोत्पादनस्यानानावाक्षज्ञानाकारवृत्त्या ज्ञानविषयत्वेऽज्ञानस्य नाशिता, तृतीयशक्तिविशिष्टस्य ज्ञानेन यावत्
प्रारब्धमनुवर्तन एवति ज्ञानातिरिक्तविषये प्रातिभासिकसत्त्वोत्पादनादविरोध इति चेन्न, धर्मिनिष्ठानिद्रिन्यां व्याघातात्,
विशेषरागणाज्ञाते तदुपगम च ज्ञानस्यापि प्रातिभासिकमय सत्त्व स्यात्, तत्त्वज्ञ कल्पनिष्ठानस्य स्थितौ निर्द्वन्द्वत्वं चेति
तदवस्थितिशक्त्या सर्वज्ञानानिवृत्तौ गुणायनाश्वासप्रसङ्गाच्च । अथ दृष्टिसृष्टिवाद नयमनुसरति, तन्मत हि वस्तु मद्ध
सैव, प्रपञ्चश्च प्रातिभासिक एव, तस्य चानिर्वचनादः प्राक् पारमार्थिकसत्त्वादिना प्रतिभास पारमार्थिकसदाधारा-
ज्ञाता युगपदेव सुपपाद इति चेन्न, तस्य प्राचीनोपगतस्य गौतममतप्रायत्वेन नव्यैरुपेक्षितत्वात्, व्यवहारसाम्यैन तेरा
दृतत्वात्, व्यवहारवाद च व्यावहारिक प्रपञ्च प्रातिभासिकत्वेन प्रतीयतां तत्त्वज्ञानिनामत्यन्तप्रातरम् दुर्निवारमत ।
अथ व्यावहारिकस्यापि प्रपञ्चस्य तत्त्वज्ञानेन बाधितस्यापि प्रारब्धवशेन बाधितानुवृत्त्या प्रतिभास तृतीयस्या शक्ते कार्यं,
तेन बाधितानुवृत्त्या प्रतिभासानुवृत्त्या तृतीया शक्ति, प्रातिभासिकसत्त्वसम्पादनपटीयसी शक्तिरुच्यते, सा चान्तिमतत्त्वज्ञो
धन निवर्तन इत्ययमदोष इति चेन्न, बाधितं हि तव मते नाशित, तस्यानुवृत्तिरिति वच्तो व्याघातात् । बाधितत्वेन बाधित

त्वावच्छिन्नसत्तया या प्रतिज्ञासस्तत्त्वक्षमारब्धकार्यमिति चेत्तृतीया शक्तिर्व्यर्था, यावद्विशेषाणा नाधिनरवे तेना तत्प्रति-ज्ञासस्य सार्वज्ञान्युपगम विनानुपपत्तेश्च, द्वितीयशक्तिविशिष्टाज्ञाननाशात् सचितकर्म तत्कार्यं च नदयति, ततस्तृतीयशक्त्या प्रारब्धकार्ये दग्धरज्जुस्थानीया बाधितावस्था जन्यते, इयमेव बाधितानुवृत्तिरिति चेन्न, एवं सति घटपटादौ तत्त्वज्ञानं न बाधितसत्त्वधी , न वा व्यावहारिकपारमार्थिकसत्त्वधीरिति तत्र किंचिदन्यदेव कल्पनीय स्यात्, तथा च श्लोकवार्त्तिक-रोध इति सुखूक हरिजज्ञाचार्यं –“ अग्निजलजूभयो यत्परितापकरा भवेऽनुजनसिद्धा । रागादयश्च रौद्रा असत्प्रवृत्त्या-स्पद लोके ॥ १ ॥ परिकल्पिता यदि ततो न सन्ति तत्त्वेन कथममी स्युरिति । परिकल्पिते च तत्त्वे भवभवविगमो कथं युक्तौ ॥ २ ॥ इत्यादि ” । तस्माद्वृत्तेर्व्यावहारिकसत्तयापि न निस्तार । प्रपचे परमार्थदृष्ट्येव व्यवहारदृष्ट्यापि सत्तान्तरा-ननगाहनादिति स्मर्तव्यम् । किं च निष्प्रकारकज्ञानस्य कुत्राप्यज्ञाननिवर्तकत्व न दृष्टमिति शुद्धब्रह्मज्ञानात्कथमज्ञान-निवृत्ति ? (कि च सप्रकार निष्प्रकार वा ब्रह्म अज्ञाननिवर्तकमिति वक्तव्य, आद्ये निष्प्रकारे ब्रह्मणि सप्रकारकज्ञानस्या-यथार्थत्वान्नाज्ञाननिवर्तकता, तस्य यथार्थत्वे नाद्वैतसिद्धिः, द्वितीयपक्षस्तु निष्प्रकारकज्ञानस्य कुत्राप्यज्ञाननिवर्तकत्वादर्श-नादेवानुज्ञापनार्थं ” इति प्रत्यतरपाठ) न च सामान्यधर्ममात्रप्रकारकसमानविषयप्रमात्वमज्ञाननिवृत्तौ प्रयोजकं, प्रमेय-मिति ज्ञानेऽतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति, प्रमेयो घट इत्यादावतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति, तेनेद निर्विशेषप्रकारे निष्प्रकारे चानुगतमिति निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानस्यापि ब्रह्माज्ञाननिवर्तकत्व लक्षणान्वयात् । न च सामान्यधर्ममात्रप्रकारकज्ञानेऽव्याप्ति,

इदमनिद या, प्रमेयमप्रमयं चेत्यादिशीशवादर्शनेन तदनिवर्तकस्य तच्चासंभवादिति चायात्, निष्प्रकारकप्रमात्वाजातीय नि प्रकारकाज्ञानाभिप्या निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानस्यापि तद्विषयत्वायोगादकत्र धर्मिणि प्रकारान्तरविषयत्वस्य प्रकारान्तरविषया निरवच्छिन्नप्रकारतानिरूपितत्वेनाधिष्ठानप्रमात्वेन तथा तदज्ञाननिवर्तकत्वाभिप्रायात्। अधिष्ठानं च ब्रह्म तदज्ञानविषय यावज्ज्ञानविषयत्वमेव यावदंशोपाधिर्वा? न च विषयत्वेन रूपं गुर्वं, प्रमेयत्वस्य च केवलान्वयित्वेनैव प्रमेयमिति ज्ञानात् घटाद्याकाराज्ञाननिवृत्तिप्रसङ्ग इति वाच्यं, प्रमेयमिति ज्ञानस्य प्रमेयत्वात्। न च तस्य प्रमेयत्वविशिष्टवि तदपि घटत्वविशिष्टविषयत्वाभावाद, अन्यत्वविशिष्टस्यैव प्रमाकरणेन घटत्वविशिष्टविषयत्वाभावादिति, विशिष्टविषय ज्ञानेन विशिष्टविषयाज्ञाननिवृत्त्य युपगमेऽपि च प्रकृत अधिष्ठानत्वादिप्रमेयविशिष्टत्वेन । प्रमाणान्तर प्रमेयानना टत्वप्रकारकप्रमात्वादिना नास्वनाशकत्वेऽपि प्रकृते ब्रह्माज्ञाननिवृत्तिहेतु ब्रह्मप्रमात्वस्य कार्यकारणभाव, न तु ब्रह्म त्वप्रकारेकेति विशेषणमुपादेयं, गौरवादनुपयोगाद्विरोधाच्चेत्यपि निरस्तम्, विशिष्टप्रमाण एव भ्रमोत्र विशिष्टाज्ञाननिवृ त्त्यर्थं विशेषोपरागेणैव ब्रह्मज्ञानस्याभ्युपगमात्, शुक्तिरजतादिस्थलेऽपि विशिष्टज्ञाननिवर्तकत्वाभिप्रायात्। अत एव न्याय न्यायोऽनुसर्तव्य । किं च ब्रह्मणो निर्धर्मकत्वे तत्र विषयताया अप्यनुपपत्त्या निर्विषयज्ञानमपि न स्यात्, विषयता हि धर्मतेति तदंगीकारे तस्य क्रियाफलशालित्वेन घटादिवज्जडत्वापत्तेः, तद्विषयज्ञानानंगीकारे च तत्र प्रमाणानां प्रामाण्यानुपपत्ति । न च तदज्ञाननिवर्तकत्वमात्रेण तद्विषयत्वोपचारः, अन्योन्याश्रयात्। न च कल्पिता विषयता कर्म-

1 [illegible] ब्रह्मज्ञानस्य [illegible] (अ॰ १)

न्यामशोभिता, पारमार्थिकविषयताया पुत्राप्यनङ्गीकाराद्व्यावहारिक्याश्च तुल्यत्वात्। न च ब्रह्मणि ज्ञानविषयताऽसत्त्वेऽपि ज्ञाने ब्रह्मविषयता तद्ग्राहकत्वरूपाऽन्या वा काचिदनिर्वचनीया सत्त्वतीति नानुपपत्ति, विषयतैवाकार प्रतिविषयं विलक्षण, अत एव ब्रह्माकारापरोक्षप्रमाया एवाज्ञाननिवर्तकत्व, अज्ञानविषयस्वरूपाकारापरोक्षप्रमात्वस्य सर्वत्रानुगत-त्वात्। न चेदमित्याकार घटाकारमिति शक्तिमपि शक्य, आकारभेदस्य स्फुटतरसाक्षिप्रत्यक्षसिद्धत्वादिति वाच्यम्, ज्ञाननिष्ठाया अपि ब्रह्मविषयताया ब्रह्मनिरूपितत्वस्यावश्यकत्वेन ब्रह्मणि तन्निरूपकत्वधर्मसत्त्वे निर्धर्मकत्वव्याघातात्, धर्मधर्मिरूपस्य विषयविषयिभावस्यैकधर्मत्वेन निर्वाहायोगात्। न च ब्रह्मण्यपि कल्पितविषयतोपगमे कर्मत्वेन न जड-त्वापत्ति, समसत्ताकविषयताया एव कर्मत्वापादकत्वात्, घटादौ हि विषयता स्वसमानसत्ताका, द्वयोरपि व्यावहा-रिकत्वात्, ब्रह्मणि तु परमार्थसति व्यावहारिकी विषयता न तथेति स्फुटमेव वैषम्यादिति वाच्यम्, सत्ताया इव विष-यताया अपि ब्रह्मणि पारमार्थिकत्वोक्तावपि बाधकाभावात्, परमार्थनिरूपितधर्मस्य व्यावहारिके व्यावहारिकत्ववद्व्या-वहारिकनिरूपितस्य धर्मस्य पारमार्थिके पारमार्थिकताया अपि न्यायप्राप्तत्वात्। सत्ताद्युपलक्षणभेदेऽप्युपलक्ष्यमेकमेवेति न दोष इति चेद्विषयतायामप्ययमेव न्याय। एव चानन्तधर्मात्मकधर्म्यभेदेऽपि ब्रह्मणि कौटस्थ्य द्रव्यार्थादेशादव्याहतमेव। यदा चान्तरातिरिक्तधर्मात्मकत्वस्य भावतो नवतरगुणोद्गुणेन जगन्तं तुष्टाव स्तुतिकार –"भवबीजमनन्तमुज्झित विमलज्ञानमनन्तदर्शितम्। न च हीनगुणोऽसि नाधिक समता चाप्यतिवृत्य वर्तसे ॥ २ ॥ इति"। एतेन चैतन्यवि-

१ [illegible] २ [illegible]

तैव नमस्यापादिका, न तु वृत्तिविषयतापि, "यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह", तानि वाचा, तं त्वौपनिषदं पुरुषं [illegible] "[illegible]

" नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं नैवेति [illegible] [illegible]

वृत्तिर्निवारितम् । [illegible] वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता ॥ १ ॥ " इति कारिकायामपि [illegible] चैतन्यमात्र[illegible]

[illegible], प्रमाणजन्या [illegible] चैतन्यस्य [illegible] [illegible]

[illegible] प्रमाण इव [illegible] चैतन्यकाले तु [illegible]

[illegible] न च वृत्तिविषयत्वेऽपि चैतन्यविषयत्वं नियतं [illegible], [illegible]

[illegible] न कारणात् । [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ।

[illegible] ॥ २ ॥ इति", तथा च [illegible], [illegible]

[illegible] एव चैतन्यरूपत्वेन [illegible], [illegible]

[illegible], वृत्तिविषयताया अपि [illegible], [illegible]

[illegible] अपि स्वीकारात्, [illegible], [illegible]

[illegible] वृत्तिविषयत्वं च [illegible]

[illegible] कदापि न निवर्तत इति तत्र कः प्रतिकारः । यदि च [illegible]

प्रवृत्ति न पारयं, तदा [illegible] कदापि [illegible] न युज्यते । तथा

[illegible] घटध्वंसस्ते तदा । मप्रकाशोऽयमात्मा किं घटवद्य न जायते ॥ १ ॥ स्वप्रकाशतया किं ते तद्बु-
[illegible] । बुद्धिश्च स्वप्रकाशेति योप तुल्यं घटादिषु ॥ २ ॥ घटादौ निश्चिते बुद्धिर्नश्यत्येव यदा घट । इष्टो नेतु
[illegible] इति [illegible] ॥ ३ ॥ निश्चित्य सकृदात्मान यदापेक्षा तदैव तम् । वक्तुं मन्तु तथा ध्यातु शक्नोत्येव हि
[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] इव [illegible] विस्मरेदपि । विस्मरत्येव मा ध्यानाद्विस्मृतिर्न तु वेदनात् ॥ ५ ॥" इत्यादि
[illegible] । तल्लब्रह्मविषया मताकारा या वृत्तिरविवेचितमात्रैव । कथचास्या निवृत्ति-
[illegible], [illegible] स्वावस्थितस्य विनश्यदवस्थाज्ञानजनितस्य वा दृश्यस्य चि-
[illegible] । [illegible] विशेषत्वेन निवर्तकता दृश्यत्वेन च निवर्त्यतेति दृश्यत्वेन रूपेणाविषया सह स्वनि-
[illegible], [illegible] एव [illegible] चेत्, मनाया अप्रमा प्रत्येव निवर्तकत्वद-
[illegible] । न च ज्ञानस्याज्ञाननाशकतापि प्रमाणसिद्धा, अन्यथा स्वप्नाद्यध्यासकारणीभूत
[illegible] निवृत्तौ पुन [illegible] नामानुपपत्ति, तदानेकाज्ञानस्वीकार आत्मन्यपि तथाभावे मु
[illegible], [illegible] विनाशादपि [illegible] स्वप्नान्तरादीना पुनरावृत्ति मन
[illegible] निवृत्तौ तु [illegible], द्वितीयस्य च [illegible] मोक्षस्य पुनः-
[illegible], [illegible] विशेषो चेत्त्र विनिगमकाभावादनन्तोऽपरोक्षात्मिका
[illegible], [illegible], [illegible] गत्यन्तराभावात्,

पूर्वकल्पितानां च परमार्थकल्पितानामपि मूलाज्ञानानुवृत्त्यावश्यम्भावाच्चेति, न किञ्चिदेतत् । एतेन जागरादिक्रमेण स्व
प्नादिक्रमतिरोधानमपि क्रियते, यथाक्रमेण रज्ज्वा धाराक्रमतिरोधानवत्, अज्ञाननिवृत्तिस्तु ब्रह्मात्मैक्यविज्ञानादेवेत्यपि
निरस्तम् । एवं सति ज्ञानस्याज्ञाननिवर्तकताया प्रमाणानुपपन्नत्वस्य निवृत्तिमूलमोक्षानाश्वासात्मा शुक्त्युदाहरणोपालम्भ,
श्रुति श्रुतार्थापत्तिनिर्बन्धनार्थं प्रमाणानामवगाहेत एव । तत्र श्रुतिस्तावत्–"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति" मृत्युरविद्येति
शाङ्करभाष्ये, तथा "तस्याभिध्यानाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्ति" स्मृतिश्च–"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मा
मेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १ ॥ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति
तत्परम् ॥ २ ॥" इत्यादि । एवं "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "तरति शोकमात्मवित्", "तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवे
शिते । योगी मायाममेयाय तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥ इति' "अविद्यायाः परं पारं तारयसीत्यादि" श्रुतार्थापत्तिश्च–
"ब्रह्मज्ञानात् प्रपञ्चस्य श्रूयमाणस्य बाधस्य अज्ञाननिवृत्तिमन्तरेण नोपपद्यत इति ज्ञानादज्ञाननिवृत्तिं गमयति"। "अनृतेन
हि प्रत्यूढा नीहारेण प्रावृता," "अन्ययुष्माकमन्तरं," "अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः" इत्यादि श्रुतिस्मृति
ष्वन्यथाऽज्ञानमेव मोक्षप्रतिबन्धकत्वेनावगतम्, एकस्यैव तत्त्वज्ञाननाशाननिवृत्त्यभ्युपगमाच्च, नान्यत्र, व्यभिचारदर्शनेन
ज्ञानस्याज्ञाननिवर्तकत्वबाधोऽपीति चेन्न, एकस्यैव जीवस्य मुक्तिवादस्य श्रद्धामात्रशरणत्वात्, अन्यथा जीवान्तरप्रतिभासस्य
स्वनिर्मितजीवान्तरवदविभ्रमत्वे जीवमतिमात्रमात्रस्यैव तन्मात्र स्यादिति चार्वाकमतसाम्राज्यमेव सदाशिवा प्राप्त
स्यात् । तत्र प्रत्यक्षमेव प्रमाणं, दीपदर्शनमेव च प्रमाणं अप्रतिपादयितिगुणत्वमिति किं शशशृङ्ग

१ (२ ५)

महोदराज्ञानादिकल्पनया तदभिप्रायविकत्थनेन । निर्विकल्पकब्रह्मबोधोऽपि शुद्धद्रव्यनयादेशाभिप्रायप्रवृत्ताम्, सर्वपर्यायपरामर्शव्युत्क्रम एव तत्प्रवृत्ते, न तु सर्वथा जगदभावपक्षपातितामिति सम्यग्दृशा वचनोद्गार । शाब्द एव स इत्यत्र तु नामह, यावत्पर्यायोपरागासञ्जवविचारसहकृतेन मनसैव तद्ग्रहसंज्ञवाक्ष केवलमात्मनि, किं तु सर्वत्रैव द्रव्ये पर्यायोपरागानुपपत्तिप्रसूतविचारे मनसा निर्विकल्पक एव प्रत्ययोऽनुभूयते । उक्तं च सम्मतौ–"पज्जवणयवुक्कंतं वत्थू दव्वट्ठियस्स वयणं । जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्पनिव्वयणो ॥ १ ॥ इति " । पर्यायनयेन व्युत्क्रान्तं गृहीत्वा विचारेण मुक्तं वस्तु द्रव्यार्थिकस्य वक्तव्य, यथा घटो द्रव्यमित्यत्र घटत्वविशिष्टस्य परिच्छिन्नस्य द्रव्यत्वविशिष्टेनापरिच्छिन्नेन सहाभेदान्वयासञ्जव इति मृदेव द्रव्यमिति द्रव्यार्थिकप्रवृत्ति, तत्रापि सूक्ष्मेक्षिकायामपरापरद्रव्यार्थिकप्रवृत्तिर्यावद्द्रव्योपयोगो न विद्यते, पश्चिमे उत्तरे विकल्पनिर्वचने सविकल्पकधीव्यवहारो यत्र स तथा शुद्धसमद्भावसान इति यावत्, तत परं विकल्पवचनाप्रवृत्ते इत्येतस्या अर्थ । "तत्त्वमसि" इत्यादावप्यात्मनस्तत्तदन्यद्रव्यपर्यायोपरागासञ्जवविचारशतप्रवृत्तावशुद्धद्रव्यविषय निर्विकल्पकमिति शुद्धदृष्टौ घटज्ञानाद्ब्रह्मज्ञानस्य को भेदः । एकत्र सदद्वैतमपरत्र च ज्ञानाद्वैत विषय इत्येतावति भेदे त्वौत्तरकालिक सविकल्पकमेव साक्षीति सविकल्पकाविकल्पकत्वयोरप्यनेकान्त एव श्रेयान् । तदुक्तम्–"सवियप्पणिव्वियप्पं इय पुरिसं जो भणेज्ज अवियप्पं । सवियप्पमेव वा णिच्छएण ण स णिच्छिओ समए ॥ १ ॥ इति" । न च निर्विकल्पको द्रव्योपयोगोऽवग्रह एवेति तत्र विचारसहकृतमनोजन्यत्वानुपपत्तिः, विचारस्येहात्मकत्वेनेहाजन्यस्य व्युपरताकाङ्क्षस्य तस्य नैश्चयिकापायरूपस्यैवाभ्युपगमात्, अपायो नाम जात्यादि, योजनानियमस्तु शुद्धद्रव्यादेशरूप-

...(ग्र)तातिरिच्य एवेति विजानीयम् स्वसमयनिष्णातैः। ब्रह्माकारवृत्तेस्तु मानत्वे "नाद्दृष्टिमनुते न दृष्टेर्द्रष्टार वदिनव्य न तौपनिषद् पुरुष पृच्छामीत्यादिश्रुतिविरोध इति चेद्ग्रन्थान्तरेऽपि "यद्वाचानभ्युदितं, न चक्षुषा गृह्यते, यानि वाचा, यतो वाचो निवर्तन्त" इत्यादिश्रुतिविरोधस्तुल्य एव। अथ वागगम्यत्वनिषेधकश्रुतीनां मुख्यवृत्त्यविषय वाक्य इत्येनोपपत्तिर्नेह तद्वदर्थेन ब्रह्मणि महावाक्यगम्यत्वप्रतिपादनात्, मनसि तु मुख्यामुख्यभेदाभावात् "यन्मनसा न मनुत" इत्यादि विरोध एव "सर्वे वेदा यत्रैक भवन्ति स मानसीन आत्मा मार्गानुचक्ष्य" इत्यादिश्रुतौ मानसी नत्व तु मनस्युपाधावुपलभ्यमानत्व, न तु मनोजन्यसाक्षात्कारत्व, मनसैवेति तु कर्तरि तृतीया आत्मनोऽन्तःकरणप्रतिपाद नार्था मनसो दर्शनकर्तृत्वमाह, न करणतां, औपनिषदसमाख्याविरोधात्। "काम सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मनस एवेति" श्रुतौ मृद्घट इतिवदुपादानकारणत्वेन मन सामान्याधिकरण्यप्रतिपादनात्, तस्य निमित्तकारणत्वविरोधाच्चेति चेन्न, कामादीनां मनोधर्मत्वप्रतिपादिकाया श्रुतेर्मन परिणतात्मजन्यज्ञानमनोनि ष्ठताया एव न्याय्यत्वात्, "मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति" इत्यादौ मन करणस्यापि श्रुतेर्दर्शनकर्तृत्वमहत्त्वात्करण दर्शनमहत्त्वेन चक्षुरादिकरणसत्त्वेऽपि तत्रैवकारार्थान्वयोपपत्तेः, इत्थमपि ब्रह्मणि मानत्वविधिनिषेधयोर्वृत्तिविषयत्वात् उपरक्तचैतन्यविषयत्वान्यथानुपपत्तेश्च। शब्दस्य त्वपरोक्षज्ञानजनकत्वे स्वजातजगमस्य एव स्पष्ट दूषणम्। न च प्रथम परोक्षज्ञान जनयतोऽपि शब्दस्य विचारसहकारेण पश्चादपरोक्षज्ञानजनकत्वमिति न दोष इति वाच्यम्, अर्थान्तरीय न्यायापातात्। न खलु शब्दस्य परोक्षज्ञानजनकस्वाभाव्य सहकारिसहस्रेणाप्यन्यथा कर्तुं शक्यं आगन्तुकस्य स्वजातमा

नुपपत्तेः । न च संस्कारसहकारेण चक्षुषा प्रत्यभिज्ञानात्मकप्रत्यक्षजननस्यानुपपत्ति, यदंशे संस्कारसापेक्षत्वं तदंशे स्मृति-त्वापातो, यदंशे च चक्षुःसापेक्षत्वं तदंशे प्रत्यक्षत्वापात इति विषयभेदेन प्रत्यभिज्ञानस्य प्रमाणान्तरत्वमिति [illegible] स्वीकारात्। स्वे स्वे विषये युगपज्ज्ञानं जनयतोश्चक्षुःसंस्कारयोरर्थसमाजेनैकज्ञानजनकत्वमेव पर्यवस्यति, अन्यथा [illegible]-कारेणासन्निकृष्टेऽपि रजते चाक्षुषज्ञानापत्तेरन्यथाख्यात्यस्वीकारप्रसङ्ग इति यदल्पमती [illegible]-सायादेव निराकर्तव्यं, अन्यथा रजतभ्रमेऽप्युभयात्मकतापत्ते, पर्वतो वह्निमानित्यनुमितावपि [illegible] प्रत्य-क्षानुमित्यात्मकतापत्तेश्च । अत्र मनस इव शब्दस्य परोक्षापरोक्षज्ञानजननस्याङ्गीकारान्न दोषः, मनसो परोक्ष-जनकता, इन्द्रियत्वेन चापरोक्षज्ञानजनकतेत्यस्ति मनस्यवच्छेदकभेद इति चेच्छब्दस्यापि [illegible] ना-ज्ञानजनकत्वेन वा परोक्षज्ञानजनकतायोग्यपदार्थनिरूपितत्व पदार्थविषयशब्दत्वेन चापरोक्षज्ञानजनकतेति [illegible]-च्छेदकभेद । धार्मिकस्त्वमसीत्यादौ व्यभिचारवारणाय निरूपितान्त विशेषण, इतरव्यावर्त्यं तु स्पष्टमेव । एतच्च 'दशम-स्त्वमसि' 'राजा त्वमसी'त्यादिवाक्याद्दशमोऽहमस्मि राजाहमसीत्यादिसाक्षात्कारदर्शनात्कल्प्यते, [illegible] दशम इत्यादि भ्रमनिवृत्ते अत इत्थमेव सम्भवात् । साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात्कारिविरोधिज्ञानत्वेनैव विरोधित्वकल्पनात् । न च तत्र वा-क्यात्पदार्थमात्रोपस्थितौ मानसः संसर्गबोध इति वाच्यम्, सर्वत्र वाक्ये तथा वक्तुं शक्यत्वेन शब्दप्रमाणमात्रोच्छेदप्रसङ्गा-दिति चेन्मैवम्, दशमस्त्वमसीत्यादौ वाक्यात्परोक्षज्ञानानन्तरं मानसज्ञानान्तरस्यैव भ्रमनिवर्तकत्वकल्पनात्, धार्मिकस्त्व-मसीत्यादौ विरोध्याशस्य योग्यत्वादेव योग्यपदार्थनिरूपितेत्यत्र योग्यपदार्थतावच्छेदकविशिष्टस्यवाचकत्वेन [illegible]-

क्यादपि तत्पदार्थतावच्छेदकस्यायोग्यत्वेनापरोक्षज्ञानाजनकत्वाच्च, अयोग्यांशत्यागयोग्यांशोपादानात्तु निर्गुणब्रह्मण एवास्य यो-
ग्यपदार्थत्वमित्युक्तौ च धर्मिकल्पनागौरवादानपि शुद्धापरोक्षविषयत्वे तद्व्यावर्तकविशेषणदानानुपपत्तिः । तथा च योग्य
त्वस्य परत्वमेव उदाहरणस्यानवरोधत्वं । अथ च विषयोऽस्माकं पर्यायविनिर्मोकेन शुद्धब्रह्मविषयतात्पर्यगमकस्य तत्त्व
मस्यादेः प्रमापादनं । किं च त्वंपदार्थाभेदपरशब्दत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वोक्तौ यूयं गावः इत्यतोऽस्मिन्नेवोप्यविग
ष्वयस्य स्वरूपस्यापरोक्षशाब्दापत्तिः, तत्र तादृशमानसान्युपगमे चान्यत्र कोऽपराधः । न चाकृत्स्ना स्वस्यार्थग्रहण
ऽपि न विभाग एकस्मिन्नेव यूयमिति प्रयोगेऽगतेश्चैक्याभिप्रायकत्वं, पदग्रहणे च तत्तदभिप्रायकशब्दता तत्तच्छाब्दबोधह
तुत्वमेव युक्तम् । अत एव वाक्यादपि द्रव्यार्थादिशाब्दबोधः, पदादपि च पर्यायार्थादिशात् सम्यक् शाब्दबोध इति जैनी
शास्त्रव्यवस्था । तस्माच्च शब्दस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वम् । एतेनापरोक्षपदार्थाभेदपरशब्दत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वं, अत एव
शुक्तिरियमिति वाक्यादाहत्य रजतभ्रमनिवृत्तिः, एवं च चैतन्यस्य वास्तवापरोक्षत्वादपरोक्षज्ञानजनकत्वं महावाक्यस्येत्यपि
निरस्तम्, वास्तवापरोक्षस्वरूपविषयत्वस्य त्वन्नीत्या तत्त्वमस्यादिवाक्ये सत्त्वेऽपि दशमस्त्वमसीत्यादावनावृताज्ञान
विषयत्वस्य च शाब्दबोधात्पूर्वमजातत्वात् यदा कदाचिन्निवृत्ताज्ञानत्वग्रहणे पर्वतो वह्निमानित्यादिवाक्यानामप्यपरोक्षस्वरू-
पविषयतयाऽपरोक्षज्ञानजनकत्वप्रसङ्गात् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "सत्यं ज्ञानमनन्तं" इत्यादिवाक्यानामपरो
क्षस्वरूपविषयतयाऽपरोक्षज्ञानजनकत्वे महावाक्यवैयर्थ्यापाताच्च । किं चैवं घटोऽस्तीतिशाब्दे चाक्षुषत्वमप्यापद्येत, अप
रोक्षपदार्थाभेदपरशब्दादिनापरोक्षपक्षसाध्यकानुमितिसामग्रीतोऽपरोक्षानुमितिरपि च प्रसज्येत । एवं च भिन्नविषयता

धर्मवेशेनैवानुमितिसामग्र्या लाघवाद्बलवत्त्वमितिविशेषदर्शनवादीनत्रममतापोत्तरभायत्नमायोऽवेद इति वस्तुतर तुच्छम् । एतेन प्रमातृभेदविषयत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वमित्यपि निरस्तम्, सर्वज्ञत्वादिविशिष्टोऽस्मीत्यादिवाक्यादपि तथाप्रसङ्गात्, ईश्वरो मदभिन्नश्चेतनत्वान्मद्वदिति अनुमानादपि तथाप्रसङ्गाच्चेति । महावाक्यजन्यमपरोक्षज्ञानमपि [illegible] केवलज्ञा-मिति वेदान्तिना महानेव मिथ्याभिनिवेश इति विभावनीयं सूरिभिः ।

इदमिदानीं निरूप्यते–केवलज्ञानं स्वसमानाधिकरणकेवलदर्शनसमानकालीनं न वा, केवलज्ञानत्वं स्वसमानाधिकरणदर्शनक्षणाव्यवहितोत्तरत्वव्याप्यं न वा ? एतस्यां क्रमोपयोगवादिना जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यपादाना, युगपदुपयोगवादिना च मल्लवादिप्रभृतीना, यदेव केवलज्ञानं, तदेव केवलदर्शनमिति वादिना च महावादिश्रीसिद्धसेनदिवाकराणा, साधारण्यो विप्रतिपत्तय । यत्तु युगपदुपयोगवादित्वं सिद्धसेनाचार्याणां नन्दिवृत्त्यादौ तदभ्युपगमवादाभिप्रायेण, न तु स्वतन्त्रसिद्धान्ताभिप्रायेण, क्रमाक्रमोपयोगद्वयपर्यनुयोगानन्तरमेव स्वपक्षस्य सम्मतावुपन्यस्तत्वादिति द्रष्टव्यम् । एतच्च सयुक्तिकं सम्मतिगाथाभिरेव प्रदर्शयाम –"मणपज्जवनाणंतो नाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो । केवलनाणं पुण दंसणं ति नाणं ति य समाणं ॥ १ ॥" युगपदुपयोगवाद्यभ्युपगमवादोऽयम्–मनःपर्यायज्ञानमन्तः पर्यवसानं यस्य स तथा, ज्ञानस्य दर्शनस्य च विश्लेषः पृथग्भाव इति साध्यम् । अत्र च छद्मस्थोपयोगत्वं हेतुर्द्रष्टव्यः, तथा च प्रयोगः–चक्षुरचक्षुरवधिज्ञानानि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनेभ्यः पृथक्कालानि, छद्मस्थोपयोगात्मकज्ञानत्वात्, श्रुतमनःपर्यायज्ञानवत् । याक्यार्थविषये श्रुतज्ञाने, मनोद्रव्यविशेषालम्बने मनःपर्यायज्ञाने चादर्शनस्वभावे मत्यवधिज्ञानदर्शनोपयोगाभिन्नकालत्वं प्रसिद्धो-

गति गीभकृता । दर्शनस्य पृथक्कालत्वस्य युक्त्यपेक्षासिद्धमित्यर्थविदितत्वात्, स्वदर्शनपृथक्कालत्वस्य च सिद्धान्तविदितत्वो-
पदर्शनयोरनावरणत्वात् हेतुः, व्यतिरेकी च प्रयोग, तज्जन्यत्व वा हेतु यद्यज्जन्य तत्तत् पृथक्कालमिति सामान्य
व्याप्ती यथा दण्डात् घट इति च दृष्टान्ते उक्ति तु युक्त, केवलज्ञान पुनर्दर्शन दर्शनोपयोग इति वा ज्ञान ज्ञानोपयोग इति
वा समानं पृथक्कालं पृथक्कालीनोपयोगद्वयात्मकमित्यर्थ, प्रयोगश्च—केवलिनो ज्ञानदर्शनोपयोगावेककालीनौ, युगपदावि
र्भावस्वभावत्वात्, यदेवं तदेवं, यथा रवेः प्रकाशतापौ । अयमभिप्राय आगमविरोधीति केषाचिन्मतं, तानधिक्षिपन्नाह
"जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ जिणो त्ति । सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू ॥२॥" केचिज्जिनवचना
नुपातिनो वदन्ति—'यदा जानाति तदा न पश्यति जिन' इति । सूत्र—"केवली णं भंते इमं रयणप्पभं पुढविं आयारेहिं पमा-
णेहिं हेऊहिं संठाणेहिं परिवारेहिं जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ? हंता गोयमा! केवली णमित्यादिकमवलम्बमाना । अस्य
च सूत्रस्य क्रियाप्रमाणमिदम्—केवली सम्पूर्णबोधः णमिति वाक्यालङ्कारे । भंते इति भगवन्। इमां रत्नप्रभानाम्न्यवनि
यां पृथ्वीमाकारैः समनिम्नोन्नतादिभिः, प्रमाणैर्दैर्घ्यादिभिर्हेतुभिरनन्तानन्तप्रदेशिकैः स्कन्धैः, संस्थानैः परिमण्डलादिभिः,
परिवारैर्घनोदध्यादिभिः । "जं समयं णो तं समयमिति" च 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा २ ३ ५) इति द्वितीया सप्तमी
वा स्यात्, यत्र यदा जानाति न तदा पश्यतीति भाव । विशेषोपयोग सामान्योपयोगान्तरित, सामान्योपयोगश्च विशेषोपयो
गान्तरित, तस्मादित्थमिति प्रश्नार्थ । उत्तरं पुन हंता गोयमेत्यादिकं प्रश्नानुमोदक गौतमेति गोत्रेणामन्त्रण प्रश्नानुमो-
दनार्थ । पुनरन्यत् सूत्रमुदाहरणीयं । हेतुप्रश्नस्य चात्र सूत्रे उत्तर । "सागारे से नाणे हवइ अणागारे से दंसणे" इति, साकार

विशेषग्रहणे अस्य केवलिनो ज्ञानं भवति, अनाकारमतिक्रान्तविशेष सामान्यग्रहणं दर्शनं । न चाक्रमप्रत्ययोत्पत्तिरेकदा निरावरणस्यापि तत्स्वाभाव्यात् । न हि चक्षुर्दर्शनकाले श्रोत्रज्ञानोत्पत्तिरुपलभ्यते । न चावृतत्वात्तदा तदनुत्पत्ति, स्वसमयेऽप्यनुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न चाणुना मनसा यदा यदिन्द्रियसंयोगस्तदा तज्ज्ञानमिति क्रम परवाद्यभिमतोऽपि युक्तिमान्, सर्वाङ्गीणसुखोपलंभाद्युपपत्तये मनोवर्गणापुद्गलाना शरीरव्यापकत्वकल्पनात्, सुषुप्तौ ज्ञानानुत्पत्तये त्वङ्मनोयोगस्य ज्ञानसामान्ये हेतुत्वेन रासनकाले त्वाचरासनोभयोत्पत्तिवारणस्येत्थमप्यसम्भवाच्च । ततो युगपदनेकप्रत्ययानुत्पत्तौ स्वभाव एव कारण नान्यत्, सन्निहितेऽपि च द्व्यात्मके विषये सर्वविशेषानेव केवलज्ञान गृह्णाति, सर्वसामान्यानि च केवलदर्शनमिति स्वभाव एवानयोरिति । एते च व्याख्यातारस्तीर्थकराशातनाया अभीरवः, तीर्थकरमाशातयन्तो न बिभ्यतीति यावत् । एव हि निःसामान्यस्य निर्विशेषस्य वा वस्तुनोऽभावेन न किञ्चिज्जानाति केवली न किञ्चित्पश्यतीत्यधिक्षेपस्यैव पर्यवसानात् । न चान्यतरमुख्योपसर्जनविषयतामपेक्ष्योभयग्राहित्वेऽप्युपयोगक्रमाविरोध, मुख्योपसर्जनभावेनोभयग्रहणस्य क्षयोपशमविशेषप्रयोज्यत्वात्, केवलज्ञाने छद्मस्थज्ञानीययावद्विषयतोपगमेऽवग्रहादिसंकीर्णरूपप्रसङ्गात्, सूत्रस्य तु न यथोक्तार्थ, किं त्वय, केवलीमा रत्नप्रभा पृथिवीं यैराकारादिभिः समकं तुल्यं जानाति, न तैराकारादिभिस्तुल्य पश्यतीति किमेव आह ? एवमित्यनुमोदना, ततो हेतौ पृष्टे सति तत्प्रतिवचन जिनशासनप्रदर्शक तज्ज्ञान साकारं भवति यतो दर्शनं पुनरनाकारमित्यतो जिज्ञाकथनावेतौ प्रत्ययाविति प्रत्यपादीति टीकाकृतः । अत्र यद्यपि जं समयं इत्यत्र जं इति अम्भाव' प्राकृतलक्षणात्, यत्कृतमित्यत्र जं कयमिति प्रयोगस्य लोकेऽपि दर्शनादिति वक्तुं शक्यते, तथापि तृतीयान्त

पदयाथैराकारादिभिर्गुणस्तृतीयान्तसमासस्य यत्पदार्थस्य समकपदार्थस्य यावन्यूनानतिरिक्तधर्मविशिष्टस्य रत्नप्रभाया निम्न त्रिंशत्वादस्य इति यत् समकमित्यादिक्रियाविशेषणत्वेन व्याख्येयम्। रत्नप्रभाकर्मकाकारादिनिरूपितयावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकज्ञानवान् न तादृशतावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकदर्शनवान् केवलीति फलितोऽर्थः। यदि च तादृशस्य विशिष्टदर्शनस्य निषेध्यस्याप्रसिद्धेर्न तन्निषेधः "अमतो णत्थि णिसेहो" इत्यादिवचनादिति सूक्ष्ममीक्ष्यते, तदा क्रियाप्रधानमाख्यातमिति वैयाकरणनयाश्रयणेन रत्नप्रभाकर्मकाकारादिनिरूपितयावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकं ज्ञानं, न तादृशं केवलिकर्तृकं दर्शनमित्येव बोधः, सर्वनयात्मके भगवत्प्रवचने यथोपपन्नान्यतरनयग्रहणे दोषाभावादिति तु वयमालोचयामः। इतुर्यगपद्यादपि यत्नोपयोगयौगपद्यमापततीत्याह—"केवलनाणावरणक्खयजायं केवलं जहा नाणं। तह दंसणं पि जुज्जइ णियआवरणक्खयस्संते ॥ ३ ॥" स्पष्टं, नवरं निजावरणक्षयस्यान्ते इति दर्शनावरणक्षयस्यानन्तरक्षण इत्यर्थः। न चैकदोजयावरणक्षयेऽपि स्वभावहेतुक एवोपयोगक्रम इत्युक्तमपि साम्प्रतं, एवं सति स्वभावेनैव सर्वत्र निर्वाहे कारणान्तरोच्छेदप्रसङ्गात्, कार्योत्पत्तिस्वभावस्य कारणेनैव तत्क्रमस्वभावस्य तत्क्रमेणैव, निर्वाहात्। एतेन सर्वव्यक्तिविषयकत्वमनन्तविषयत्वयोः पृथगेवावरणक्षयकार्यतावच्छेदकत्वादर्थ(त)स्तदवच्छिन्नोपयोगद्वयसिद्धिरित्यप्यपास्तम्। तत्सिद्धावपि तत्क्रमासिद्धेरावरणद्वयक्षयकार्ययोः समप्राधान्येनार्थगतस्य प्रसराच्च। न च मतिश्रुतज्ञानावरणयोरेकदा क्षयोपशमेऽपि यथा तदुपयोगक्रमस्तथा ज्ञानदर्शनावरणयोर्युगपत्क्षयेऽपि केवलिनामुपयोगक्रमः स्यादिति शङ्कनीयं, तत्र श्रुतोपयोगे मतिज्ञानस्य हेतुत्वेन, शब्दादौ प्रत्यक्षादिसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वेन च तत्सम्भवात्। अत्र तु क्षीणावरणत्वेन परस्परकार्यकारणभावप्रति-

वध्यप्रतिबन्धकजावाधजावेन विशेषात् । एतदेवाह–"जयइ खीणावरणे, जह मइनाणं जिणे ण संभवइ । तह खीणावर-णिज्जे, विसेसओ दसणं णत्थि ॥ ४ ॥ " जयते निश्चित्योच्यते क्षीणावरणे जिने यथा मतिज्ञानं मत्यादिज्ञान चतुष्टयरूपं वा ज्ञानं न सम्भवति, तथा क्षीणावरणीये विशेषतो ज्ञानोपयोगकालान्यकाले दर्शनं नास्ति क्रमोपयोगत्वस्य मत्याद्यात्मकत्वव्याप्यत्वात्सामान्यविशेषोजयाखननक्रमोपयोगत्वस्य चावग्रहाद्यात्मकत्वव्याप्यत्वात्केवलयोः क्रमोपयोगत्वे तत्त्वापत्तिरित्यापादनपरोऽयं ग्रन्थः । प्रमाणं तु–केवलदर्शनं केवलज्ञानतुल्यकालोत्पत्तिकं, तदेककालीनसामग्रीकत्वात्, तादृशकार्यान्तरवत्, इत्युक्ततर्कानुगृहीतमनुमानमेवेति द्रष्टव्यम् । न केवलं क्रमवादिनोऽनुमानविरोधः, अपि त्वागमवि-रोधोऽपीत्याह–"सुत्तम्मि चेव साइअपज्जवसियं ति केवलं वुत्तं । सुत्तासायणभीरूहिं तं च दट्ठव्वयं होइ ॥ ५ ॥ " साद्य-पर्यवसिते केवलज्ञानदर्शने सूत्रे प्रोक्ते, क्रमोपयोगे तु द्वितीयसमये तयोः पर्यवसानमिति कुतोऽपर्यवसितता ? तेन सूत्राशा-तनाभीरुभिः क्रमोपयोगवादिभिस्तदपि द्रष्टव्यं । चोऽप्यर्थः । न केवलं "केवली णं भंते इमं रयणप्पभं पुढविं" इत्याद्युक्त-सूत्रयथाश्रुतार्थानुपपत्तिमात्रमिति भाव । न च द्रव्यापेक्षयाऽपर्यवसितत्वं, द्रव्यविषयप्रश्नोत्तराश्रुतेः । न चार्पितानर्पित-सिद्धेरिति तत्त्वार्थसूत्रानुरोधेन द्रव्यार्पणयो (अ) श्रुतयोरपि तयोः कल्पनं युक्तं, अन्यथा पर्यायाणामुत्पादविगमात्मकत्वाद्-वतोऽपि कथं तयोरपर्यवसानतेति पर्यनुयोज्यः ? यद्धर्मावच्छिन्ने क्रमिकत्वप्रसिद्धिः, तद्धर्मावच्छिन्नेऽपर्यवसितत्वान्वयस्य निरा-कालत्वात्, अन्यथा ऋजुत्ववक्रत्वे अपर्यवसिते इति प्रयोगस्यापि प्रसङ्गात्, मम तु रूपरसात्मकैकद्रव्यवदनन्तावच्छि-न्नोपाधिकोत्पादविगमात्मकत्वेऽपि केवलिद्रव्यादव्यतिरेकतस्तयोरपर्यवसितत्वं नानुपपन्नम् । अथ पर्यायस्यापरेऽकपर्यवि

[illegible] युगवदुपयोगे [illegible] केवलयोरपर्यवसितत्वमुपगम्यते, अत एव पर्यायद्रव्ययोरादिष्टद्रव्यप-
[illegible] मीयते । [illegible] कर्मनिर्मोकस्य विरहाधीनत्वादिति चेत्किमयमुक्तधर्मनिर्मोकस्तत्पदार्थावच्छेदक
[illegible] गुरुद्रव्यग्रहणया, तत्र छद्मधर्मस्य विशेषणत्वपरित्यागेनोपलक्षणत्वमात्रविवक्षया ? । आद्ये
[illegible] गुरुद्रव्य [illegible] पर्यवसितमित्येव बोधः स्यात्, सादित्वस्यापि तत्रान्वय(ये)प्रवेशे तु केव
[illegible] पर्यवसितमित्याकारक एव, [illegible] तु गुरुद्रव्यविषयको निर्विकल्पक एव बोध इति केवलज्ञान
[illegible] अपि बोधस्य [illegible] । अन्त्ये च केवलयोरवच्छिन्नात्मद्रव्यमात्रग्रहणे तत्र सादित्वान्वया
[illegible], [illegible] च [illegible] पर्याय पर्यायास्यापि एतत्पर्यवसानीय स्यादिति समीचीन द्रव्यार्थादेशा-
[illegible] । [illegible] मनुष्योरशुप्यविरहकलाद्दनबोधस्वीकारे च पर्यायोऽपर्यवसित इत्यादेरपि
[illegible] । [illegible] निर्वोरपर्यवसिता [illegible] द्वितीयक्षणेऽपि तयो सत्तायामभक्ति, अन्यथा
[illegible] । [illegible] युगम तयोरागमविरोध अनुपपद्यमानाह–" गतमि केवले दसणम्मि नाणस्स सम्भवो
[illegible] । [illegible] तम्हा अनिहणाई ॥ ६ ॥ " प्रकरतो द्वयोः क्रमिकत्वेऽन्यतरकालेऽन्यतरनाशप्रसंग,
[illegible], [illegible] द्वयोर्न केवलिन प्रकरतोऽनिधनादित्यर्थः । अथ ग्रन्थकृदसमो-
[illegible] परंपुग्य [illegible] पितुमाह–"दसणनाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वयरो ।
[illegible] ॥ ७ ॥" [illegible] दर्शनावरणज्ञानावरणक्षयागमे कस्य प्रथमतरमुत्पादो भवेत् ?

अन्यतरोत्पादे तदितरस्याप्युत्पादप्रसङ्गात्, अन्यतरसामग्र्या अन्यतरप्रतिबन्धे चोभयोरप्यनुत्पत्तेः, “ सव्वाओ
लद्धीओ सागारोवउत्तोवउत्तस्सेति ” वचनप्रामाण्यात्प्रथमं केवलज्ञानस्य पश्चात्केवलदर्शनस्योत्पाद इति चेत्, न, तत्रत्य
लब्धियौगपद्य एव सादित्वाऽऽपयोगक्रमाक्रमयोरौदासीन्यात् । यौगपद्येनापि निर्विकल्पसविकल्पबोधस्वभावत्वसिद्धेः एक
क्षणोत्पत्तिककेवलज्ञानयोरेकक्षणन्यूनाधिकायुष्कयोः केवलिनोः प्रतिक्षणोपयोगव्यवहारया निर्वहयितुमशक्यत्वाच्च । अथ
ज्ञानोपयोगसामान्ये दर्शनोपयोगत्वेन हेतुतेति निर्विकल्पकसमाधिरूपशुक्लध्यानादीदर्शनात् अथवा केवलज्ञानेऽनिः
केवलदर्शने केवलज्ञानत्वेन विशेषहेतुत्वाच्च द्वितीयक्षणे केवलदर्शनोत्पत्तिः, ततश्च क्रमिकसामग्रीद्वयसम्पत्त्या क्रमिकोपयो-
गद्वयधारानिर्वाह इति, एकक्षणन्यूनाधिकायुष्कयोस्तत्क्षणे केवलज्ञानोत्पत्त्यस्वीकार एव नतिरिक्तं धर्म, ‘ इत्याद्यु
नाण ” इत्यादिना तथाहेतुत्वस्य प्रमाणाभावेन निरसनीयत्वात् उत्पन्नस्य केवलज्ञानस्य क्षायिकत्वान्नाशायोगाच्च ।
न च मुक्तिसमये क्षायिकचारित्रनाशवदुपपत्तिः, क्षायिकत्वेऽपि तस्य योगस्थैर्यनिमित्तकत्वेन निमित्तनाशनाश्यत्वात्,
केवलज्ञानस्य चानैमित्तिकत्वादुत्पत्तौ ज्ञानावरणक्षयातिरिक्तनिमित्तापेक्षत्वेन तस्य स्वतन्त्रप्रामाण्यव्याघातश्च,
अन्यथा सापेक्षमसमर्थमिति न्यायात्तदप्रामाण्यप्रसङ्गात् । एतेन केवलदर्शनसामग्रीयोगेन स्वस्यैव स्वाकारोत्पत्तिरिति केव-
लज्ञान(स्य)क्षणिकत्वमित्यप्यपास्तम्, अनैमित्तिके क्षणिकत्वायोगात्, अन्यथा सामान्य एव सादृश्यानिकार्ये नाश इति
सर्वत्र सूक्ष्मर्जुसूत्रनयसाम्राज्यस्य दुर्निवारत्वादिति किमतिप्रसङ्गेन ? । नन्वियमनुपपत्तिः ज्ञानोपयोगस्य पर्यन्तकाले
ज्ञानुपयोगी ज्ञातमित्याशङ्कते मल्लवादी, “ नेदं समये कर्मणामेकक्षयत्वादनयोरिति ” सर्वोपयोगवादी मन्यतु मिश्रा-

म्तयति इदि ज्ञायता धाुरयोगी नैकदेति, सामान्यविशेषपरिच्छेदात्मकत्वात्केवलज्ञानस्य, यदेव ज्ञान तदेव दर्शनमित्यत्रैव निर्भर, छलयदतुममाने समुद्भावनलोत्यादस्यैयान्यत्र इष्टरायाायापरिहष्टकल्पनाक्लेश इति भाव । अस्मिन्नेव वादे पैन ग्रिन गर्दितार्मनय इत्याह-" जइ मव सायार जाणइ एकसमएण सपणू । जुजाइ सया वि एव अहवा मय न जाणाउ ॥८॥ " यदि सर्वं गामान्यविशेषात्मकं जगत् साकारं तत्तज्जातिव्यक्तिवृत्तिधर्मविशिष्ट । साकारमिति क्रियाविशेषण वा । नित्यभिन्न रणज्ञानिमकारतानिरूपिततत्ताल्लक्षिविशेष्यतामहित परसर यावद्द्रव्यपर्यायनिरूपितविषयतासहित वा यथा स्यात्तथत्यर्थः । नानात्वेकसमयेन सर्वज्ञः पश्यतिचेति शेष, तदा सदापि सर्वकाल युज्यते, एव सर्वज्ञत्व सर्वदर्शित्व चत्यर्थः । अन्यथेत्यतद्व्यरीत्ये सर्वं न जानाति सर्वं न जानीयादेकदेशोपयोगवर्तित्वान्मतिज्ञानवदित्यर्थ । तथा च केवलज्ञानमेव पयउदर्शनमिति स्थितम् । अव्यक्तत्वादपि पृथग्दर्शन केवलिनि न सम्भवतीत्याह-" परिसुद्ध सायार अवि-यत्त दंसण अणायारं । ण य खीणावरणिज्जे जुज्जाउ सवियत्तमवियत्त ॥ ९ ॥ " ज्ञानस्य हि व्यक्ततारूपं, दर्शनस्य पुन रव्यक्तता । न च क्षीणावरणेऽर्हति व्यक्तताऽव्यक्तते युज्येते, तत सामान्यविशेषज्ञेयसस्पर्शुभयैकस्वभाव एवाय केवलि प्रत्ययः, न च सामान्यविशेषाद्यवच्छिन्नमिति सम्भावनापि युक्ता, केवलज्ञानस्य ग्राह्यानन्त्येनानन्ततापत्ते , विषयभेदकृतो न ज्ञानभेद इत्य गुरुगमे गु दर्शनपार्थक्ये वा प्रत्यावरणक्षयस्याप्युभयैकस्वभावस्यैव कार्यस्य सम्भवात् । न चैकस्वभावम प्ययस्य दीनोपयोगयस्परविभिन्नस्वभावद्वयविरोधः, दर्शनस्पर्शनशक्तिद्वयात्मकैकदेवदत्तवत्स्वभावद्वयात्मकैकप्रत्ययस्य चाविरुद्धविशेषात । ज्ञानत्वदर्शनत्वाभ्यां ज्ञानदर्शनयोर्भेद , न तु धर्मिभेदेनेति परमार्थः । अत एव तदावरणभेदेऽपि

स्याद्वाद एव, तदुक्तं स्तुतौ मन्थकृतैव-"चक्षुर्दर्शनविज्ञान परमाणावौष्ण्यरौक्ष्यवत् । तदावरणमप्येकं न वा कार्यविशेषतः ॥ १ ॥" इति । परमाणावुष्णरूक्षस्पर्शद्वयसमावेशवच्चाक्षुषे ज्ञानत्वदर्शनत्वयो समावेश इत्यर्थ । इत्थ च चाक्षुषज्ञान- दर्शनावरणकर्मापि परमार्थत एक कार्यविशेषत उपाधिभेदतो वा नैकमिति सिद्धम् । एवमवधिकेवलस्थलेऽपि द्रष्टव्यम् । तदाह-" चक्षुर्वद्विषयाख्यातिरवधिज्ञानकेवले । शेषवृत्तिविशेषात्तु ते मते ज्ञानदर्शने ॥ १ ॥ इति "। चक्षुर्वच्चाक्षुषव- द्विषयाख्याति' स्पृष्टज्ञानाभाव अस्पृष्टज्ञाने इति यावत्, भावाभावरूपे वस्तुन्यभावत्वाभिधानमपि दोषानावह, शेषा वृत्तयोऽस्पृष्टज्ञानानि ताभ्यो विशेष, स्पृष्टताविशेषेण वक्ष्यमाणरीत्या स्पृष्टाविषयवृत्तित्वव्यन्येन, तस्मात्ते अवधिकेवले ज्ञानपदेन दर्शनपदेन च वाच्ये इत्येतदर्थः । क्रमाक्रमोपयोगद्वयपक्षे भगवतो यदापद्यते तदाह-" अद्दिट्ठ अण्णायं च केवली एव भासइ सया वि । एगसमयम्मि हदी वयणविगप्पो ण संभवइ ॥ १० ॥ " आद्यपक्षे ज्ञानकालेऽदृष्ट, दर्शनकाले चाज्ञात, द्वितीयपक्षे च सामान्यांशेऽज्ञात विशेषांशे चादृष्ट, एवमुक्तप्रकारेण केवली सदा भाषते, तत एक- स्मिन् समये ज्ञात दृष्ट च भगवान् भाषते, इत्येष वचनस्य विकल्पे विशेषो भवद्दर्शने न भवतीति गृह्यता । न चान्य- तरकालेऽन्यतरोपग्रहणादुपसर्जनतया विषयान्तरग्रहणाच्चोक्तवचनविकल्पोपपत्तिः, एव सति भ्रान्तछद्मस्थेऽपि तथा- प्रयोगप्रसङ्गात् । यदा कदाचित् शृगग्राहिकया ज्ञानदर्शनविषयस्यैव पदार्थस्य तद्भावानुप्रवेशादिति स्मर्तव्यम् । तथा च सर्वज्ञत्व न संभवतीत्याह-" अण्णायं पासंतो अद्दिट्ठं च अरहा वियाणंतो । किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्णू त्ति वा होइ ॥ ११ ॥ " अज्ञात पश्यन्नदृष्ट च जानान किं जानाति किं वा पश्यति? न किंचिदित्यर्थः । कथ वा तस्य सर्वज्ञता

भवत्? न भवमपीत्यर्थ । ज्ञानदर्शनयोर्विषयविधयैकसंख्याशालित्वादप्येकत्वमित्याह–" केवलनाणमणंतं जहेव तह
दंसणं पि पण्णत्तं । सागारग्गहणाहिय णियमपरित्तं अणागारं ॥ १२ ॥ " यद्येकत्वं ज्ञानदर्शनयोर्न स्यात्तदाऽल्पविषयत्वा-
द्दर्शनमनन्तं न स्यादिति " अणंते केवलणाणे अणंते केवलदंसणे " इत्यागमविरोधः प्रसज्येत, दर्शनस्य हि ज्ञानाद्भेदे
साकारग्रहणादन्तविशेषगतिज्ञानादनाकारं सामान्यमात्रग्राहकमपि केवलदर्शनं यतो नियमेनैकांशेनैव परीतमल्पं भवतीति
गुणो विषयाभावादनन्तता । न चोभयोस्तुल्यविषयत्वाविशेषेऽपि मुख्योपसर्जनभावकृतो विशेष इति वाच्यं, विशेषण
विशेष्यभावेन तदुभयजनितवैज्ञानिकसम्बन्धावच्छिन्नविषयतया वा तत्र कामचारात्। आपेक्षिकस्य च तस्यासदादिबुद्धावेवा
विरोधात् । एतच्च निरूपितं तत्र " जं जं जे जे भावे " इत्यादिनिर्युक्तिगाथाया नयभेदेन व्याख्याद्येऽनेकान्तव्यवस्था
यामस्माभिः । अक्रमोपयोगद्वयवादी तु प्रकृतगाथाया साकारे यद्ग्रहणं दर्शनं तस्य नियमोऽवश्यभावो यावन्तो विशेषा-
स्तावन्त्यर्थक्रमभेदाधिरूपाणि जातिरूपाणि वा सामान्यानीति हेतोस्तेनापरीतमनन्तमित्यकारप्रश्लेषेण व्याचष्टे, क्रमवादे
ज्ञानदर्शनयोरपर्यवसितत्वादिकं नोपपद्यत इति यदुक्तं तत्राक्षेपमुदस्य समाधत्ते–" भण्णइ जह चउनाणी जुज्जइ णियमा
तहेव एयं पि। भण्णइ ण पचनाणी जहेव अरहा तहेयं पि ॥ १३ ॥" भण्यते आक्षिप्यते तथा क्रमोपयोगप्रवृत्तोऽपि मत्या
दिचतुर्ज्ञानी तत्प्रतिसमन्वयादपर्यवसितचतुर्ज्ञानो ज्ञातदृष्टभावी ज्ञाता द्रष्टा च नियमेन युज्यते । तथैतदप्येकत्ववादिना
पदपर्यवसितत्वादिक्रमोपयोगे केवलिनि प्रेर्यते, तदपि सार्वदिककेवलज्ञानदर्शनशक्तिसमन्वयादुपपद्यत इत्यर्थः । भण्यतेऽ-
थोत्तरं दीयते–यथैवार्हन् पञ्चज्ञानी, तथैवैतदपि क्रमवादिना यदुच्यते, भेदतो ज्ञानवान् दर्शनवांश्च, तदपि न भवतीत्यर्थः ।

मत्याद्यावरणक्षयेऽप्येकदेशग्राहिणो मतिज्ञानादेरिव, दर्शनावरणक्षयेऽपि तादृशदर्शनस्य केवलिनि भेदेनानुपपत्तेरिति भाव । इयांस्तु विशेष –यदभेदेनापि केवलज्ञाने दर्शनसंज्ञा सिद्धान्तसमता, न तु मतिज्ञानादिसंज्ञेति, तत्र हेतू अन्वर्थो-पपत्त्यनुपपत्ती एव द्रष्टव्ये । अयं च प्रौढिवाद , वस्तुत क्रमवादे यदा जानाति तदा पश्यतीत्यादेरनुपपत्तिरेव, आश्रय-विधमारत्वात् । लब्धेस्तदर्थत्वे तु घटादर्शनवेलायामपि घटं पश्यतीति प्रयोगप्रसंगात्, घटदर्शनलब्धेस्तदानीमपि तु सर्वत्राप्ययं न्याय , अतिप्रसंगात् । न च सिद्धान्ते विना निक्षेपविशेषमप्रसिद्धार्थे पदवृत्तिरवधार्यते, षट्षष्टिसागरोप मस्थितिकत्वादिकमपि मतिज्ञानादेर्लब्ध्यपेक्षयैवेति दुर्वचं, एकस्या एव क्षयोपशमरूपलब्धेस्तावत्कालमनवस्थानात्, द्रव्या-पेक्षया विचित्रापरापरक्षयोपशमसन्तानस्यैव प्रवृत्त्युपगमात् । किं त्वेकजीवावच्छेदेनाज्ञानातिरिक्तविरोधिसामग्र्यसमवहि-तषट्षष्टिसागरोपमक्षणत्वव्याप्यस्वसजातीयोत्पत्तिकत्वे सति तदधिकक्षणानुत्पत्तिकस्वसजातीयत्वरूपं तत्पारिभाषिकमेव यथा (?), एवमन्यदप्यूह्यम् । क्रमेण युगपद्वा परस्परनिरपेक्षस्वविषयपर्यवसितज्ञानदर्शनोपयोगौ केवलिन्यसर्वार्थत्वान्मत्या-दिज्ञानचतुष्टयवत् इति दृष्टान्तभावनापूर्वमाह–" पण्णवणिज्जा भावा समत्तसुअनाणदंसणाविसओ । ओहिमणपज्जवाण व अण्णोण्णविलक्खणा विसओ ॥ १४ ॥ तम्हा चउव्विभागो जुज्जइ ण उ नाणदंसण जिणाणं । सयलमणावरणमणंतमक्खयं केवलं जम्हा ॥ १५ ॥ " प्रज्ञापनीया शब्दाभिलाप्या भावा द्रव्यादय समस्तश्रुतज्ञानस्य द्वादशांगवाङ्मयात्मकस्य दर्श-नाया दर्शनप्रयोजिकायास्तदुपजातायां बुद्धे विषय आलम्बनं, मतेरपि त एव शब्दावसिता विषया द्रष्टव्याः, शब्दपरिक-

र्मणादितरयोपशमजनितस्य ज्ञानस्य यथोपजातविषयस्य मतिज्ञानमतिश्रुतयोरगवर्यपर्यायसर्वद्रव्यविषयतया गुण्यार्थत्व प्रतिपादनाय, अवधिमनःपर्याययोः पुनरन्योन्यविलक्षणा नाना विषयोऽवधे रूपिद्रव्यमात्र, मनःपर्यायस्य च मन्यमानानि द्रव्यमनांसीत्यसर्वार्थान्येतानि । तस्माच्चतुर्णां मत्यादीना विभागो युज्यते, तत्क्षयोपशमप्रत्ययभेदात्, न तु केवलं ज्ञानदर्शनयो । ' नाणदसण त्ति ' अविभक्तिको निर्देशः सूत्रत्वात् । कुतः पुनरेतदित्यत आह-यस्मात् केवल सकलं परिपूर्णं । तदपि कुत ? यतोऽनावरण, न ह्यनावृतमसकलविषय भवति । न च प्रदीपेन व्यभिचार , यतोऽनन्तमानन्ता र्थग्रहणमपूर्ण । तदपि कुत ? यतोऽक्षयं, क्षयो हि विरोधिसजातीयेन गुणेन स्यासादनाद्वे तस्यान्यत्र, तदभाव तत्रमन न्ययमिति न्याय । तस्मादक्रमोपयोगद्वयात्मक एक एव केवलोपयोगः । तत्रैकत्व व्यक्त्या, द्व्यात्मकत्व च तृमिद्वत्वानां शिकनात्व तद्रूपत्वमित्येके । भावे ज्ञिधोपणत्वयद्व्याप्यवृत्तिजातिद्वयशक्तिद्वयरूपमित्यपरे । वस्तुतस्समानाधिकरण्यात्, ज्ञानत्वं जातिविशेषो, दर्शनत्व च विषयताविशेषो, दोषद्वयजन्यतावच्छेदक इति तु वयम् । ननु नवउवयगे ' केवली ण ' इत्यादिसूत्रे ' जं समयं ' इत्यादौ यत्समकमित्यादयर्थो न सर्वस्वरसगिद्ध , तादृशप्रयोगान्तरे तथाविवरणानात्, तथा ' नाणदसणट्ठयाए दुवे अहं ' इत्याद्यागमविरोधोऽपि, यद्धर्मविशिष्टविषयावच्छेदेन भेदनयार्पण तद्धर्मविशिष्टोपयोगभेद सिद्धेः, अन्यथाऽतिप्रसंगादित्याशङ्क्य युक्तिसिद्धः सूत्रार्थो ग्राह्यस्तेषां स्वसमयपरसमयादिविषयभेदेन विविधत्वादित्यभिप्राय गनाह-परवत्तव्वयपक्खा अविसुद्धा तेसु तेसु अत्थेसु । अत्थगइऊ अ तेसिं वियजणं जाणउ कुणइ ॥ १६ ॥ परेषा वैशेषिकादीना यानि वक्तव्यानि तेषा पक्षा अविशुद्धास्तेषु तेष्वर्थेषु सूत्रे तन्मयपरिकर्मणादिद्रनो-

[illegible] । अर्थगत्यैव सामर्थ्येनैव तेषामर्थानां व्यक्ति सर्वमवादमूलमाद्गमाविरोधेन शक्तो ज्ञाता करोति । तथा च ' ज [illegible] ' इत्यादिगाथाद्वयार्थे केवली श्रुतावधिमन पर्यायज्ञानेष्वन्यतरो ग्राह्य , परमावधिकाद्यधिकश्रुतस्थातिरिक्तविषये [illegible] विषये वा तादृशसूत्रप्रवृत्तौ, तत्र परतीर्थिकवक्तव्यताप्रतिबद्धत्वं वाच्यमेवमन्यत्रापीति दिक् । ' केवलनाणे [illegible] ' इत्यादिनेदेन सूत्रनिर्देशस्यैकाधिकपरतैतल्यनिभायेणोपक्रमते–" जेण मणोविसयगयाण दसण णत्थि दव्वजा- [illegible] । मो [illegible] नियमा नाण तु णिद्दिट्ठ ॥ १३ ॥ " यतो मन पर्यायज्ञानविषयगताना तद्विषयसमूहानुप्रवि- [illegible] बाह्यचिन्त्यमानार्थगमकतापर्यायविशेषरूपस्यैव मनोद्रव्यादर्शनं सामान्यरूप नास्ति, तस्मान्मन - [illegible] ज्ञानमवागमे निर्दिष्टं, [illegible] मुख्यतया तद्ग्रहणोन्मुखदर्शनाभावात् । केवल तु सामान्यविशेषो- [illegible] नाय । सूत्रे [illegible] परिपठितत्वादप्युनयरूपं केवल, न तु क्रमयोगादित्याह–

[illegible] समयम्मि दसणस्थिप्पा । परिपठिआ केवलनाणदसणा ते ण चिय ध्यणा ॥ १० ॥ "
[illegible] पाठात् ज्ञानमपि, दर्शनमध्ये पाठाच्च दर्शनमपीति परिभाषामात्रमेतदिति
[illegible] । [illegible] सामान्यविशेषाजहद्वृत्त्यैकोपयोगरूपतया ज्ञानदर्शनास्यमित्ये-
[illegible]–" दसणपुव्व नाण [illegible] नियमा [illegible] नाय । जइ त्थ केवलाण वि विसेसण इत्तिय चेव ॥ १७ ॥ "
[illegible] दर्शनं, इदं [illegible], घट इति निश्चयेन वर्णना तदाकारानिवारण इतियावत् ।
[illegible] घटे [illegible]मित्यर्थः । यथाऽत्रैव तथा केवलयोरप्येतावन्मात्रेण विशेष ।

त्वमेव कथं सामान्यांश दर्शनं विशेषांशे च ज्ञानमित्यर्थः । एकदेशेन क्रमिकभेदपक्षं दूषयति—" दंसणपुव्वं णाणं णाण निमित्तं तु दंसणं णत्थि । तेण सुविणिच्छियामो दंसणणाणा ण अण्णत्तं ॥ २० ॥ " दर्शनपूर्वं ज्ञानमिति छद्मस्थोपयोगद्वये [illegible]र्गम् । सामान्यमुपलभ्य हि पश्चात्सर्वो विशेषमुपलभत इति, ज्ञाननिमित्तं तु दर्शनं नास्ति कुत्रापि, तथाऽप्रसिद्धेः । तेन सुविनिश्चिनुमः 'दंसणणाणा' इति दर्शनज्ञानेनान्यत्वं न प्रमापादितमेव केवलिनि जगत इति शेषः । क्रमा[illegible]गमे हि केवलिनि नियमा[illegible] [illegible]नं वाच्यं, सर्वोसां लब्धीनां साकारोपयोगप्राप्तत्वेन पूर्वं ज्ञानोत्पत्त्युपगमौचि[त्या]त् । तथा च ज्ञानमुक्तमेव केवलिनि [द]र्शनमभ्युपगन्तव्यं, तच्चात्र तादर्शनव्याहतमिति भाव । यत्तु क्षयोपशमनिमि[त्त]त्वं [illegible] केवलिनि [illegible] [illegible]जातीयतया ज्ञानदर्शनयोरन्यत्वमिति टीकाकृद्व्याख्यानं, तत्स्वभावभेदता[illegible] [illegible] ज्ञाननिमित्त[illegible]निरवाननियोजनतया कथं योजित इति विचारणीयम् । ननु यथा परेषां कल्पित[illegible] [illegible] [illegible]ऽस्माकं च [illegible]पर्यायविशेषरूप , तथा केवलिज्ञानदर्शनिष्ठत्वाद्दशः क्रम[illegible] स्यादिति [illegible]नुपपत्तिरिति चेन्न, सांक्रमस्य क्रमप्रयत्नप्रयोज्यस्य गुणत्वेऽप्यक्रमिकावर[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]ऽक्रमिकादावरणक्षयात् प्रमत्तक्षयोपगोत्पत्त्यनुपगमे च [illegible]न्तरायाः अविभेदाच्च " जुगवं दो णत्थि उवओगा " इति वचनानु[illegible]र्गा । न च ज्ञानस्य [illegible]गामिताम[illegible] ध्यं [illegible]युपयोगयोगस्य मामत, माधन तत्पर्यायविशेषरूपध्वंस[illegible] [illegible]त्वादिति[illegible]मध्यमनयात् । अन्यथा तत्तद्योगविज्ञानादिमात्रेणानुभूयमानघटाव

[illegible]। न च "जुगवं दो णत्थि उवजोगा" इत्यस्योपयोगयोर्युगपदुत्पत्तिनिषेध एव तात्पर्यं, न तु युगपदवस्थानेऽपी-[illegible] सद्भावस्थानेऽपि न दोष इति साम्प्रत, अक्रमवादिनाप्येव क्रमावच्छिन्नोपयोगद्वययौ-गपद्य [illegible] वक्तु शक्यत्वात्, [illegible] यदेव ज्ञान तदेव दर्शनमित्यस्मदुक्तस्यैव युक्तत्वादिति दिक् । [illegible] दर्शन, अपायात्मना च ज्ञानमिति यदुक्तं दृष्टान्तादृष्टार्थमेकदेशिना तद्दूषयन्नाह—"जइ उग्गहमित्त दंसणं ति मन्नसि विसयिया [illegible] । मइनाणमेव दंसणमेवं मइ होइ णिप्पन्नं ॥ २१ ॥" यदि मतिरेवावग्रहरूपा दर्शन, [illegible] मन्यसे, तदा मतिज्ञानमेव दर्शनमित्येव मति प्राप्त । न चैतद्युक्त, "स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद" इति सूत्र[illegible]विरोधाच्च—"एवं सेसिंदियदंसणम्मि णियमेण होइ ण य जुत्तं । अह तत्थ नाण-[illegible] ॥२२॥" एव शेषेन्द्रियदर्शनेष्वप्यवग्रह एव दर्शनमित्यभ्युपगमेन (गमेनियमेन) मतिज्ञानमेव [illegible], पूर्वोक्त[illegible]। अथ तेषु श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु दर्शनमपि ज्ञानमेव गृह्यते, मात्रशब्दस्य [illegible], श्रोत्रज्ञान घ्राणज्ञानमित्यादिव्यपदेश एव हि तत्रोपलभ्यते, न [illegible] घ्राणदर्शनमित्यादिव्यपदेशः क्वचिदागमे प्रसिद्धः, तर्हि चक्षुष्यपि तथैव गृह्यता चक्षुर्ज्ञानमिति, अथ तत्र [illegible] तथैव गृह्यता, तुल्ययुक्तित्वात् । क्व तर्हि शास्त्रे चक्षुर्दर्शनादिमर्यादा इत्यत आह "नाणमपुट्ठे (जो) अवि-[illegible] दंसणं होइ । मुत्तूण लिंगओ ज अणागयाईय विसएसु ॥२३॥ "अस्पृष्टेऽर्थे चक्षुषा य उदेति प्रत्यय स [illegible] चक्षुर्दर्शनमित्युच्यते, [illegible] परमाण्वादावर्थे मनसा य उदेति प्रत्यय स ज्ञानेन सदचक्षुर्दर्शन

मि-गुष्यत । अनुमित्यादिरूपे मनोऽन्यज्ञानेऽतिप्रसङ्गमाशंक्याह्यनागतातीतविषयेषु यल्लिङ्गज्ञानमुदेति अथ फाख आसन्न-
त्वविप्रकृष्टिरूपयाविषयवाननिमत्त्वात, अयं प्रदेश आगसरृष्टमेघः पूर्वविशेषवत्त्वादि(त्यादि)रूप तन्मुक्त्वा । इदमुपलक्षण,
तारनान्यज्ञानातिरिक्तरोऽज्ञानमात्रस्य तस्यास्पृष्टाविषयार्थस्यापि दर्शनत्वेनाव्यवहारात् । यद्यस्पृष्टाविषयार्थज्ञान
दर्शनमभिमत,तर्हि मनःपर्यायज्ञानेऽतिप्रसङ्ग इत्याशंक्य समाधत्ते–"मणपज्जवनाण दसण ति तेणेह होइ ण य जुत्त । जम्हा
नाणं णोइंदियंमि ण घडाई जम्हा ॥ २४ ॥" एतेन ग्रन्थेन मनःपर्यायज्ञानमपि दर्शनं प्राप्त, परकीयमनोगताना
घटादीनामार्थानां नयावत्त्वेनास्पृष्टेऽविषये च घटादावर्थे तस्य ज्ञानात्, न चैतद्युक्त, आगमे तस्य दर्शनत्वेनापाठात् ।
तस्मादागम्-नोइन्द्रिय मनोवर्गणाख्य मनोविषय प्रवर्तमानं मनःपर्यायबोधरूपज्ञानमेव, न दर्शन, यस्मादस्पृष्टा घटादयो
नास्य विषय इति शास्त्र । किंतु तत्रां क्रियानुमेयत्वात् । तथा चागम –"जाणइ बज्झेणुमाणाउत्ति" मनोवर्गणास्तु परात्म
गता अपि स्वाश्रया अस्पृष्टास्तानीया भवति न तद्वशाऽपि दर्शनत्वप्रसङ्ग । परकीयमनोगतार्थाकारविकल्प एवास्य ग्राह्य ,
नाय बोधः...अपि ज्ञानविज्ञायोग्यार्थपरिपूर्णार्थमाहितात्र मनःपर्यायज्ञाने दर्शनसज्ञत्व इत्यप्याहु । किं च–"मइ-
सुअनाणणिमित्तो छउमत्थे होइ अत्थउवलंभो । एगयरंमि वि तेसिं ण दसणं दसणं कत्तो ॥२५॥" मतिश्रुतज्ञाननिमित्त
छद्मस्थानामर्थोपलम्भ उक्त आगमे । तयोरेकतरस्मिन्नपि न दर्शन भवति । न चावग्रहो दर्शन, तस्य ज्ञानात्मकत्वात्,
तत्र श्रुते दर्शनं ? नास्तीत्यर्थः । ननु श्रुतमस्पृष्टेऽर्थे किमिति दर्शन न भवेत्तत्राह–"जं पच्चक्खग्गहणं ण इंति सुअनाण
संमिया अत्था । तम्हा दंसणसद्दो ण होइ सयले वि सुअनाणे ॥ २६ ॥" यस्माच्छ्रुतज्ञानप्रमिता अर्था प्रत्यक्षग्रहण न

णादिषु, अवग्रहेणैव व्यवहारतः प्रत्यक्षत्वात् । तस्मात्सकलेऽपि श्रुतज्ञाने दर्शनशब्दो न प्रवर्तते । तथा च व्यंजनावग्र-
हाविषयार्थग्राहकत्वमेव दर्शनत्वमिति पर्यवसन्नम् । प्रत्यक्षपदादेव श्रुतज्ञानवदनुमित्यादेर्व्यावृत्तौ परोक्षभिन्नत्वे सतीति
विशेषणं न देयं, "सुयणाणे णिगउं जं" इत्युपस्थाप्यत्रैव तात्पर्यं द्रष्टव्यम् । अत्र चाचक्षुर्दर्शनमित्यत्र नञ् पर्युदासार्थकत्वा-
च्चक्षुर्दर्शनपदेन मानसदर्शनमेव ग्राह्यं, अप्राप्यकारित्वेन मनस एव चक्षुःसदृशत्वात् घ्राणदर्शनादीति सर्वमुपपद्यते ।
ननु चावधिदर्शनमपि कथं सङ्गच्छते, तस्य व्यञ्जनावग्रहविषयार्थग्राहित्वेऽपि व्यवहारतः प्रत्यक्षत्वाभावादित्याशंकायां
प्रत्यक्षपदस्य व्यवहारनिश्चयसाधारणप्रत्यक्षार्थत्वात्, अवधिज्ञानस्य च नैश्चयिकप्रत्यक्षत्वाव्याहते परिहारमभिप्रै(प्रे)त्याह-
"जं अपुट्ठा भावा ओहिनाणस्स होंति पच्चक्खा । तम्हा ओहिनाणे दंसणसद्दो वि उववत्तो ॥ २१ ॥ स्पष्टा । उपयुक्त
ज्ञानविनिर्मुक्तावकाशः केवलज्ञानेऽपीदं दर्शनमव्याहतमित्याह-"जं अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा । तम्हा
तं णाणं दंसणं च अविसेसओ सिद्धं ॥ २२ ॥" यतोऽस्पृष्टान् भावान्नियमेनावश्यतया केवली चक्षुष्मानिव पुरःस्थित
जानाति पश्यति चोभयरूपत्वेन, तस्मात्केवलज्ञानं दर्शनं चाविशेषतः उभयाभिधाननिमित्तस्याविशेषात्सिद्धं । मन-
पर्यवज्ञानस्य तु व्यञ्जनावग्रहाविषयार्थप्रत्यक्षत्वेऽपि बाह्यविषये व्यभिचारेण स्वग्राह्यतावच्छेदकावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वाभावान्न
दर्शनत्वमिति निष्कर्षः । अत्र पट्टीकाकृता प्रमाणप्रमेययोः सामान्यविशेषात्मकत्वेऽप्युपनीतावरणे युगपदुभयस्वभावो
बोधः, छद्मस्थावस्थायां त्वनयोगतावरणत्वेन दर्शनोपयोगसमये ज्ञानोपयोगाभावादप्राप्यकारिनयनमनःप्रभवार्थावग्रहादि,
दर्शनोपयोगकाले चक्षुरचक्षुर्दर्शने, अवधिज्ञानोपयोगप्राक्काले चावधिदर्शनमाविर्भवतीति व्याख्यातं तदर्धजरतीय

न्यायमनुसरति, प्राचीनमप्ययमाज्ञानुरोधे श्रोत्रादिज्ञानात् प्रागपि दर्शनाभ्युपगमस्यानैनीयत्वात्, व्यञ्जनावग्रहार्थावग्रहा न्तराले दर्शनानुपयोगपदनिर्देशाच्च, अगत्येयमाभवितव्यञ्जनावग्रहान्त्यक्षणे "तादृ शुतिकरे" इत्यागमेनार्थावग्रहोत्प त्तेरव ज्ञापनात्, व्यञ्जनावग्रहकाले दर्शनस्य कल्पनस्य चात्यन्तानुचितत्वात्। तथा सति तन्त्रियार्थसंनिकर्षादपि निकृष्टत्वेनानुपयोगप्रसङ्गाच्च,अप्राप्यकारीन्द्रियजज्ञानस्थले दर्शनाभ्युपगमे चान्यत्रापि तत्कल्पने न किंचित्प्रमाणं,'णाणमपुट्ठे' इत्यादिना ज्ञानादर्शनस्य दर्शनस्य नाभप्रतिपादना चक्षुरविषया व्याप्तिरित्यादिश्रुतिग्रन्थैरस्वारस्यतयापि तत्रैव स्वारस्याच्च। छद्मस्थज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगत्वेन हेतुत्वे तु चक्षुष्येव दर्शनं नान्यत्रेति कथं श्रद्धेयं? तस्माच्छ्रीसिद्धसेनोपज्ञनव्यमते न कुत्रापि ज्ञानाद्दर्शनस्य कालभेदः, किं तु स्वसमानावच्छेदकावच्छेदेन व्यञ्जनावग्रहाविषयीकृतार्थप्रत्यक्षत्वमेव दर्शनत्व मिति फलितम्। यदि च चाक्षुषादावपि ज्ञानसामग्रीसामर्थ्यप्राप्यवर्तमानकालावधी मितिमात्रांशे च न दर्शनत्वव्यव हारस्तदविषयताविशेष एव दर्शनत्वं, स च क्वचिदेव योग्यताविशेषजन्यतावच्छेदकः,क्वचिच्च भावनाविशेषजन्यतावच्छेदक, सर्वत्र च सर्वांशे आवरणक्षयजन्यतावच्छेदक इति प्रतिपत्तव्यं। न चार्थेनैव धिया विशेष इति न्यायादर्थाविशेषे ज्ञाने विषयताविशेषासिद्धिरिति शङ्कनीयं, अर्थेऽपि ज्ञानानुरूपस्वभावपरिकल्पनात्, अर्थाविशेषेऽपि परं समूहालम्बनाद्विशि-ष्टज्ञानस्य व्यावृत्त्यर्थं प्रकारिताविशेषस्याभ्युपगमाच्च। न हि तस्य तत्र भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगिज्ञानत्वमेव निरूपकविशि ष्टज्ञानस्य चर्चं शस्यं, दण्डपुरुषसंयोगा इति समूहालम्बनेऽतिप्रसङ्गात्। न च भासमान वैशिष्ट्यप्रतियोगित्व तद्वत् ज्ञान त्वमेव, तथा दण्डपुरुषसंयोगप्रतियोगित्वानुयोगित्वानीति ज्ञाने दण्डविशिष्टज्ञानत्वापत्ते। न च स्वरूपतो भासमानमित्या-

घुकावपि निस्तार, प्रतियोगित्वादेरतिरिक्तत्वे प्रकारित्वादेर्शननिष्ठस्य कल्पनाया एव लघुत्वात्। अनतिरेके तु दण्डरू-
त्वादिनिर्विकल्पकेऽपि दण्डादिविशिष्टज्ञानत्वापत्ते । एतेन स्वरूपतो भासमानेन वैशिष्ट्येन गर्भितलक्षणमप्यपास्तम्,
संयुक्तसमवायादे सम्बन्धत्वे स्वरूपत इत्यस्य दुर्वचत्वाच्च। तस्मात्परान्युपगतप्रकारिताविशेषतदाकारविशेष स्याद्वादमुद्र-
याऽर्थानुरक्तत्वदननुरक्तौ वा ज्ञाने दर्शनशब्दव्यपदेशहेतुरनाविलस्तत्समय एवार्थज्ञानयोरविनिर्गमेनाकाराकारिभावस्यना-
गविर्भावादित्येष पुनरस्माक मनीषोन्मेष । तस्माद्द्व्यात्मक एव केवलावबोध इति फलितं स्वमतमुपदर्शयति-" साईय-
पज्जवसिय ति दोवि ते ससमय हवइ एव। परतित्थियवत्तव च एगसमयतरुप्पाओ ॥ २९ ॥" साद्यपर्यवसित केवलमिति
हेतोर्द्वे अपि ज्ञानदर्शने ते उभयशब्दवाच्य तदिति यावत्। अय च स्वसमय स्वसिद्धान्त । यस्त्वेकसमयान्तरोत्पाद-
स्तयोरिष्यते, तत्परतीर्थिकशास्त्र, नार्हद्वचन, नयाभिप्रायेण प्रवृत्तत्वादिति भाव । एवभूतवस्तुतत्त्वश्रद्धानरूप सम्यग्द-
र्शनमपि सम्यग्ज्ञानविशेष एव, सम्यग्दर्शनत्वस्यापि सम्यग्ज्ञानत्वव्याप्यजातिविशेषरूपत्वाद्विषयताविशेषरूपत्वाद्वेत्याह-
" एव जिणपणत्ते सद्दहमाणस्स भावओ भावे। पुरिसस्साभिणिबोहे दसणसद्दो हवइ जुत्तो ॥ ३० ॥" जिनप्रज्ञप्तभाव-
विषय नमूलाक्षररुचिरूप ज्ञान मुख्य सम्यग्दर्शन तद्वासनोपनीतार्थविषय घटादिज्ञानमपि भाक्तं तदिति तात्पर्यार्थ ।
ननु सम्यग्ज्ञाने सम्यग्दर्शननियमवद्दर्शनेऽपि सम्यग्ज्ञाननियमः कथ न स्यादित्यत्राह-"सम्मन्नाणे णियमेण दसण दसणे
उ भयणिज्ज। सम्मन्नाण च इम ति अत्थओ होइ उववण्ण ॥ ३१ ॥" सम्यग्ज्ञाने नियमेन सम्यग्दर्शनं, सम्यग्दर्शने पुन

र्भनानीय विकल्पनीय, सम्यग्ज्ञान एकान्तरूपो न भवति, अनेकान्तरूपो तु समस्तीति । अतः सम्यग्ज्ञानं यद् सम्य ग्दर्शनं चेत्यर्थ । सामर्थ्यतोपपन्नं भवति । तत्र च सम्यक्त्वमिव दर्शनं ज्ञानविशेषरूपमेवेति निर्व्यूढम् ।

प्राचा वाचा विमुखविषयोन्मेषसूक्ष्मेक्षिकाया येऽस्यापीनयमधिगता न यमार्गानभिज्ञा ।
तेषामेषा समयवणिजा संमतिग्रन्थगाथा विश्वासाय स्वनयविपणिप्राज्यवाणिज्यवीथी ॥ १ ॥
भेदग्राही व्यवहृतिनयं संश्रितो मल्लवादी पूज्या प्रायः करणफलयोः सीम्नि शुद्धर्जुसूत्रम् ।
भेदोच्छेदोन्मुखमधिगत संग्रहं सिद्धसेनस्तस्मादेते न खलु विषमा सूरिपक्षास्त्रयोऽपि ॥ २ ॥
चित्सामान्यं पुरुषपदभाक्केवलाख्ये विशेषे तद्रूपेण स्फुटमभिहितं साधनं तत्र यदत्र ।
सूक्ष्मैरंशैः क्रमवदिदमप्युच्यमानं न दुष्टं तत्सूरीणामियमभिमता मुख्यगौणव्यवस्था ॥ ३ ॥
तमोऽपगमचिज्जनुः क्षणभिदा निदानोद्भवा श्रुता बहुतरा श्रुते नयविवादपक्षा यथा ।
तथा च इह निस्मयो भवतु सूरिपक्षत्रये प्रधानपदवी धिया क्व तु दवीयसी दृश्यते ॥ ४ ॥
प्रसह्य सदसत्त्वयोर्न हि विरोधनिर्णायकं विशेषणविशेष्ययोरपि नियामकं यत्र न ।
गुणागुणविभेदतो मतिरपेक्षया स्यात्पदात् किमत्र भजनोर्जिते स्वसमये न संगच्छते ॥ ५ ॥
प्रमाणनयसंगता स्वसमयेऽप्यनेकान्तधीर्नयस्मयतटस्थतोल्लसदुपाधिकिर्मीरिता ।
कदाचन न बाधते सुगुरुसंप्रदायक्रमं समंजसपदं वदत्युरुधियो हि सद्दर्शनम् ॥ ६ ॥

रहस्य जानन्ते किमपि न नयाना कृतधियो विरोध जापन्ते विविधबुधपक्षे वत खला ।
अमी चन्द्रादित्यप्रकृतिविकृतिव्यत्ययगिरा निरातका: कुत्राप्यहह न गुणान्वेषणपरा ॥ ३ ॥

स्याद्वादस्य ज्ञानबिन्दोरमन्दान्मन्दारको क फलास्वादगर्जे ।
द्राक्षासाक्षात्कारपीयूषधारादारादीना को विलासश्च रम्य ॥ ७ ॥

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरो स्वच्छे गुणाना गणै प्रौढि प्रौढिमधाम्नि जीतविजया प्राज्ञाः परामैयरु ।
तत्सातीर्थ्यभृता नयादिविजयप्राज्ञोत्तमाना शिशुस्तत्त्व किंचिदिद यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥ ए ॥

॥ इति उपाध्यायश्रीयशोविजयगणिना रचित ज्ञानबिन्दुप्रकरणम् ॥

[illegible] छे सर्व [illegible] [illegible] [illegible] ने स्वतो [illegible] विगेरे मनावनामा आव्यां ते यथा प्रन्यज छे,
[illegible] [illegible] टीका रची छे ते एव छे [illegible] छे नेत्र अमेव छे

[illegible] ग्रंथो

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] सटीक ४ अध्यात्म मतपरीक्षा सटीक ५ नयरहस्य ६ [illegible], ७ [illegible] टीका सहित ८ न्यायालोक ९ जैनतर्क परिभाषा १० ज्ञानबिंदु ११ न्याय [illegible] ([illegible]) १२ मार्गपरिशुद्धि १३ उपदेशरहस्य सटीक १४ वैराग्यकल्पलता, १५ [illegible] [illegible] सटीक १६ [illegible] (अष्टक) १७ देवधर्मपरीक्षा १८ यतिलक्षण समुच्चय १९ गुरुतत्त्वनिर्णय सटीक २० [illegible] २१ [illegible] सटीक २२ [illegible]रहस्य आमां मात्र ग्रंथो स्वोपज्ञ (पोतानी रचेली) टीकायुक्त छे

अन्याचार्यकृत ग्रंथोपर तेमनी करेली टीका

१ [illegible] [illegible] टीका २ कर्मप्रकृति (कम्मपयडी) नी टीका ३ षोडशकवृत्ति ४ अष्टसहस्री विवरण

अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रंथो.

१ [illegible] २ [illegible]रहस्य ३ [illegible]रहस्य ४ सिद्धान्त तर्क परिष्कार ५ अनेकांत मतव्यवस्था ६ पातञ्जल योग-[illegible] [illegible] ७ [illegible] ८ ज्ञानार्णव ९ विचारबिंदु १० त्रिसूत्र्यालोकविधि ११ मंगलवाद १२ [illegible]प्रकरण

गुजराती भाषामां करेली रचनाओ

१ श्रीपालराजाना रासनो पाछलो भाग २ दिग्पट चोराशी बोल (गद्यमां) ३ जंबूस्वामीनो रास ४ द्रव्यगुणपर्यायनो रास ५ समाधिशतक ६ समताशतक ७ ज्ञानसारनो टबो ८ ज्ञानसारनो टबो ९ तत्त्वार्थ (ना ७१) १० आनंदघनजीनी स्तुतिरूप अष्टपदी ११ सम्यक्त्वाष्ट विचारसार (पत्र)

सज्झायो

१ अढारपापस्थानकनी सज्झाय २ आठदृष्टिनी सज्झाय ३ प्रतिक्रमण गर्भ हेतुनी सज्झाय ४ सम्यक्त्वना सडसठ बोलनी सज्झाय ५ पांच कुगुरुनी सज्झाय ६ अग्यार अंगनी सज्झाय ७ साध महात्मानी नावनी सज्झाय ८ चन्द्र वेडीनी सज्झाय ९ सयमश्रेणीनी सज्झाय १० चार आहारनी सज्झाय

स्तवनो

१ श्री सीमधरस्वामीनी स्तुतिरूप ३५० गाथानुं स्तवन २ श्रीवीरस्तुतिरूप हुंडीनुं स्तवन (१५० गाथानु). ३ सवासो गाथानुं स्तवन ४ निश्चय व्यवहारनुं स्तवन (पांच ढाळनुं) ५ मौन एकादशीना दोढसो कल्याणकनुं स्तवन (१२ ढाळनु) ६ ७ ८ वर्तमान चोवीश तीर्थंकरोनां स्तवनोनी चोवीशी ३ ९ विहरमान जिनस्तवन (वीशी)

आ सिवाय कोइ पण ग्रंथ कोइ पण मुनिमहाराजना के श्रावकनाजना जाणवामां होय अथवा मालुममां आवे तो तेमणे अमने खबर मोकलवानी कृपा करवी